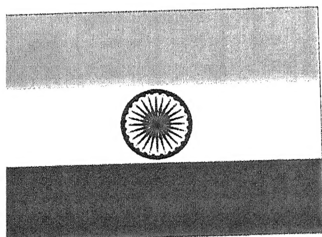
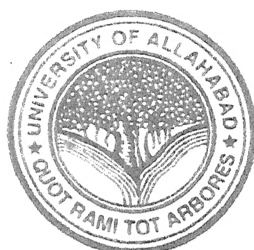
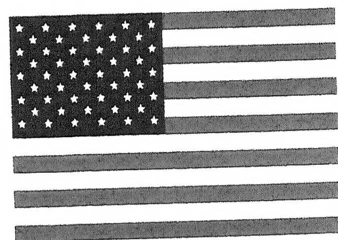
1990 के उपरांत
भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका संबंध
'नवीन समीकरण और परिवर्तनशीलकर्ता'











डी०फिल०उपाधि हेतु
राजनीतिशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में
प्रस्तुत शोध प्रबंध
सन् 2002









पर्यवेक्षक
डॉ० आलोक पंत
(विभागाध्यक्ष)







शोधार्थी
ऋतेश कुमार



राजनीतिशास्त्र विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि ऋतेश कुमार, पुत्र श्री आर.पी. राय, ने मेरे पर्यवेक्षण में डी.फिल. उपाधि हेतु शोध कार्य किया। शोध कार्य का शीर्षक ''1990 के उपरांत भारत और संयुक्त राज्य अमेरिका संबंध : नवीन समीरण और परिवर्तनशीलकर्ता'' है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध इनका मौलिक कार्य है। मैं इनके उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ।

शोध पर्यवेक्षक

(डॉ. आलोक पंत)
विभागाध्यक्ष
राजनीतिशास्त्र विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद।

प्राक्कथन

जब इलाहाबाद विश्वविद्यालय के राजनीतिशास्त्र विभाग में मेरा नामांकन एक शोध छात्र के रूप में हुआ, तो शोध कार्य को अधुनातन स्वरूप देने के लिए, इसे 1990 के उपरान्त के ही इतिहास पर केन्द्रीकृत करना पड़ा। सुविज्ञजनों की राय भी यही थी। विशेषरूप से जब किन्हीं दो देशों के पारस्परिक संबंध पर कोई शोध प्रबन्ध हो तो यह आवश्यक हो जाता है कि शोध प्रबंध को समय खंड में बाँटा जाय और उसकी समकालीन प्रासंगिकता पर अधिक जोर डाला जाय। विश्वविद्यालय में प्रवेश मिल जाने के उपरांत, एक प्रमुख समस्या थी, सामग्री एवं तथ्य संकलन की, चूँकि भारत-संयुक्त राज्य अमेरिका संबंध पर बहुत कार्य हो चुका है किन्तु ऑग्ल भाषा में हुआ है और हिन्दी माध्यम में साहित्य अल्प मात्र में ही उपलब्ध है। अतः शोध कार्य के दौरान हिन्दी में विचारों की अभिव्यक्ति एक बहुत ही सावधानी भरा कार्य रहा। चूँकि भारत-संयुक्त राज्य अमेरिका संबंध के अनेक पहलू हैं अतः शोध प्रबंध में उन्हीं बिन्दुओं को लिया गया है जो दोनों देशों के पारस्परिक राजनय एवं विदेशनीति को प्रभावित करते रहे हैं।

शोध कार्य को एक विशेष समय खंड में बाँधने पर, एक छोटी सी किन्तु महत्वपूर्ण असुविधा अतीत के तथ्याभिव्यक्ति की होती है तथा निष्कर्ष लेखन में भी कुछ ऐसी ही प्रतीति होती है अतः वैचारिक भावगम्यता की प्रकृति लेखन के समय बहुत धीमी हो जाती है। इन सभी असुविधाओं के निवारण के लिए संक्षेप में ही सही इतिहास की बीथियों में जाना अपरिहार्य हो जाता है फिर भी विनम्र प्रयास यही है कि शोध प्रबंध पूर्ण रूप से अपनी आधुनिक प्रासंगिकता अवश्य रखे। शोध कार्य के दौरान मेरा विनम्र व संकल्पबद्ध प्रयास यही रहा है कि वैचारिक धारा प्रवाह की तीव्रता में भी मेरा लेखन शोध के मूल बिन्दु पर ही टिका रहे। शोध प्रबंध का लेखन मेरे जीवन का एकदम भिन्न अनुभव रहा तथा समय-समय पर मेरी प्रेरणा को संवेदित करने वाली परिस्थितियों ने इस प्रबंध के लेखन को संभव किया है।

शोध प्रबंध के प्रति मेरा भरसक प्रयास यही रहा है कि यह मेरा मौलिक कार्य हो। हिन्दी में लेखन सामग्री का रूपान्तरण करके ही संदर्भो को चुना गया है किन्तु इस कार्य को सुविधाजनक बनाने के लिए सारे 'फुटनोट' अंग्रेजी में ही उपलब्ध किए गए हैं।

शोध प्रबंध की मौलिकता सुनिश्चित करने के लिए मूलभूत प्रासंगिक तथ्यों की संकलन व अभिव्यक्ति उनके मूलरूप में ही (अंग्रेजी भाषा में) ऐपेन्डिक्स 1 से 13 तक में उपलब्ध कर दिया है, जिससे कि विचाराभिव्यक्ति की पूर्णता की आत्मतुष्टि मेरे लिए बनी रहे।

फिर भी मेरा विश्वास है कि ज्ञान की असीम धारा, अनादिकाल से ही मानव के मस्तिष्क को उद्वेलित करती रही है। संभवतः ऐसी कोई स्थिति हमारे जीवन में नहीं होती जब ये मान लिया जाय कि हम पूर्णतः सुविज्ञ हैं। कुछ न कुछ, या फिर बहुत कुछ हम फिर भी नहीं जान पाते। अतः कोई भी कार्य अपने में पूर्ण है, यह दावा नहीं किया जा सकता।

शोध कार्य करते हुए ऐसे क्षण अवश्य आते हैं जब सूचनाओं और विचारों का संकलन, अभिव्यक्ति में बाधा उत्पन्न कर सकता है। मैं इस शोध प्रबंध के प्रति, यह निवेदन अवश्य करता हूँ कि इसमें जो भी त्रुटियाँ बची रह गयी हैं उसके लिए सुविज्ञ विद्वतजन मुझे क्षमा करेंगे तथा मेरे प्रति अपना सतत् व अक्षुण्ण आशीर्वाद बनाए रखेंगे।

शोध प्रबंध का कार्य जटिल होता है किन्तु कुशल निर्देशन एवं पर्यवेक्षण से ऐसी कठिनाई दूर हो जाती है। इस कार्य को पूर्ण करने में, मैं सर्व प्रथम अपने विभागाध्यक्ष एवं पर्यवेक्षक डॉ. आलोक पंत जी का आभारी हूँ जिनके स्नेह की अभिव्यक्ति मैं शब्दों में संभव नहीं मानता। आपके निरन्तर सानिध्य एवं प्रेरणा ने ही, इस कार्य को संभव किया है।

मैं डॉ. नीरज पंत के प्रति हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने इस प्रयत्न में मेरा निरंतर उत्साहवर्धन किया है।

इस कार्य में मैं मेरे अन्य गुरुजन डॉ. वी.के. राय व डॉ. डी.डी कौशिक का भी हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने मेरे प्रति स्नेह का भाव बनाए रखा व समय-समय पर मुझे उत्साहित करते रहे।

अंततः मैं इस कार्य के सम्पन्न होने में, अपने माता व पिता, श्रीमती मिथिलेश कुमारी एवं श्री राजेन्द्र प्रसाद राय का आभारी हूँ जिनके आशीर्वाद व प्रेरणा से यह कार्य सतत् चलता रहा।

स्थान : इलाहाबाद

दिनांक : 07.12-2002

ऋतेश कुमार

(ऋतेश कुमार)

विषय सूची

प्रथम अध्याय

भारत-अमेरिका संबंध : पृष्ठभूमि व नवीन विश्व व्यवस्था

भारत-अमेरिका संबंध : पृष्ठभूमि व नवीन विश्व व्यवस्था

भारत और अमेरिका विश्व के दो विशाल लोकतान्त्रिक राष्ट्र हैं। किन्हीं भी दो देशों के पारस्परिक संबंध की तुलना में इन दोनों देशों द्वारा अपने द्विपक्षीय संबंध को अधिक भ्रमपूर्ण समझा गया।[1] भारत-अमेरिका संबंध को भिन्न-भिन्न संज्ञा मिलती रही, यथा अमैत्रीपूर्ण मित्रों[2] का संबंध या फिर 'शीतरूपी शान्ति।[3] दोनों राष्ट्रों के द्विपक्षीय पारम्परिक संबंध उतार-चढाव भरे रहे है। यह संबंध 'मित्रता की चाह', 'तनाव', 'कटुता', 'संदेह' एवं 'अलगाव' के दायरे में बनते बिगडते रहे। इस बीच आए सहजता व मैत्री के क्षण भी अपर्याप्त और भावनाओं और मनोकामनाओं के आधार तक ही सीमित रहे।

सामान्यत: विदेश नीति तीन आधारों पर आश्रित होती है- तात्कालिक हित, मध्यगामी हित एवं दूरगामी हित। इन तीन आधारों का समन्वय ही द्विपक्षीय संबंधों का मूल कारक होता है। अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति जॉर्ज वाशिंगटन ने इस सार्वभौम सत्य को स्वीकार करते हुए कहा था कि किसी भी राष्ट्र पर उसके हितों को दूर रखकर भरोसा नहीं किया जा सकता और कोई भी समझदार व विवेकशील राजनेता इस सत्य से भटकने का प्रयास नहीं करेगा।[4]

दूसरे विश्व युद्ध के उपरांत भिन्न-भिन्न अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाओं का उदय हुआ जैसे-प्रभावी व्यवस्थाएँ एवं अधीनरथ व्यवस्थाएँ। अमेरिका ने प्रभावी व्यवस्था व तीसरी दुनिया के ज्यादातर देशों ने अधीनरथ व्यवस्था का प्रतिनिधित्व किया। अमेरिका ने भारत के साथ अपने संबंध को इसी व्यवस्था के अनुरूप संचालित किया, जिससे इनके संबंधों में सहजता व मैत्री का अभाव रहा परन्तु शीत युद्धोपरान्त नवीन विश्व परिस्थितियों में इसमें परिवर्तन परिलक्षित हुए हैं।

---

1 Madan Lal Goel, Indo-American Realtions in a New-light, Nalini Kant Jha (ed.), India's Foreign Policy in a Changing World, 2000, P.58.

2 T.V. kunhi Krishna, the Unfriendly Friends : India and America, New Delhi, Indian Book company, 1974.

3 H.W. Brands, India and the United States : The cold Peace, Boston : G.K. Hal, 1990.

4 V.N. Khanna and Lipakshi Arora, Foreign Policy of India, 1998, P. 6.

शीत युद्ध के उपरान्त की परिस्थिति का विवेचन व अध्ययन महत्वपूर्ण है। यह विवेचना कई दृष्टिकोणों द्वारा सम्भव है, इनमें से प्रमुख है-राजनीतिक, आर्थिक व सामारिक दृष्टिकोण से अध्ययन, जो मौलिक रूप से किन्हीं भी दो राष्ट्रों के आपसी संबंधों का आधार होते हैं और उन्हें पूर्णरूपेण समझने में सक्षम होते हैं।

वैश्विक लोकतान्त्रिक व्यवस्था के दो प्रमुख आधार स्तम्भ भारत व अमेरिका है, जिनका क्षेत्रफल क्रमशः 32.87 ,लाख वर्ग किमी० एवं 95.18 ,लाख वर्ग किमी० है तथा जनसख्या क्रमशः 1 अरब 2 करोड़ (सन 2001) व साढे सत्ताइस करोड (सन 2000) है। इस भिन्नता के बावजूद दोनो देशों की समानताओं को उनके औपनिवेशिक अतीत में खोजा जा सकता है।

दोनों राष्ट्रों पर ब्रिटेन का औपनिवेशिक शासन था। अमेरिका के 13 ,मूल राज्य अंग्रेजों के उपनिवेश थे, जिन्होंने औपनिवेशक काल की स्वतंत्रता की पहली सफल लड़ाई लड़ी और 4 जुलाई 1776 को स्वतंत्र हुए। इसी संघर्ष में 'प्रतिनिधित्व नहीं तो कर नहीं' के नारों के बीच 'बोस्टन की चाय पार्टी' की घटना घटी, जिसमें अमेरिकियों ने ब्रिटिश राजशाही की नीतियों के विरोध में भारत से आयातित चाय को अटलांटिक महासागर में डूबो दिया। अमेरिकी क्रान्तिकारियों को भारत के टीपू सुल्तान से सहायता मिली जो खुद भारत में अंग्रेजों से संघर्षरत था।[1] इसके अतिरिक्त अमेरिकी गृह युद्ध में भी भारतीय कपास ने उनकी जरूरतों को पूरा किया।[2]

भारत की सांस्कृतिक विरासत व उसके अध्यात्मिक ग्रन्थों ने 1830 से 1840 के बीच अनेक अमेरिकी विचारकों को भी प्रभावित किया। जिसमें 'राल्फ वाल्डो इमरसन' व 'हेनरी डेविड थोरेग' प्रमुख है।[3] स्वामी विवकानन्द व रामतीर्थ ने अमेरिका जाकर वहाँ भारतीय धर्म व संस्कृति के बारे में फैली भ्रान्तियों को दूर किया। 1893 में स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व से प्रभावित डॉ० जॉन हेनरी राइट ने लिखा कि यहाँ एक

---

1 Harry A. Cohil, How the west was won, The Times of India, Sunday Review, 22 September 1985.

2 Dwijendra Tripthi, A Shot from A far : India and the Failure of Confederate Diplomacy, Indian Journal of American Studies, Vol. 10 No. 2 July 1980, P- 74-87

3 Madan Lal Goel, Indo-American Relations in a New light, Nalini Kant Jha (ed.), India's Foreign Policy in a Changing World, 2000, P-58

ऐसा व्यक्ति है जो अपने यहाँ के सारे विद्वान प्रोफसरों की इक्ट्ठी विद्वता से भी कहीं अधिक विद्वान है।

19वीं शताब्दी में अमेरिका ने 'मुनरो सिद्धान्त' का प्रतिपादन किया जिसके अनुसार उपनिवेशवाद 'पश्चिमी गोलार्द्ध' में लागू नहीं हो सकता था। अमेरिकी राष्ट्रपति के अनुसार न तो अमेरिका ने यूरोपीय राष्ट्रों के उपनिवेशों में हस्तक्षेप किया है और न ही करेगा, भले ही यह नीति यूरोपीय राष्ट्रों के उपनिवेशवाद को बढ़ाने में सहायक रही, फिर भी भारतीय राष्ट्रवादी एवं शिक्षित वर्ग अमेरिकी क्रान्ति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। अमेरिका का 'मानवाधिकार घोषणा पत्र' एवं शोषण मुक्ति के प्रयास की प्रतीक 'स्वाधीनता की मूर्ति' ने भारतीय चिन्तन पर अमिट छाप छोड़ी और देश को स्वाधीन कराने के लिए उन्हें प्रेरित करती रही।

1913 में आर्य समाजी लाल हरदयाल व उनके समर्थकों द्वारा स्थापित 'गदर पार्टी', 1917 में 'इण्डियन होमरूल लीग' व 1927 में 'इण्डिया लीग' की स्थापना व उसके प्रति अमेरिकियों के सहानुभूतिपूर्ण रवैये का बाद के वर्षो में अच्छा प्रभाव रहा। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन को मिले अमेरिकी समर्थन ने भारतीयों के मन में महत्वपूर्ण स्थान बनाया।

भारत 15 अगस्त 1947 को औपनिवेशिक शासन के विरूद्ध संघर्ष के बाद स्वतंत्र होकर एक प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्र बना और 1949 में जिस संविधान को अंगीकृत किया उसमें और अमेरिकी संविधान में अनेक समानताएं हैं। दोनों ही देश गणराज्य हैं जहॉ जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा संचालित लोकतांत्रिक सरकारें हैं, जहाँ पर वयस्क मताधिकार द्वारा अपने प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार है व जनता की आशाओं के प्रति उत्तरदायी प्रशासन है। केवल शासन की मूल भावना और संरचना में ही नहीं अपितु सामाजिक व्यवस्थाओं में भी समानताएँ हैं। दोनों ही राष्ट्रों में बहुल समाज है, जहाँ मत भिन्नता, विचार अभिव्यक्ति व धर्म की पूर्ण स्वतंत्रता है। इन अधिकारों व स्वतंत्रताओं को मूल अधिकार के रूप में इन देशों के संविधान में प्रमुख स्थान प्राप्त है।

(I) ऐतिहासिक सिंहावलोकन :

भारत-अमेरिका संबंध के मूल में अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के दो महत्वपूर्ण तत्व-(अ) संघर्ष व विवाद तथा (ब) परिवर्तन, सम्मिलित है। यह तत्व विभिन्न मुद्दो के सन्दर्भ में परिलक्षित होते हैं, जैसे: संघर्ष व विवाद का तत्व कोरिया संकट, गुटनिरपेक्ष नीति आणविक मुद्दा आदि में उभरकर आया व परिवर्तन का तत्व अमेरिकी नीति के बदलाव में उभरा इसका एक उदाहरण कश्मीर है, जहॉ पर शुरू में अमेरिका ने जनमत संग्रह की बात की परन्तु अब वह यह नहीं कहता है। इन तत्वों का ध्यान इनके संबंधों के विश्लेषण में आवश्यक है।

भारत की स्वतंत्रता के बाद अमेरिका की विदेश नीति से भारत के मतभेद स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुए। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिकी विदेश नीति में परिवर्तन आया और उसने सक्रिय विदेश नीति अपनाई, जबकि इसके पूर्व (1945 तक) जो नीतियॉ उसे नापसंद थी उनके प्रति अमेरिका कभी अलगाव या कभी सहयोग की नीति अपनाता रहा था।[1]

भारत ने अमेरिका से अच्छे संबंधों पर जोर दिया परन्तु राष्ट्रीय हितों के परिपेक्ष्य में मतभेद भी उभरे। द्वितीय विश्व युद्ध के समय इनके आर्थिक संबंध में वृद्धि हुई। इसके प्रमाण यह आंकड़े हैं कि वर्ष 1937-38 ,में भारत के कुल आयात व निर्यात में अमेरिका का अंश 7.4 प्रतिशत व 10.1 प्रतिशत था, जो वर्ष 1944-45 तक 25.7 प्रतिशत व 21.2 प्रतिशत हो गया। इसी समय भारत ने महत्वपूर्ण सामारिक स्थिति भी प्राप्त कर ली थी। जनरल आइजनहावर के अनुसार आस्ट्रेलिया से संचार को सुरक्षित रखने के लिए भारतीय बेसिन पर पकड आवश्यक है अन्यथा जापान व जर्मनी के बीच के इस महत्वपूर्ण संधि स्थल पर फारस की खाडी से जीत हासिल करनी होगी।[2]

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद शीत युद्ध के काल में दोनों राष्ट्रों के संबंध नए सिरे से परिभाषित हुए। 1950 ,के दशक के मध्य में भारतीय उपमहाद्वीप में शुरू हुए शीत युद्ध के समय से ही भारत-अमेरिका संबंध अमेरिका की राष्ट्रीय सुरक्षा चिन्ताओं

---

1 Charles P. Schleicher, Internatiional Relations, PHI, 1963, P- 455.

2 Quoted in T.V.K. Krishnan, Unfriendly Friends, orient, 1964, P-109.

से प्रभावित रहे। इस समय अमेरिका की विदेश नीति का मुख्य उद्‌देश्य साम्यवाद व साम्यवादी गुटों का अवरोध रहा। अमेरिकी विदेश नीति का मुख्य तत्व न केवल यूरोप बल्कि एशिया और अफ्रीका में भी यही रहा है कि कैसे एक निश्चित नीति, सोवियत संघ से वैश्विक टकराव में सहायक होगी।[1] प्रसिद्ध अमेरिकी राजनयिक जार्ज कैनन ने अमेरिकी विदेश नीति के बारे में कहा था कि अमेरिकी विदेश नीति घड़ी के पेण्डुलम की भाँति एकान्तवास एवं हस्तक्षेप के दो छोरों पर झूलती है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद प्रमुख यूरोपीय राष्ट्र जो पिछले तीन शताब्दियों से प्रमुख भूमिका में थे, महत्वहीन हो गए। इस शून्यता को तत्कालीन प्रभावशाली राष्ट्र अमेरिका व सोवियत संघ ने भरा, जिससे विश्व राजनीति में दो शक्तिशाली केन्द्र उभरे। उस समय की नई व्यवस्था में जन्म ले रहे नए राष्ट्रों, जिनमें एशियाई, अफ्रीकी, लैटिन अमेरिकी व दक्षिणी अमेरिका के देश सम्मिलित थे, के सामने एक नई चुनौती थी, कि या तो वे उन दो शक्ति केन्द्रों में से किसी एक को चुने या अपना अलग केन्द्र बनाए। भारतीय विदेश नीति के शिल्पकार पं० जहवाहर लाल नेहरू का मत था कि यह परिस्थिति दो सैन्य गुटों के कारण है जो दो विश्व युद्धों का कारण भी थी। अतः उन्होंने भारत के लिए गुट निरपेक्षता का मार्ग चुना और अन्य विकासशील राष्ट्रों को भी इसमें शामिल होने का आह्वान किया।

1950 के दशक की शुरुआत में भारत ऐफ्रो एशियन गुट के नेतृत्वकर्ता के रूप में उभरा। मिस्र के नासिर, यूगोस्लोवाकिया के टीटो, और इण्डोनेशिया के सुकार्णो के साथ नेहरू जी ने नव स्वतंत्र राष्ट्रों व विकासशील राष्ट्रों की अन्तर्राष्ट्रीय भूमिका को दिशा देने का प्रयास किया।

नव स्वतंत्र भारत को अपने समग्र विकास के लिए यह आवश्यक था कि वह किसी भी गुट में सम्मिलित हुए बिना अपने आर्थिक, सामाजिक राजनैतिक व सैनिक विकास के हर संभव मार्ग का उपयोग करें व अन्य विकासशील राष्ट्रों का इस सन्दर्भ में नेतृत्व करें। नेहरू जी ने अपनी विदेश नीति में विश्वास व उसके सफल क्रियान्वयन की आशा में सितम्बर 1954 में लोक सभा में कहा कि "यदि तुम भविष्य

1 P.M. Kamath, American Foreign Policy since Kennedy : A historical perspective, Vol 24, No-2 1982, P-14-17.

की ओर देखो तो भारत निश्चित ही विश्व का चौथा राष्ट्र (अमेरिका, सोवियत संघ और चीन के बाद) होगा, यदि हमारे साथ युद्ध या उसके जैसा कुछ घटित न हो।[1] अपने इसी दृष्टिकोण के संदर्भ में नेहरू जी ने मार्च 1947 में भी एशियाई संबंध सम्मेलन के अवसर पर कहा था कि विश्व इतिहास के इस संकट में एशिया निश्चित तौर पर महत्वपूर्ण भूमिका का वहन करेगा। एशियाई राष्ट्र अब मोहरे के रूप में और अधिक प्रयोग में नही आ सकते।[2] भारत का यह रुख अमेरिकी व्यूह रचना के विरूद्ध था, जो उसे अपने पक्ष में रखने की हिमायती थी।

अमेरिका ने भारत की गुटनिरपेक्षता को शंका की दृष्टि से देखा और तत्कालीन अमेरिकी विदेश मंत्री डलेस ने साफ तौर पर कहा कि जो भी राष्ट्र अपने को गुटनिरपेक्ष कहते हैं, अमेरिका उन्हें अपना शत्रु मानेगा। अमेरिकी नीति निर्माताओं के लिए यह कोई नया सिद्धान्त न था। अमेरिका ने द्वितीय विश्व युद्ध तक अलगाव की नीति ही अपनाई थी। 1787 में अमेरिका नव स्वतंत्र राष्ट्र था जो आर्थिक व राजनीतिक रूप से संगठित हो रहा था, जो यूरोपीय शक्तियों से सैन्य टकराव या उनके संगठन में शामिल होकर अपनी शक्ति का बिखराव नहीं चाहता था परन्तु द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इस नीति का अनुपालन संभव न था। अतः उसने सक्रिय विदेश नीति अपनाई। शूमां के शब्दों में, प्रथम महायुद्ध के बाद अमेरिका आसानी से अलगावादी नीति का अनुसरण कर सकता था क्योंकि धुरी राष्ट्रों की पराजय के बाद नया शक्ति संतुलन स्थापित हो गया था परन्तु द्वितीय महायुद्ध के बाद अमेरिका के लिए पार्थक्य नीति का अनुसरण सम्भव न था, क्योंकि नाजी राष्ट्रों के त्रिगुट की हार के बाद यूरोप और एशियाई राष्ट्रों पर साम्यवादी राष्ट्रों का प्रभाव बढता जा रहा था।

भारत को विश्वास था कि गुटनिरपेक्ष नीति के कारण उसे विवाद के समय सम्बद्ध पक्षों द्वारा गंभीरता से लिया जाएगा। भारत की विश्व नीति इस इच्छा से बॅधी थी कि वह कूटनीति का एक क्रियाशील आधार बनाएगी जो उसे विश्व शान्ति की

---

1 Jawaharlal Nehru, Indian Foreign Policy : Selected Speeches, september 1946 to April 1961, Delhi. Government of India, 1961, P-305.

2 Inagural Address of Nehru at the First Asian Relations Conference, April 1947, Quoted in N.D. Palmer, The Indian Political System, Boston, 1961, P- 251.

परिस्थित बनाने में मदद करेगी। यह निरपेक्ष भूमिका भारत को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों को उनके गुण-दोष के आधार पर हल करने व सभी पक्षों को विवाद सुलझाने में मदद करेगी।[1]

भारत द्वारा अपनायी गयी नीति का यह अर्थ नही था कि वह विश्व राजनीति में सक्रिय भूमिका नहीं निभाएगा। उसके लिए सक्रिय होने के अवसर भी थे क्योंकि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जर्मनी और जापान के विश्वव्यापी मुद्दों में दखल देने की शक्ति न थी, अन्य यूरोपीय शक्तियॉ भी कमजोर हो गयी थीं। अतः अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर उदित हुए भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ में अपनी भूमिका का निवर्हन शुरू किया। भारत की इस संस्था में न तो शक्तिशाली स्थिति थी न ही स्थायी सदस्यता परन्तु उसका इसमें विश्वास था। जिससे भारत ने उन मुद्दों को उठाना शुरू किया जिनका उसके राष्ट्रीय हित से वास्ता न था।[2] इस स्थिति ने अमेरिका से मतभेद उत्पन्न किया क्योंकि भारत की नेतृत्वकर्ता की छवि उसे पसन्द नहीं आ रही थी और यह भारत को उसके गुट में जाने से रोकती भी थी।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान अमेरिका को लगता था कि भारत बहुत समय तक ब्रिटिश उपनिवेश नहीं रहेगा, जिसे छुआ न जा सके, और न ही यह अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों का छोटा केन्द्र होगा बल्कि वह एशिया में अमेरीकी नीतियों का मुख्य बिन्दु होगा।[3] भारत द्वारा अमेरिका का पिछलग्गू न बनने से उनमें आपस में मतभेद गहराया। यदि अमेरिका भारत को खोता तो उसे लग रहा था कि वह इस क्षेत्र में बिना सहयोगी के रह जाएगा और एशिया को खो देगा, क्योंकि छोटे राष्ट्रों में वह शक्ति न थी, जो उसे संबल प्रदान करें।[4]

अमेरिकी प्रशासन का भी भारत की जनसंख्या व संपदा को देखते हुए आकलन था कि ''भारत में 350 ,मिलियन लोग हैं। यह स्वतंत्र विश्व के एक देश मे

1 R.L. Park and R.H. Fifield The US and Southern Asia in C.P. Schleichered, (ed.) P-553

2 P.M. Mamath (ed.) Indo-US Relation : The Dynamic of Change, New Delhi, South Asian Publishers, 1987, P-37.

3 L. Natrajan, American Shadow over india, Cited in D.N. Malik, Post war International Politics, Meenakashi, 1973, P-15.

4 Ibid.

अधिकतम् है.......... अपनी जनसंख्या और अपने खनिज व अन्य भौतिक संसाधनों के कारण भारत पश्चिमी देशों के लिए अति महत्वपूर्ण है।[1]

अमेरिका को उम्मीद थी कि आर्थिक रूप से सक्षम और राजनीतिक रूप से लोकतांत्रिक भारत एक उदाहरण प्रस्तुत करेगा जो एशियाई और अफ्रीकी राष्ट्रों को प्रभावित कर उन्हें चीन के मार्ग को अपनाने से रोकेगा। भारत की सफलता उन देशों में लोकतंत्र के प्रति विश्वास पैदा करेगी तथा साम्यवाद के प्रति रूझान में कमी आएगी।[2]

इस आकलन के बावजूद अमेरिका ने भारत में अपनी छवि नकारात्मक बना रखी थी। उसने खाद्यान्न संकट पर सहृदयता नहीं दिखाई। ट्रूमैन प्रशासन का रवैया लापरवाही भरा रहा। 1943-44 की दर्दनाक स्थिति का मुदलियार ने इस प्रकार उल्लेख किया कि "जहाँ भारत में तीस लाख लोग भूख से मरे वहीं इटली, जर्मनी और पोलैण्ड के युद्ध बन्दियों को किसी तरह का अभाव न रहा।"[3] इससे बनी नकारात्मक छवि के बारे में न्यूयार्क टाइम्स ने भी लिखा कि-"भारत के लोग अमेरीकियों को धन का लोभी अधार्मिक, अनैतिक तथा संसार का नेतृत्व देने में अयोग्य मानते हैं।[4]

अमेरिका ने अपनी नीति में प्रधानता यूरोप को दे रखी थी क्योंकि सोवियत संघ के साथ शीत युद्ध में तेजी आ रही थी और वह पश्चिम यूरोपीय देशों को साम्यवाद के चंगुल में फँसते नही देखना चाहता था। इसके लिए उसने समय-समय पर विभिन्न सिद्धान्तों व योजनाओं का प्रयोग किया जैसे -ट्रूमैन सिद्धान्त, मार्शल सिद्धान्त और आइजनहावर सिद्धान्त। इसके अन्तर्गत यूरोप व एशिया के राष्ट्रों को आर्थिक व सैन्य सहायता दी गई। भारत ने साम्यवाद के परिसीमन के लिए बनाई गई नीति व सैन्य गठबन्धन का कभी समर्थन नहीं किया अपितु शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व की

---

1 L. Natrajan, American Shadow over India, Cited in D.N. Malik, post war International Politics, Meenakashi, 1973, P-15.

2 K.R. Singh, India in the International System, Rajan and Ganguly (ed.), P-350

3 T.V. Kunhi Krishnan, The Unfriendly Friends : India and America, 1974, P-113

4 Ibid.

नीति का पालन करते हुए अमेरिका सहित अन्य देशों के साथ सहयोग का प्रयास किया।

1950 के कोरियाई युद्ध के अवसर पर शुरू में भारत ने अमेरिका की नीति का समर्थन किया। जिसके अन्तर्गत अमेरिका के नेतृत्व में संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयास द्वारा दक्षिण कोरिया से उत्तरी कोरिया के सैनिकों को निकाला जा रहा था। भारत ने कोई सैन्य सहायता तो नहीं दी, परन्तु एक चिकित्सक दल भेजा। जब जनरल मेंअर्थर ने 38^0 अक्षांश को पार किया तब भारत ने इसका विरोध किया क्योंकि भारत को लगा कि अमेरिका का यह कदम दक्षिण कोरिया को मुक्त कराने के बजाए चीन के प्रभाव को सीमित करने के लिए था। भारत के इस विरोध व संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन की सदस्यता की वकालत ने अमेरिका को भारत का विरोधी बना दिया।

भारत को अपने प्रभाव क्षेत्र में न ले पाने से विचलित अमेरिका ने पाकिस्तान के रूप में एक सहयोगी पाने के अवसर को भुनाया। पाकिस्तान ने भारत के विरूद्ध एक अघोषित युद्ध शुरू कर रखा था, अब उसे अमेरिका का समर्थन मिलने लगा। इसका सर्वप्रथम प्रमाण तब मिलता है जब जनवरी 1948 में कश्मीर मुद्दे पर अमेरिकी गुट ने संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा व सुरक्षा परिषद में पाकिस्तान का समर्थन किया। शीत युद्ध के उत्थान के साथ-साथ पाकिस्तान की सैन्य सहायता में भी वृद्धि होती गई, जो उसे साम्यवाद के प्रसार को रोकने के नाम पर दी जा रही थी और भारत को आश्वस्त किया जा रहा था, कि इसका प्रयोग उसके विरूद्ध नही होगा परन्तु व्यवहार में 1965 व 1971 के युद्धों में इनका प्रयोग भारत के विरूद्ध ही हुआ। भारत को अमेरिका से अपेक्षित सैन्य सहयोग न मिलने से उसे दक्षिण एशिया में बिगड़ रहे सैन्य संतुलन के लिए सोवियत संघ, ब्रिटेन व फ्रॉंस की आरे रूख करना पडा। भारत के इस रूख का एक कारण 1953 से 1964 के बीच भारत को मिली 144 मिलियन डालर सैन्य सहायता की तुलना में पाकिस्तान को मिली 701 मिलियन डालर की सैन्य सहायता भी रही।

इन सब विरोधों के बावजूद आर्थिक, सांस्कृतिक और शिक्षा के क्षेत्रों में भारत-अमेरिका संबंधों का विकास होता रहा। इस सन्दर्भ में 1951 के तकनीकी

सहयोग समझौता, 1950 के दशक मे खाद्य सहायता व कई निजी संस्थाओं जैसे फोर्ड फाउन्डेशन तथा रॉकफेलर फाउन्डेशन से सहायता प्रमुख है।

सन् 1953 में रिपब्लिकन्स के सत्ता में आने के बाद भारत अमेरिका के बीच राजनीतिक व सामरिक संबंध में तनाव और बढ़ा जो ट्रूमैन प्रशासन के अंतिम दो वर्षो से ही परिलक्षित होने लगा था। राष्ट्रपति आइजनहावर के काल में विदेशी नीति निर्माता जॉन फोस्टर डलेस ने नाटो की सफलता से उत्साहित होकर 1954 में सीटो व 1955 मे बगदाद पैक्ट (जो वाद में सेन्टो बन गया) का निर्माण किया, जो दक्षिण पूर्व एशिया व पश्चिम एशिया के सन्दर्भ में था। इस सन्दर्भ में भारत से संपर्क किया गया परन्तु उसके इंकार के बाद डलेस ने भारत से पाकिस्तान की प्रतिद्वन्द्विता के कारण उसे 1954 में सीटो का सदस्य बना लिया जो अपने जन्म के समयं से ही अमेरिका के साथ सैन्य सहयोग का इच्छुक था।[1]

पाकिस्तान को सैन्य सहायता देने व सैन्य गठबंधन का सदस्य बनाने से अमेरिका के दो उद्देश्य पूरे होते थे। एक यह कि उसने भारत को अमेरिकी संधि व्यवस्था में शामिल होने से मना करने पर दण्ड दे दिया और दूसरा यह कि पाकिस्तान के 'शत्रु' भारत की शक्ति को सीमित कर पाकिस्तान को प्रसन्न कर दिया। अमेरिका-पाकिस्तान द्विपक्षीय रक्षा समझौते 1956 ने भारत-अमेरिका संबंध को और कटु बनाया। इसके द्वारा 1958 में इराक के स्थान पर पाकिस्तान को मध्य पूर्व संधि संगठन (सेन्टो) का सदस्य बना दिया गया।

अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को अपने गुट में शामिल करने का एक अन्य उद्देश्य दक्षिण एशिया में अपनी उपस्थिति दर्ज कराना था। भारत में अमेरिका के पूर्व राजदूत चेस्टर बाउल्स ने कहा था कि, ''पिछले 15 ,वर्षो में यूरोप के बाहर अमेरिका द्वारा अधिकांश सहायता नई सरकारों को इसी उद्देश्य से दी गई कि वे अमेरिका की विदेश नीति का समर्थन करें।''[2] भारत को इस अमेरिका नीति का प्रवक्ता बनना मंजूर न था। राष्ट्रपति आइजनहावर की पाकिस्तान नीति का विरोध करते हुए अमेरिकी

1 Venkatarmani, The American Role in Pakistan, P-1-32.
2 V.N. Khanna and Lipakshi Arora, Foreign Policy of India, 1998, P-303.

सीनेटर फुलब्राइट ने कहा था कि, ''मैं भारत और पाकिस्तान दोनों देशों की जनता का आदर करता हूँ दोनों देशों में जो परस्पर तनाव है उसके कारण कई बार संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई है। हम पाकिस्तान को शस्त्र सहायता देकर इस संघर्ष को तीव्र कर रहे हैं।''[1]

पाकिस्तान के अमेरिका से सैन्य सहायता प्राप्त करने व सैनिक संगठन में शामिल होने से उसे कश्मीर के मुद्दे को संयुक्त राष्ट्र संघ में बार-बार उठाने का मौका मिला तथा उसके इस दृष्टिकोण को पश्चिमी गुट का समर्थन मिला परन्तु सोवियत संघ के भारत के पक्ष में हमेशा वीटो करने से भारत के लिए कोई असहज स्थिति उत्पन्न न हो पाई।[2] इसी समय से भारत अमेरिका संबंध में सोवियत संघ एक महत्वपूर्ण कारक हो गया। अमेरिका की विदेश नीति सोवियत संघ को ध्यान में रखकर ही बनाई जाती थी। अमेरिका द्वारा भारत के विरोध व सहायता में कमी करने से भारत का झुकाव सोवियत संघ की ओर हुआ। इन्हीं कारण से 1956 में नेहरू जी की अमेरिका यात्रा भी असफल रही।

जब 1956 में स्वेज नहर के राष्ट्रीयकरण के प्रश्न पर ब्रिटेन, फ्राँस व इज़राइल ने मिश्र पर आक्रमण किया तब इसकी विश्व जनमत के साथ-साथ भारत ने भी निन्दा की और अमेरिकी प्रयास का समर्थन किया। इस संबंध में हुए इस मामूली सुधार को एक बार फिर धक्का तब लगा जब भारत ने हंगरी में सोवियत हस्तक्षेप पर चुप्पी साध ली किन्तु लेबनान में अमेरिकी हस्तक्षेप का विरोध किया। इससे यह संदेश गया कि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर भारत का झुकाव सोवियत संघ की ओर है। इसके बावजूद आर्थिक साहयोग दोनों राष्ट्रों में बना रहा। भारत ने आइजनहावर काल में अधिकतम् विदेशी सहायता प्राप्त की, इसी समय (1960) पी०एल०-480 समझौते के तहत भारत को खाद्यान्न व आर्थिक सहायता भी मिली।

भारत-अमेरिका संबंध में 1961 से 1969 का कैनैडी व जॉनसन का काल उतार-चढ़ाव का रहा है। इस काल में भी भारत को खाद्य व आर्थिक सहायता जारी

---

1 V.N. Khanna and Lipakshi Arora, Foreign Policy of India, 1998, P-303.

2 P.M. Kamath, Indo-US Relations Dynamics of Change, P-7

रही। 1963 में तारापुर परमाणु शक्ति केन्द्र की स्थापना के लिए 8 मिलियन डालर की सहायता व ईधन आपूर्ति का समझौता हुआ तथा भारत की खाद्यान्न सहायता बढाई गयी।

इस काल का एक महत्वपूर्ण घटनाक्रम 'गोवा प्रकरण' है। जिसमें अमेरिका की भारत के प्रति विद्वेष की भावना स्पष्ट होती है। भारत अनेक राजनीतिक प्रयासों के बाद भी गोवा को पुर्तगाल से मुक्त करा कर शेष देश के साथ मिला पाने में सफल नहीं हो पा रहा था। इस संबंध में अमेरिकी नीति विचित्र रूप में समाने आई, जो भारत विरोधी थी। पुर्तगाल 'नाटो' का सदस्य था और अमेरिका उसे प्रसन्न रखना चाहता था। इसी प्रयास में अमेरिकी विदेश मंत्री जॉन फास्टर डलेस ने गोआ को पुर्तगाल का एक प्रान्त कह दिया।[1] जब 1961 भारत को बाध्य होकर गोआ को मुक्त कराना पड़ा तो संयुक्त राष्ट्र संघ में अमेरिकी प्रतिनिधि ने इस कृत्य को चार्टर का उल्लंघन बताया।[2]

गोवा प्रकरण ने भारत-अमेरिका संबंध में खटास पैदा की परन्तु कुछ गहरा प्रभाव नही डाला। 1962 ,की शुरूआत में सेक्रेटरी ऑफ स्टेट, डीन रस्क ने यह कहकर इसका पटाक्षेप करने की कोशिश की कि अमेरिका का भारत के सामाजिक व आर्थिक विकास में मौलिक हित है। भारत के दूरगामी विकासात्मक कार्यक्रम के प्रति वह वचनबद्ध है और अमेरिकी सरकार ने इस नीति व अपने हित को गोवा के मुद्दे पर नही छोड़ा है।[3]

1962 के भारत पर चीन के आक्रमण ने भारत-अमेरिका संबंध की एक बार फिर परीक्षा ली और इसे एक नया मोड़ दिया। अमेरिका ने भारत पर चीन के आक्रमण को एशिया में चीन के फैलाव व उसकी महत्वाकांक्षा के रूप में देखा। अमेरिका जनता ने भी भारत की सहायता की सरकार से अपील की, इस दौरान नेहरू जी की गुटनिरपेक्ष नीति भी संकट में आ गई। वह कहीं से भी सैन्य सहायता के इच्छुक थे। अतः भारत ने अमेरिकी सैन्य सहायता स्वीकार की और राजदूत गालब्रेथ

---

1 S.N. Mishra, India, The cold war Years, 1994 P-109.

2 Foreign Affaris Record, New Delhi, Vol II, 1956, P.11

3 Appadorai and Rajan, India's Foreign Policy and relations, south Asian, 1985, P-235

से सैनिकों को सीमा तक पहुँचाने मे मदद की गुहार की।[1] अमेरिका की ऐसी सहायता उसे सीधे तौर पर युद्ध में उतार देती, अतः उसने अपने को केवल सैन्य सहायता तक सीमित रखा।

पश्चिमी गुट द्वारा भारत को दी गई इस सहायता ने चीन को अपने कदम वापस खींचने पर मजबूर किया और उसने युद्धविराम की घोषणा की। भारत व अमेरिका के बीच इस सैन्य सहयोग ने पाकिस्तान को आपत्ति करने का मौका दिया और जुलाई 1963 में उसने यह संकेत दिया कि यदि भारत को सैन्य सहायता जारी रही तो वह पाकिस्तान के प्रति भारत के खतरे को बढाएगी और उसे मजबूर होकर चीन की तरफ झुकना पड़ेगा। इस आपत्ति का असर यह हुआ कि भारत को अमेरिकी सैन्य सहायता 500 मिलियन डालर तक सीमित हो गई।[2] पाकिस्तान ने भारत की सैन्य सहायता पर आक्षेप कर अमेरिका को बाध्य किया कि वह कश्मीर मुद्दे पर उससे बातचीत करने का भारत पर दबाव डाले इस दबाव के परिणाम स्वरूप प्रथम बार नेहरू जी ने कश्मीर में भारत-पाक के बीच की युद्ध विराम रेखा को अन्तर्राष्ट्रीय सीमा मानने का दृष्टिकोण रखा, जिसे पाकिस्तान ने अस्वीकार कर दिया।[3] सैन्य सहायता की इस प्रकार कीमत वसूल करने के अमरीकी प्रयत्न ने भारत को खिन्न कर दिया।

चीनी आक्रमण के समय शुरू हुआ सहयोग का दौर ज्यादा दिन तक न चल सका क्योंकि नवम्बर 1963 में राष्ट्रपति कैनेडी की हत्या हो गयी और इसके छः माह बाद ही नेहरू जी का स्वर्गवास हो गया। नए राष्ट्रपति जॉनसन को भारत के प्रति जानकारियों का अभाव था तथा प्रधानमंत्री लाल बहादुर का काल सीमित रहा। इस समय संबंधों में बिगाड़ तब आया जब 1965 में अमेरिका के उत्तरी वियतनाम में 'हस्तक्षेप' का भारत ने विरोध किया, इसके परिणामस्वरूप जॉनसन ने मई 1965 में शास्त्री जी की अमेरिका यात्रा के समय आगवानी से इंकार कर दिया। 1965 के भारत-पाक युद्ध में अमेरिका ने आक्रांता व पीड़ित राष्ट्र में विभेद नहीं किया और

---

1 P.M. Kamath, Indo-US Relations Dynamics of Change, P-9

2 Francine Frankel, Pay the India Card, Foreign Policy, No. 62 (spring 1986), P-154.

3 P.M. Kamath, Indo-US Relations : Dynamics of change, P-10.

दोनों को आर्थिक व सैन्य सहायता रोक दी, केवल पी०एल०-480 के अन्तर्गत खाद्यान्न सहायता भारत को दी गई।[1]

1965 के युद्ध में दोनों देशों को युद्ध विराम के लिए कहने और सभी प्रकार की सहायता रोकने के सिवाय और कुछ करने के लिए अमेरिका इच्छुक भी न था, क्योंकि वह वियतनाम युद्ध में फँसा था। इस परिस्थिति में युद्ध रोकने के लिए सोवियत संघ ने पहल की और ताशकंद समझौता सम्पन्न हुआ। इस घटनाक्रम से भारत के नीति निर्माताओं को अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का एक महत्वपूर्ण सबक मिला। दो ध्रुवीय विश्व में एक असंलग्न राष्ट्र का दूसरे संलग्न राष्ट्र से सैन्य टकराव में कूटनीति सहायता एक प्रमुख शक्ति से मिली। उस समय भारत को किसी भी शक्ति का सहयोग न था। इस घटना ने भारत को सजग विदेश नीति के प्रति प्रेरित किया।

1966 की शुरूआत में श्रीमती इंदिरा गाँधी के प्रधानमंत्री बनने के बाद दोनों देशों के संबंध में सुधार की आशा हुई। उन्होंने अमेरिका की यात्रा की और जानकारों के अनुसार अमेरिका दबाव में रूपये का अवमूल्यन भी किया परन्तु वियतनाम युद्ध के सन्दर्भ में उनमें मतभेद रहे। इसी समय भारत में खाद्य संकट का एक और दौर आया परन्तु अमेरिका ने सहायता से इंकार कर दिया। उदारवादी अमेरिकी भी यह समझ रहे थे कि वियतनाम युद्ध में समर्थन न देने का अमेरिका बदला ले रहा हे। इसके विपरीत जॉनसन व उनके प्रशासन का मत था कि वे भारत को खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर बनने को प्रेरित कर रहे हैं। जॉनसन ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि तत्कालीन भारतीय खाद्य मंत्री सी० सुब्रमण्यम ही उनकी नीति के उद्देश्यों को समझ रहे थे।[2]

---

1 P.M. Kamath, Indo-US Relations : Dynamics of change, P-11.

2 Lyndon B. Johnson, Ventage Point : Prespective of the Presidency 1963-1969, New York : Popular Library, 1971, P-226.

1970 के दशक में अनेक ऐसे मुद्दे आए जिन्होंने भारत-अमेरिका सबंध की दिशा तय की। इनमें से प्रमुख पॉच मुद्दे जिन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, इस प्रकार हैं :

1. मास्को बीजिंग टकराव
2. वियतनाम युद्ध
3. बंगलादेश युद्ध,
4. आणविक मुद्दा,
5. पाकिस्तानी कारक।

1950 के दशक की शुरूआत में चीन सोवियत संघ का मित्र व वैचारिक सहयोगी के रूप में उभरा। इस गठबंधन ने अमेरिका को गंभीर चुनौती दी। अतः अमेरिका ने चीन की साम्यवादी शासन को मान्यता नहीं दी परन्तु 1960 के दशक में सोवियत संघ व चीन के संबंधों में सीमा विवाद के कारण तनाव उभरा और 1969 में झड़पें भी हुई। इससे चीन ने अमेरिका के प्रति अपनी नीति में बदलाव किया और "पींग पोंग कूटनीति" को अमेरिका के साथ शुरू किया। इस सोवियत संघ व चीन के टकराव ने अमेरिका व चीन के बीच कूटनीति संबंध स्थापित करा दिए जो "निक्सन कीसिंजर सिद्धान्त" द्वारा संचालित थे इसने चौथी शताब्दी के भारतीय कूटनीतिक मनीषी कौटिल्य के इस दर्शन को चरितार्थ किया कि "शत्रु का शत्रु मित्र होता है।"[1]

पाकिस्तान के याह्या खान ने अमेरिका को मदद करने के लिए निक्सन के दूत के रूप में चीन की गुप्त यात्रा की और यह यात्रा अमेरिका द्वारा चीन को पीपुल्स रिपब्लिक के रूप में 1972 में मान्यता प्रदान कराने में सफल रही।[2] इस प्रकार चीन पाकिस्तान व अमेरिका के रूप में उभरा यह गठजोड़ भारत के लिए नई मुसीबत लेकर आया। पाकिस्तान द्वारा पूर्वी पाकिस्तान (वर्तमान बंगलादेश) में किए जा रहे अत्याचारों के प्रति अमेरिका की आँख बंद रही क्योंकि वह चीन के प्रति आसक्त था

---

1 Raju G.C. Thomas, Secrujity Relationship in Southern Asia: Differences in Indian and American perspective, Asian Survey, vol xxi, no. 7, July 1981, P-689.

2 Staneley wolpert, Roots of confrontation in South Asia : Afghanistan Pakistan, India and super pow ers, New York : oxford University press, 1982, P-153.

तथा पाकिस्तान इसमें मदद कर रहा था। अतः बंगलादेश में हो रहे नरसंहारों के प्रति अमेरिका की यह प्रतिक्रिया आई कि "यह पाकिस्तान का आतंरिक मामला है।"[1] पाकिस्तान को दी जा रही सहायता को इन नरसंहारों के परिपेक्ष्य में कम करने के भारत के निवेदन के बाद भी निक्सन ने सहायता दस गुना बढ़ा दी और इसमें 5 मिलियन डालर के हथियार व 2,50,000 डालर पुलिस प्रशिक्षण के लिए अलग से दिए।[2]

इस दशक में एक दूसरे मुद्दे वियतनाम युद्ध ने भारत-अमेरिका संबंध पर गहरा प्रभाव डाला। वियतनाम युद्ध में अमेरिका का संलग्न होना उसका इस क्षेत्र में नेतृत्व करने की अभिलाषा से प्रेरित था। 20 फरवरी 1979 को दक्षिण केरोलिना की विधान परिषद को सम्बोधित करते हुए निक्सन ने कहा भी कि "वियतनाम युद्ध पूरे विश्व में अमेरिका के नेतृत्व करने की क्षमता को स्थापित करने की इच्छा को प्रतिबम्बित करता है।"[3] अमेरिका का यह रुख उसके बढ़ते हुए हस्तक्षेपवादी चरित्र का परिचायक था। वह अपनी सत्ता को शक्ति द्वारा सिद्ध करना चाहता था और विश्व को यह दिखाना चाहता था कि वह अपने सहयोगियों के साथ है। अमेरिका को अपने इस कदम के समर्थन की, मुख्यतः तीसरे विश्व के देशों से अपेक्षा थी परन्तु भारत ने उसके इस कदम का समर्थन नहीं किया, जिससे अमेरिका में नाराजगी का माहौल बना।[4] इस मुद्दे ने 1970 के दशक के शुरूआती पाँच सालों तक अपना प्रभाव दोनों देशों के संबंध पर बनाए रखा। इस समय दोनों के बीच संबंध नहीं टूटे तो इसका कारण यह था कि सोवियत-चीन मुठभेड़ के बाद बढ़े अन्तर्राष्ट्रीय तनाव से अमेरिका भारत को दुत्कारने का जोखिम नहीं उठा सकता था।[5]

भारत-अमेरिका संबंध इतने खराब कभी नहीं थे, जितने 1971 में हो गए। बंगलादेश का संकट पाकिस्तान की आंतरिक राजनीति से प्रारम्भ हुआ था परन्तु कुछ ही महीनों में इसने गम्भीर रूप ले लिया। 24 मार्च 1969 को सत्ता में आए

1. Staneley wolpert, Roots of confrontation in South Asia : Afghanistan Pakistan, India and super powers, New York : oxford University press, 1982, P-151.
2. Ibid P-152.
3. D. Mohite : Indo-US Relations: Dynamic of Change (Edited by P.M. Kamath), P-60.
4. Ibid. P-61
5. Puspesh pant & Sri Pal jain, International relation, 1995, P-432.

जनरल याह्या खान, जिनको निक्सन ने माओ के साथ सम्बन्ध बनाने में मध्यस्थ बनाया था,[1] ने अपने सैन्य बल द्वारा पूर्वी पाकिस्तान में जनसंहार शुरू करवाया। इसके परिणामस्वरूप 1 अप्रैल 1971 से मई 1971 के करीब 2.3 मिलियन शरणार्थी भागकर भारत आए जिससे भारत पर आर्थिक दबाव बढ गया। भारत की अमेरिका से पाकिस्तान को संयमित करने का प्रार्थना अस्वीकार कर दी गई और युद्ध की स्थिति में पाकिस्तान का पक्ष लेने का संकेत दिया गया। ऐसे में भारत के पास एक ही विकल्प था और उसने अगस्त 1971 में सोवियत संघ के साथ 'मित्रता व सहयोग की सन्धि' कर ली। 1971 के युद्ध के शुरू होने पर अमेरिका ने पाकिस्तान के पक्ष की नीति की घोषणा की और बंगाल की खाड़ी में युद्धपोत (सातवॉ बेड़ा) भेजकर भारत के भयादोहन की कोशिश की। निक्सन का मत था कि सोवियत संघ समर्थित भारत की अमेरिका समर्थित पाकिस्तान पर विजय सोवियत संघ की विजय होगी।[2]

अमेरिका भारत विरूद्ध व्यवहार करके भी पाकिस्तान का विभाजन न रोक सका, तब भी निक्सन ने इसे अपने पक्ष में सफलता बताते हुए कहा कि कूटनीतिक संकेतों के प्रयोग व पर्दे के पीछे के दबाव द्वारा हम पश्चिमी पाकिस्तान को भारत के आक्रमण व प्रभुत्ववादी खतरे से बचा सके।[3]

भारत की इस विजय ने दक्षिण एशिया में उसका प्रभुत्व स्थापित किया। इसे अमेरिका भी समझ रहा था और 1972 में हेनरी किसिंजर ने कहा कि दक्षिण एशिया में भारत का प्रभुत्व था। इस समय निम्न स्तर पर उतर आए दोनों देशों के संबंध में किसिंजर ने अपनी पुस्तक 'व्हाइट हाउस इअर्स' में लिखा कि 1971 तक भारत के साथ हमारे संबंध दोष व तनावयुक्त मैत्रीपूर्ण हो गए थे। अमेरिका ने दक्षिण एशिया में भारत की शक्ति को परिसीमित करने की मंशा को पाकिस्तान में सैन्य आधार बनाकर पूरा करना चाहा। भारत के विरूद्ध क्षेत्रीय संतुलन की यह नीति कम से कम 1970 के दशक के मध्य तक चली।[4]

---

1 Wolpert, Roots of confrontion, P-136
2 The memoris of Richar Nixon, London, 1978, P-527
3 Ibid, P-530.
4 P.M. Kamath, Indo-US Relations: Dynamics of change, P-67

भारत ने पिछली घटनाओ से सबक लेते हुए एवं तात्कालीन सामरिक परिस्थिति का आकलन करने पर यह पाया कि अब सुरक्षा संबंधी दृष्टिकोण पाकिस्तान के सन्दर्भ में ही नहीं होना चाहिए अपितु चीन-पाकिस्तान गठजोड़ के परिपेक्ष्य में भी होना चाहिए। भारत के सुरक्षा परिदृश्य में इसके साथ-साथ एक नया कारक ईरान भी उभरा। अमेरिका ने ईरान को सैन्य आपूर्ति बढा दी थी और अमेरिकी स्टेट डिपार्टमेन्ट का वक्तव्य था कि ''ईरान पाकिस्तान का मित्र है और पाकिस्तान के शत्रु भारत को अपना भी शत्रु स्वीकार करता है।''[1]

अपनी सुरक्षा संबंधी आकलन व आंतरिक दबाव के कारण भारत ने मई 1974 में परमाणु विस्फोट किया, साथ ही साथ इसके शान्तिपूर्ण प्रयोग का आश्वासन भी दिया। आश्चर्यजनक रूप से अमेरिका व सोवियत संघ की प्रतिक्रिया लगभग एक जैसी रही। क्रेमलिन ने अपने राजदूत को मंत्रणा के लिए बुलाया। उसे लगा कि अब भारत उस पर कम निर्भर रहेगा। अमेरिका ने स्वाभाविक प्रतिक्रिया दी और तारापुर परमाणु शक्ति केन्द्र की ईधन आपूर्ति बंद कर दी। यह प्रतिकिया बहुत आकमक न थी यद्यपि अनेक प्रभावशाली सीनेटरों ने भारत के खिलाफ बड़े कदम की मांग की।[2] एन०पी०टी० पर हस्ताक्षर के लिए भी भारत पर दबाव पड़ा परन्तु इसे भेदभावपूर्ण मानते हुए भारत ने इंकार कर दिया।

भारत-अमेरिका संबंध में टकराव का एक और महत्वपूर्ण कारक पाकिस्तान रहा है। अमेरिका ने भारत-पाक के बीच संतुलन स्थापित करने में दक्षिण एशिया में शस्त्र होड़ को बढ़ावा दिया। भारत द्वारा अमेरिकी गुट में जाने से इंकार के बाद, पाकिस्तान अमेरिका का मोहरा बना और उसने भारत से अपनी दुश्मनी निकालने में अमेरिका की हर संभव मदद ली। पाकिस्तान को जारी सैन्य सहायता में नया उछाल जनरल जियाउलहक द्वारा भुट्टो से सत्ता हथियाने पर शुरू हुआ और इसके लिए बहाना अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप के रूप में मिला। नव शीत युद्ध ने पाकिस्तान को अमेरिका के और पास लाने व अफगानिस्तान में अमेरिका के हित

1 P.M. Kamath, Indo-US Relations: Dynamics of change, P-68

2 Indian Nuclear explosion Senate Government Operations Committee Release, June 1976, P-12

साधन में सहायक बनने की कीमत के रूप में भरपूर सैन्य व आर्थिक सहायता उपलब्ध करायी।

भारत में जनता सरकार के काल में भी तारापुर केन्द्र के लिए ईधन, परमाणु अप्रसार संधि, पाकिस्तान द्वारा परमाणु शक्ति के विकास तथा हिन्द महासागर को शान्ति क्षेत्र घोषित करने जैसे प्रश्नों के हल खोजे जाते रहे। नव शीत युद्ध का प्रारम्भ व इसके परिणाम स्वरूप पाकिस्तान को 'अग्रिम पंक्ति राज्य' (Frontline State) का दर्जा संबंधों में बिगाड का कारण बना। भारत में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के विरूद्ध चलाये गए अभियान ने भी इस सम्बन्ध को शिथिल करने में योगदान दिया।

1980 के दशक की शुरूआत में अमेरिका में रीगन व भारत में श्रीमती गॉधी सत्ता में आई। रीगन ने अपने चुनावी प्रचार में कहा था कि उनका मुख्य उद्देश्य अमेरिका को फिर नम्बर एक की स्थिति में लाना है, जो कार्टर के काल में सोवियत संघ से सैन्य क्षेत्र में पिछड़ गया था। अतः एक बार फिर भारत-अमेरिका संबंध अमेरिका व सोवियत संघ की प्रतिद्वन्दिता से संचालित होने लगे। भारत को संतुलित करने के लिए पाकिस्तान का प्रयोग एक उपकरण के रूप में पुनः शुरू हुआ। अफगानिस्तान में सोवियत उपस्थिति व भारत के प्रभुत्व की बात उठाकर पाकिस्तान अमेरिका से भरपूर सैन्य व आर्थिक सहायता प्राप्त करता रहा। रीगन ने पाकिस्तान के सहायता पैकेज को कई गुना बढ़ा दिया और उसकी एफ-16 युद्धक विमान की मांग पूरी की। इससे पाकिस्तान खुलेआम कहने लगा कि भारत के आणुविक केन्द्र पाकिस्तान वायु सेना के आक्रमण से बचे नहीं रह सकते।[1]

अक्टूबर 1981 में कैंकन में उत्तर-दक्षिण वार्ता के अवसर पर श्रीमती गाँधी व रीगन की भेंट हुई और संबंधों में सुधार के कुछ लक्षण दिखे। जुलाई 1982 में अमेरिका यात्रा के दौरान रीगन से भेंट को श्रीमती गॉधी ने 'समझने और मित्रता की खोज का साहस' की संज्ञा दी तथा रीगन ने इसे 'आविष्कार की बातचीत' कहा। इस समय तारापुर सयंत्र के लिए ईधन आपूर्ति की व्यवस्था हुई परन्तु तीन प्रमूख मुद्दे ऐसे रहे जिन पर मतभेद बने रहे। वे मुद्दे थे, पाकिस्तान को दी जा रही सैन्य

---

1 Free Press, Journal, Bombay, 1 October 1984

सहायता, अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को सचेत किया जाना कि भारत उसके आणविक केन्द्रों पर आक्रमण कर सकता है तथा पंजाब में बढ रहा आतंकवाद और उन पृथकवादियों के प्रति अमेरिकी दृष्टिकोण।

1984 में श्रीमती गॉधी की हत्या के बाद प्रधानमंत्री बने राजीव गांधी 1985 में अमेरिका की यात्रा की। इस युवा नेता के विचार अपने पूर्ववर्तियों से अलग थे। उन्होंने आर्थिक विकास के लिए नई रणनीति अपनाने की बात की, जो नियंत्रण व लाइसेन्स राज के खात्मे आर्थिक उदारीकरण और निजी क्षेत्र को बढ़ाने में सहायक थी। इसका अमेरिका द्वारा स्वागत किया गया। राजीव गाँधी ने अमेरिका की यात्रा के समय कहा कि वह यहॉ किसी विशेष चीज को प्राप्त करने नहीं आए हैं बल्कि दोनों देशों की आपसी समझ बढ़ाने आए हैं।[1] उन्होंने विश्व बैंक से आसान शर्तो वाले ऋण व अन्य सस्थाओं से आर्थिक सहायता की बात की। इस काल में व्यापारिक और तकनीकी संबंधों का विकास हुआ परन्तु 1988 में अमेरिका द्वारा यू०एस० ओमनीबस ट्रेट एक्ट पास करने व उसकी धारा सुपर 301 के अन्तर्गत 1981 में भारत पर प्रतिबन्ध लगाने की धमकी दी गई। अमेरिका का आरोप था कि भारत कापीराइट व पेटेन्ट के अधिकारों का उल्लंघन कर रहा है। भारत ने अमेरिका के इस कदम को तथा परमाणु अप्रसार के सन्दर्भ में अपनाये जा रहे भेद-भाव पूर्ण रवैये को दुर्भाग्यपूर्ण बताते हुए विरोध दर्ज कराया। यद्यपि 1980 के दशक के मध्य से अमेरिका ने भारत में भी सोवियत संघ के प्रभाव को कम करने के लिए अपनी नीतियों को थोड़ा नर्म किया जिससे द्विपक्षीय संबंध में सुधार दिखा।

1989 के चुनावों में राजीव गॉधी की हार हुई और अमेरिका में सत्ता जॉर्ज बुश (सीनियर) के हाथ में आई। इसके बाद का काल विश्व राजनीतिक मंच पर बहुत उथल-पुथल व व्यापक बदलाव वाला रहा। इसने भारत-अमेरिका संबंध को एक नई दिशा दी। शीत युद्ध जो द्वितीय विश्व युद्ध के बाद शुरू हुआ था, 1989 के अन्त में समाप्त हो गया। दोनों महशक्तियों ने परस्पर टकराव का मार्ग छोड़ा परन्तु शीर्घ ही

---

1 B. Ramesh Babu, Rajiv-Reagan Summit (edited by P.M. Kamath : Indo - US Relations Dynamics of Change, P-159)

सोवियत संघ डगमगाने लगा और 1991 के अंत के साथ उसका 'विधिवत' विघटन हो गया। इस आकस्मिक घटना ने अमेरिका को एक मात्र महाशक्ति के रूप में स्थापित कर दिया। तेजी से बदलते घटनाक्रम जैसे खाडी संकट, सोवियत विघटन, जर्मन एकीकरण, पूर्वी यूरोप से साम्यवाद का पतन यूरोपीय एकीकरण, भूमण्डलीकरण, आर्थिक कारक का प्रधान होना और आतंकवाद आदि ने भारत व अमेरिका दोनों को अपनी नीतियों में परिवर्तन के लिए बाध्य किया।

सहायक विदेश उपमंत्री जॉन मेलट ने 19 मई 1993 को कहा कि शीत युद्ध की समाप्ति के पश्चात् अमेरिका प्रशासन के दक्षिण एशिया में जो प्रमुख हित सन्निहित हैं, उनमें क्षेत्रीय स्थायित्व एवं अप्रसार को प्रोत्साहन, आर्थिक सुधारों को प्रोत्साहन एवं अमेरिकी व्यापार एवं निवेश के अधिक से अधिक अवसर प्राप्त करना, आतंकवाद एवं नशीले पदार्थों पर प्रतिबंध लगाना, समुद्री एवं नैवल आवागमन के अधिकारों को सुरक्षित रखना था। इसके अतिरिक्त आबादी वृद्धि, एड्स, शरणार्थियों एवं पर्यावरण जैसे विश्वव्यापी मामलों की ओर ध्यान देना प्रमुख है।[1]

1989 के बाद से भारत की आतंरिक राजनीति में भी परिवर्तन आया और मिली-जुली सरकार व राजनीतिक अस्थिरता का दौर शुरू हुआ। इस समय की राष्ट्रीय मोर्चा सरकार के काल में दोनों राष्ट्रों के संबंध सामान्य रहे। अप्रैल 1991 में सुपर 301 के तहत भारत पर प्रतिबन्ध का निर्णय अमेरिका ने लिया, बाद में इसे स्थगित कर दिया गया। खाड़ी संकट के शुरू में भारत ने अमेरिकी विमानों को ईधन की सुविधा दी बाद में आन्तरिक दबाव में वापस ले ली। इसी समय पाकिस्तान ने भारत के साथ तनाव बढ़ाया लेकिन बदली परिस्थितियों में दक्षिण एशिया में पाकिस्तान की पूर्व वाली स्थिति न रही। अतः अमेरिका का झुकाव उसकी ओर कम हुआ और पहली बार-कश्मीर के सन्दर्भ में उसने कहा कि अमेरिकी सरकार संयुक्त राष्ट्र के तहत 1948 व 1949 के प्रस्ताव, जिसमें जम्मू कश्मीर में जनमत संग्रह की बात है, पर जोर नहीं देती। वह न तो इसका विरोध करती है, न ही समाप्त मानती

1 Dainik Jagaran, Varanasi, 20 May 1993

है, दोनों पक्षों को शिमला समझौते के आधार पर सहमत होना चाहिए। दक्षिण एशिया नीति में परिवर्तन के कारण की पाकिस्तान को 1991-92 की अमेरिका सहायता प्रेसलर संशोधन द्वारा रुक गयी।

भारत में नरसिम्हा राव सरकार के आर्थिक उदारीकरण के दौर में अमेरिका के साथ आर्थिक व व्यापारिक संबंधों में व्यापक सुधार पाया गया। अमेरिका ने इन सुधारों का स्वागत किया और बहुपक्षीय संस्थाओं के ऋण के लिए भारत के अनुरोध का समर्थन किया। इस दौरान अमेरिकी निवेश में तीव्र वृद्धि हुई। नरसिम्हा राव की अमेरिका यात्रा ने दोनों देशों में लोकतांत्रिक शासन को प्रोत्साहित करने, क्षेत्रीय व विश्व शान्ति के संरक्षण, इस्लामिक कट्टरवाद के विरोध, आपसी व्यापार व निवेश में वृद्धि तथा सैन्य सहयोग में वृद्धि पर सहमति बनायी।

उपरोक्त क्षेत्रों में सहयोग के साथ-साथ मतभेद भी उभरकर सामने आए। अमेरिका ने एन०पी०टी० व सी०टी०बी०टी० पर हस्ताक्षर के लिए दबाव बढ़ाया। इसी सन्दर्भ में दबाव डालने के लिए उसने कश्मीर व पंजाब में मानवाधिकारों के हनन की बात की, विशेष रूप से क्रायोजेनिक इंजन समझौता रद्द करवाया, डब्लू०टी०ओ०, उरुग्वे दौर, पर्यावरण, श्रम कानून, बौद्धिक सम्पदा अधिकार व पेटेन्ट अधिकार आदि को लेकर भी दबाव बनाने का प्रयास हुआ। कश्मीर के प्रश्न पर अंडर सेक्रेटरी रॉबिन रफेल ने कहा कि अमेरिका भारत में कश्मीर के विलय पत्र को स्वीकार नहीं करता।[1]

राष्ट्रपति क्लिंटन के दूसरे कार्यकाल में दोनों देशों की बेहतर समझ विकसित हुई और वे विशेष रूप से पास आए। कश्मीर पर पहले कार्यकाल की नीति में परिवर्तन हुआ और पाकिस्तान पर सीमा पर आतंकवाद समाप्त करने का दबाव पड़ा। 20 मार्च 2000 को ए०बी०सी० वर्ल्ड न्यूज को दिए गए साक्षात्कार में क्लिंटन ने अपनी कश्मीर नीति के बारे में कहा कि, मैं जानता हूँ कि पाकिस्तान चाहता है कि वह किसी तरह हमें कश्मीर मामले से जोड़ ले लेकिन ऐसा नहीं होगा, सबसे पहले तो भारत ऐसा नहीं चाहता फिर मैं जान बूझकर फैलाई जा रही हिंसा के मामले में नहीं पड़ना चाहता, हमारी नीति है नियंत्रण रेखा का सम्मान किया जाए, तीसरे पक्ष के

---

1 P.D. Kaushik, International Relation, 1995, P-495

द्वारा हिंसा फैलाने पर रोक लगे तथा दोनो पक्षों के बीच बातचीत हो।[1] कारगिल संकट में अमेरिकी सहयोग विशेष रूप से दिखा और पाकिस्तान को अपने कदम वापस खींचने पडे। इस संकट पर क्लिंटन की टिप्पणी थी कि ''जिन्होंने खून से सीमा रेखाओं को बदलने की नाकाम कोशिश की है उन्हें यह दौर कभी माफ नहीं करेगा।''[2]

इस दौरान 1998 में भारत द्वारा नाभिकीय परीक्षण के कारण अमेरिका ने भारत पर प्रतिबन्ध लगाए जो 2001 में समाप्त कर दिए गए। क्लिंटन की भारत यात्रा ने दोनों देशों को नए सिरे से एक दूसरे को समझने का अवसर दिया। इस दौरान 'दृष्टिकोण 2000' नामक प्रपत्र जारी हुआ तथा अनेक समझौते सम्पन्न हुए। क्लिंटन ने स्पष्ट तौर पर कहा कि कश्मीर में हिंसा को बंद किए बिना पाकिस्तान से भारत की बातचीत का कोई अर्थ नहीं है।

क्लिंटन के बाद आए प्रशासन के सन्दर्भ में आशंका व्यक्त की गई कि अब दोनों देशों के संबंधों में शिथिलता आएगी परन्तु अमेरिका पर हुए आतंकवादी हमले ने अमेरिका को आतंकवाद के सन्दर्भ में भारत के दृष्टिकोण को समझने में मदद की और उसने विश्वभर से आतंकवाद को समाप्त करने के लिए व्यापक सहमति बनाने की बात की। इससे पाकिस्तान पर सीमा पार आतंकवाद समाप्त करने का दबाव पड़ा। अमेरिका कांग्रेस द्वारा सी०टी०बी०टी० नामंजूर करने तथा अमेरिका द्वारा एन०एम०डी० कार्यक्रम को आगे बढ़ाने से भारत पर नाभिकीय क्षेत्र में दबाव भी कम हुआ। चार दशकों के बाद 2002 में संयुक्त सैन्य अभ्यास प्रारम्भ किया गया। दोनों देशों ने अपने दूरगामी हितों को ध्यान में रखते हुए अपनी आपसी समझ का दायरा बढ़ाने का कार्य किया है।

भारत-अमेरिका संबंध अमेरिका की दक्षिण एशिया नीति से प्रभावित रहे हैं। विश्वस्तर पर हुए बदलावों ने दक्षिण के सन्दर्भ में अमेरिका नीति में परिवर्तन का दबाव बनाया, जिससे पाकिस्तान के बजाए भारत का महत्व बढ़ा। चीन को संतुलित

---

1 Dainik Jagaran, Varanasi, 3 March 2000

2 India Today, 12 April 2000, P- 32

करने की अमेरिका की नीति में भारत का सामरिक महत्व बढ़ गया है और विश्व जनमत में आतंकवाद के खात्मे के लिए भारत व अमेरिका के सहयोग की आकांक्षाएं बढी हैं। आर्थिक रूप से विश्व की चौथी सबसे बडी अर्थ व्यवस्था[1] व विशाल बाजार की संभावनाओं से भी दोनों में सहयोग स्वाभाविक रूप से बढ़ा है।

पोखरण विस्फोट के बाद अमेरिकी विदेश नीति में भारत काफी ऊपर आ गया। अमेरिका पर हुए आतंकवादी हमले (11 सितम्बर 2001) से दोनों देशों ने एक दूसरे के सानिध्य की आवश्यकता को समझा है। अब अमेरिका ने भारत की सुरक्षा को भारतीय सीमाओं के भीतर ही नहीं अपितु विश्व सन्दर्भ में देखना शुरू किया है और एशिया की सुरक्षा में भारत की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार किया है। पहली बार अमेरिकी विदेश नीति में एक स्वतंत्र देश के रूप में भारत महत्वपूर्ण हो गया है तथा पोखरण विस्फोट व उभरती आर्थिक शक्ति के कारण भारत को अपने प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी चीन को संतुलित करने में एक दीर्घकालीन सहयोगी के रूप में भी देखता है।

(II) नवीन विश्व व्यवस्था व आयाम :

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक के अन्तर्राष्ट्रीय जगत में आमूल-चूल परिवर्तन परिलक्षित हुए। जिसने राजनीतिक, आर्थिक व सामरिक दृष्टिकोण से विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में अपना प्रभाव डाला। विश्व राजनीतिक व्यवस्था में यह परिवर्तन सन् 1989 से प्रारम्भ होता है और दुनिया नवीन परिस्थितियों में परिणत होकर भविष्य के प्रति सन्नध हो जाती है। शीत युद्ध का अंत, एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था, यूरोपीय एकीकरण, खाड़ी संकट, नवीन विश्व अर्थव्यवस्था, दक्षिण एशिया नीति में परिवर्तन आदि ऐसी घटनाएँ है जिन्होंने भारत-अमेरिका संबंधों के नए युग का सूत्रपात किया है।

(क) शीत युद्ध का अंत :

जब भी राजनीतिक मंच पर दो महाशक्तियों का प्रादुर्भाव होता है, उनमें एक दूसरे को संतुलित करने की प्रतिस्पर्धा शुरू हो जाती है। इसका उदाहरण हम प्राचीन काल से वर्तमान तक अनेक बार देख सकते हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद

1 World Development indicator Report 2002

उभरे दो शक्ति केन्द्रों, अमेरिका व सोवियत संघ, के बीच की प्रतिस्पर्धा पुरानी शक्ति संतुलन का नवीनीकरण है। जिसे 'शीत युद्ध' का नाम दिया गया। यह एक ऐसी स्थिति थी जिसमें दोनों पक्ष परस्पर शान्तिकालीन कूटनीतिक संबंध बनाए रखते हुए भी परस्पर शत्रु भाव रखते थे और सशस्त्र युद्ध के अतिरिक्त अन्य सभी उपायों से एक दूसरे की स्थिति को दुर्बल बनाने का प्रयत्न करते थे।[1]

सन् 1917 की साम्यवादी क्रान्ति के बाद स्थापित साम्यवादी शासन को पूँजीवादी पश्चिमी राष्ट्रों से गंभीर चुनौती मिली। साम्यवादियों ने अपने आधार को पूँजीवादी हस्तक्षेप से बचाने व उसे दृढ़ता प्रदान करने में सफलता पाई परन्तु विश्व क्रान्ति को प्रदीप्त करने की उनकी अभिलाषा अपने मूल रूप में स्थापित न हुई। सोवियत संघ व पश्चिमी राष्ट्रों के इस शुरूआती शत्रुताभाव को द्वितीय विश्व युद्ध के समय हम एक अनोखे गठबंधन के रूप में बदलते देखते है, जब दोनों अपने समान शत्रु नात्सी जर्मनी के विरूद्ध मैत्री में आबद्ध हो गए। इन विपरीत विचार धाराओं के बीच पनपी यह विश्वास की भावना 1945 के 'याल्टा सम्मेलन' तक चरम पर पहुँच गयी। अमेरिकी राजनीतिज्ञ हेरी होपकिन्स ने कहा कि "हम अपने हृदयों में वास्तव में आश्वस्त थे और यह एक नूतन दिवस का उषाकाल था, जिसके लिए हम इतने वर्षो से प्रार्थना कर रहे थे और जिसकी चर्चा कर रहे थे। हम पूर्ण रूप से निश्चित थे कि हमने शान्ति की प्रथम विजय प्राप्त कर ली है। रूसवासियों ने यह सिद्ध कर दिया था कि वे युक्तियुक्त और दूरदर्शी हो सकते हैं तथा हम भविष्य में जहाँ तक सोंच सकते हैं वहाँ तक उनके साथ शान्तिपूर्वक रह सकते हैं और चल सकते हैं।"[2]

सोवियत संघ व पश्चिमी शक्तियों का यह सहयोग स्थायी न बन सका। इसके सन्दर्भ में उनके अपने-अपने मत हैं। पश्चिमी शक्तियों को बढ़ते हुए साम्यवादी प्रभाव, याल्टा और पोट्समैन सम्मेलनों के समझौतों की अवहेलना, टर्की, यूनान, ईरान व विभिन्न पूर्वी यूरोपीय राष्ट्रों पर सोवियत दबाव से आपत्ति थी। जबकि सोवियत संघ ने जर्मनी के विरूद्ध मोर्चा खोलने में देरी, पराजित राष्ट्रों से शान्ति समझौते, पश्चिम जर्मनी की स्थापना, परमाणु गोपनीयता आदि को अपने विरूद्ध माना।

---

1 P.D. Kaushik, International Relations, 1995, P- 361.

2 In a Press conference on 23 July 1964.

इस अविश्वास व मतभेद ने दोनों शक्तियों के बीच शक्ति राजनीति की शुरूआत की, जिसने पूरे विश्व को दो भागों में विभाजित कर दिया। यद्यपि तीसरे विश्व के देशों ने एक तीसरा केन्द्र, गुटनिरपेक्ष देशों का बनाने का प्रयास किया। इस समय शुरू हुए संघर्ष के लिए 'शीत युद्ध' का प्रथम प्रयोग अमेरिकी राजनेता बर्नार्ड बारूच द्वारा किया गया और प्रो0 लिप्पमैन ने इसे लोकप्रिय बनाया।[1] इस शब्द से सोवियत संघ व अमेरिका के शत्रुतापूर्ण व तनावपूर्ण सम्बन्धों की अभिव्यक्ति होती है। इन सम्बन्धों को गर्म युद्ध में परिवर्तित किए बिना शीत युद्ध में वैचारिक घृणा, राजनीतिक अविश्वास, कूटनीतिक जोड़-तोड, सैनिक प्रतिस्पर्धा, जासूसी, मनोवैज्ञानिक युद्ध और कटुता पूर्ण सम्बन्ध देखे गए।[2]

यदि हम शीत युद्ध कालीन घटनाक्रम का अध्ययन करें तो हम शीत युद्ध के विभिन्न युगों व उसके केन्द्रों को समझ सकते हैं, जिसने विश्व के सभी देशों के आपसी सम्बन्धों को प्रभावित किया और इसमें भारत-अमेरिका, संबंध भी शामिल है। इस काल में वैसे तो पूरा विश्व प्रभावित हुआ, किन्तु इसके सात प्रधान केन्द्र रहे -

1. दक्षिण पूर्वी यूरोप
2. जर्मनी
3. मध्य पूर्व
4. दक्षिण पूर्वी एशिया
5. दक्षिण एशिया व अफगानिस्तान
6. संयुक्त राष्ट्र संघ
7. अफ्रीका

शीत युद्ध को चार युगों में भी बाँटा जा सकता है -

1. शीत युद्ध (1945-1962)
2. देतांत (1963-1978)
3. नव शीत युद्ध (1979-1984)
4. शीत युद्ध का अंत (1985-1991)

इन चार युगों में भी अनेक चरण हैं, जिनमें उतार-चढ़ाव आते रहे।

---

1 U.R. Ghai and S. Sharma, International Politics, 1998, P-43
2 Grieves, Conflict and order, 1977, P-150.

5 मार्च 1946 को फुल्टन मे चर्चिल का भाषण शीत युद्ध का प्रारम्भ था। जिसमें चर्चिल ने कहा कि रूस ने अपने को और अपने मित्रों को लौह आवरण में आबद्ध कर लिया है। उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता और उसके प्रसारवाद को रोकने के लिए एंग्लो अमेरिकन गठबंधन आवश्यक है।[1] इसके बाद अमेरिका व सोवियत संघ ने अपनी-अपनी नीतियों का निर्माण एक दूसरे के परिपेक्ष्य में किया। अमेरिका द्वारा साम्यवाद के परिसीमन के लिए ट्रूमैन सिद्धान्त, मार्शल सिद्धान्त व आइजनहावर सिद्धान्त को अपनाया गया। जिसके प्रति-उत्तर में उसके द्वारा 'मालोरोव योजना' व 'कौमीकान योजना' का प्रसार किया गया। बर्लिन की समस्या, नाटो के प्रति उत्तर में वार्सा सन्धि की स्थापना, कोरियाई युद्ध आदि ने शीत युद्ध का विस्तार किया। कोरिया युद्ध के सन्दर्भ में चेस्टर बोल्स का कहना था कि, "कोरिया युद्ध ने रूसी और चीनी नीतियों को एक धक्के में एकत्र कर दिया।"[2]

दिनों-दिन शीत युद्ध में आ रहे उफान में परमाणु अस्त्र दौड़, विभिन्न सैनिक गठबंधनों का उदय, स्वेज नहर संकट, हंगरी की समस्या, हिन्द-चीन, यू-2 विमान घटना आदि ने अपना विशेष योगदान दिया और इसे क्यूबन मिसाइल संकट ने अपने शीर्ष पर पहुँचा दिया। युद्ध के कगार पर खड़ी महाशक्तियों को उनकी आपसी समझ ने तीसरे विश्व युद्ध से तो टाल दिया और आगे के वर्षो में इसमें शिथिलन में मदद की।

क्यूबा संकट से लेकर 'हेलसिंकी सम्मेलन' तक अनेक ऐसे घटनाक्रम आए जो शीत युद्ध की शिथिलता का कारण बने। हेलसिंकी समझौते के अवसर पर दोनो देशों के नेताओं ने कहा भी कि हमें शीत युद्ध के झगड़े को कब्र में गाड़ देना चाहिए और मित्र बन जाना चाहिए। इस शिथिलन का कारण दोनों शक्तियों द्वारा सहअस्तित्व की भावना को समझना तो था ही, इसके साथ-साथ उनके गुटों में आन्तरिक विघटन के तत्व भी आने लगे थे, जिन्होंने शीत युद्ध पर गहरा शान्तिकारक प्रभाव डाला।

---

1 Fedrel L. Shuma, International Politics, P-612-13.
2 Chester Bowles, New horizen of Peace, P-133.

पश्चिमी गुट में फ्रॉस ने अमेरिका से स्वतन्त्र नीति अपनाने का प्रयत्न किया तो साम्यवादी गुट में चीन ने रूसी नेतृत्व को अमान्य कर दिया।

1975 के हेलसिंकी समझौते से उत्कर्ष पर पहुँची तनाव शैथिल्य की प्रक्रिया स्थायी न रह सकी और 1979 में आफगानिस्तान में सोवियत सैन्य हस्तक्षेप ने इसे समाप्त कर नव शीत युद्ध का सूत्रपात किया। इस नए घटनाक्रम ने तनाव शैथिल्य के समय किए गए साल्ट–I , साल्ट–II व ए.बी.एम. संधि आदि को अप्रासंगिक बना दिया। अमेरिका ने साल्ट–II पर बहस रूकवा दी और खाड़ी सिद्धान्त, द्रुतगामी परिनियोजित सेना और सीमित परमाणु आक्रमण सिद्धान्त का निर्माण किया। पश्चिमी यूरोप में मध्यम दूरी के अमेरिकी प्रक्षेपास्त्र की स्थापना, अन्तरिक्ष अनुसंधान में होड, स्टार्रवार्स आदि ने आग में घी का ही काम किया।

नव शीत युद्ध का पुरातन शीत युद्ध की प्रकृति में स्पष्ट अंतर दृष्टि गोचर होता है। इस संबंध में के० सुब्रहमण्यम का विचार है कि ''पहले और दूसरे शीत युद्ध में विकासशील देशों के आचरण के सन्दर्भ में दो अन्तर है। पहले शीत युद्ध में सोवियत नौसेना की सीमित क्षमता थी, जिसकी पहुँच विश्व भर में न थी। दूसरा अन्तर यह है कि विकासशील देशों ने अब तक अपने संसाधनों पर राजनीतिक व कानूनी स्वामित्व ग्रहण कर लिया था तथा इसके दोहन के लिए उनके पास सोवियत तकनीक सुलभ हुई।[1] इस नए संघर्ष का आधार उपयोगिता व स्वार्थ हो गए न कि विचारधारा। फ्रेड हालीडे के अनुसार पुराने शीत युद्ध के दौरान अमेरिका व सोवियत संघ जिन सैद्धान्तिक हथियारों से एक-दूसरे पर वार करते थे उनका भण्डार खर्च हो चुका है। अब ये महाशक्तियाँ जिस दंगल में भिड़ी है वह तीसरी दुनिया में आधिपत्य जमाने के लिए सीधी-सादी जोर-आजमाइश है।[2] नव शीत युद्ध में अमेरिका की मजबूरी थी, इसमें सोवियत संघ विरोध था न कि साम्यवाद विरोध। इस दौरान नए क्षेत्र व अभिकर्ता उभर कर आए और गुटनिरपेक्ष आंदोलन का विभेदीकरण हुआ। इस

---

1 K. Subrahmanyam, The Second Cold war, Delhi, 1983, P-20-21

2 Fred Haliday, The Making of the Second Cold war, London, 1983, P-19.

समय जर्मनी, जापान व विकासशील राष्ट्रों से मिल रही आर्थिक, राजनीतिक व तकनीकी चुनौतियों का सामना अमेरिका ने सैनिक शक्ति के निर्माण से किया।

शीत युद्ध ने भारत व अमेरिका के संबंध में तनाव बनाए रखा। इस काल क्रम की अधिकाश घटनाओं का प्रभाव दोनों देशों के संबंध पर पडा चाहे वह विभिन्न सैन्य संगठनों का गठन रहा हो, कोरिया संकट हो, पूर्वी यूरोप में साम्य हस्तक्षेप हो या वियतनाम युद्ध हो। इस काल में अमेरिका ने पाकिस्तान के रूप में सहयोगी पाया, जिसने अमेरिका-चीन गठजोड़, भारत को संतुलित करने व अफगानिस्तान संकट में अमेरिका की सामरिक व राजनीतिक जरूरतें पूरी कीं। इसके फलस्वरूप मिली सैन्य व आर्थिक सहायता को अधिकांशतः भारत के विरूद्ध खर्च किया। जिससे भारत व अमेरिका के संबंध सहज न हो पाएँ। प्रकृतया शीत युद्ध अपने चरमोंत्कर्ष को प्राप्त कर पतन की ओर अग्रसर हुआ और 1991 में समाप्त हो गया। शीत युद्ध के अंत की कालावधि 1985-91 मानी जाती है। सोवियत संघ में उदारवादी नेता गोर्बाच्योव के सत्ता में आने के बाद शीत युद्ध के अंत की प्रक्रिया शुरू हुई। उन्होंने पेरेस्त्रोइका (पुनर्निर्माण) व ग्लास्नोत्स (खुलापन) की नीति द्वारा सोवियत संघ में आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र में प्रभावशाली परिवर्तन किए और विदेश नीति में सहअस्तित्व, निरस्त्रीकरण और तनाव शैथिल्य की नीति अपनाई।

नवम्बर 1985 में रीगन व गोर्वाच्योव के बीच जेनेवा में प्रथम शिखर सम्मेलन हुआ। इसे बिना एजेंडा के मित्रतापूर्ण वार्ता कहा गया, जिसमें अनेक मुद्दों पर सहमति बनी। इसने नव शीत युद्ध को शिथिल किया और एक के बाद एक शिखर वार्ता व समझौते का आधार तैयार किया और 1991 के अंत तक शीत युद्ध समाप्त हो गया। ये शिखर सम्मेलन निम्नवत् है- (1) रेव-जाविक, अक्टूबर 1986 (2) वाशिंगटन, दिसम्बर 1987 (3) मास्को, मई-जून 1988, (4) माल्टा, दिसम्बर 1989 (5) वाशिगंटन जून 1990 (6) हेलसिंकी, सितम्बर 1990

1988 अमेरिका-सोवियत संघ के बीच निर्णायक वर्ष रहा, क्योंकि मास्को शिखर सम्मेलन में मध्यम आणविक शस्त्र संधि (INF Treaty) हुई। इसके द्वारा अमेरिका व पश्चिमी यूरोप में 859, सोवियत संघ व पूर्वी यूरोप में 1752 कम दूरी और मध्यम दूरी के प्रक्षेपास्त्रों को नष्ट करने पर सहमति हुई। माल्टा के दिसम्बर 1989 के शिखर सम्मेलन में राष्ट्रपति बुश व गोर्वाच्योव ने शीत युद्ध के अंत की युगान्तकारी घोषणा की।

शीत युद्ध के अंत ने अफगानिस्तान से सोवियत संघ की वापसी, जर्मनी के एकीकरण और पूर्वी यूरोप में लोकतन्त्र लाने में सफलता दिलाई व नाटो तथा वार्सा पैक्ट को निरर्थक करने में मदद की। इसका प्रभाव हम दक्षिण अफ्रीका में रंगभेदी शक्तियों के पराभाव व नामीबिया की स्वतन्त्रता में भी देख सकते है।

शीत युद्ध के अंत और सोवियत विघटन ने विश्व से द्विध्रुवीय व्यवस्था को हटाकर अमेरिका के एकध्रुवीय राज को स्थापित कर दिया। विश्व राजनीति में 'हितो के संतुलन' ने 'भय के संतुलन' का स्थान ले लिया और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के मुख्य मुद्दे 'सुरक्षा' और 'विचारधारा' के बजाए 'व्यापार' और 'पूँजी निवेश' बन गये। इसके परिणामस्वरूप अमेरिका के सामरिक व राजनीतिक आकलन ने उसे अपनी नीतियों में परिवर्तन के लिए प्रेरित किया। भारत व अमेरिका संबंध जो अमेरिका के दक्षिण एशिया नीति से प्रभावित रहे है, में भी परिवर्तन आया। पाकिस्तान का सामरिक व राजनीतिक महत्त्व कम हुआ, जिससे स्वाभाविक रूप से भारत महत्वपूर्ण हुआ। इस समय आर्थिक, व्यापारिक व तकनीकी स्पर्धा के दौर में भारत ने अपने बाजार, अर्थव्यवस्था व तकनीकी कौशल से अमेरिका को अपने पास लाने में सफलता पाई है। इसके साथ ही साथ भारत अपने सामरिक व राजनीतिक दृष्टिकोण को भी, जो अब फारस की खाड़ी से दक्षिण चीन सागर के मुहाने तक फैल गया है, समझाने में सफल हो रहा है।[1] अतः शीत युद्ध के अंत के बाद की बदली परिस्थितियों में भारत व अमेरिका में एक नयी आपसी समझ विकसित हुई है।

1 India Today, 15 August, 2001, P-49.

(ख) एकध्रुवीय अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था :

विश्व राजनीति को अपने आर्थिक, राजनीतिक व सैन्य शक्ति द्वारा प्रभावित करने में सक्षम राष्ट्रों द्वारा शक्ति केन्द्रों की स्थापना होती है। द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व तक ये शक्ति केन्द्र यूरोपीय राष्ट्रों में थे और इन्होंने अपनी शक्ति द्वारा उपनिवेशवाद की स्थापना की थी। यह शक्ति कई देशों में थी। अतः इसने बहुकेन्द्रवाद का उदाहरण पेश किया था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में दो प्रतिमान दृष्टिगोचर हुए, जिन्हें द्विध्रुवीयता और बहुकेन्द्रवाद के नाम से जाना गया। द्विध्रुवीयता से आशय विश्व का दो शक्ति गुटों में विभाजित होना व बहुकेन्द्रवाद से आशय शक्ति के कई केन्द्रों के अस्तित्व से है। शीत युद्ध के अंत के साथ ही साथ एक नया प्रतिमान एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था अस्तित्व में आया। इन सभी शक्ति केन्द्रों की विश्व व्यवस्था को प्रभावित करने की क्षमता होती है।

द्वितीय विश्व युद्ध ने सारी विश्व व्यवस्था को झकझोर दिया और पुराने शक्ति केन्द्र धराशायी हो गए। इनके स्थान पर नयी शक्तियों का, नए सिद्धान्तों, नयी विचारधारा व नयी मान्यता के साथ, विश्व मंच पर अवतरण हुआ। अमेरिका व सोवियत संघ के रूप में उभरी इन महाशक्तियों ने जो क्रमशः पूँजीवादी विचारधारा व साम्यवादी विचारधारा की संवाहक थी, विश्व को दो गुटों में बाँट दिया। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में द्विध्रुवीयता आस्तित्व में आई।

स्टीवेन रोजन व वाल्टर जोन्स ने इस द्विध्रुवीयता के दो प्रतिमान बताए। 1- कठोर द्विध्रुवीयता 2- शिथिल द्विध्रुवीयता।[1] यह द्विध्रुवीय व्यवस्था 1955 के बाद बहुध्रुवीय व्यवस्था में बदलती गयी क्योंकि चीन एक स्वतन्त्र शक्ति केन्द्र बना, फ्रॉस ने भी ऐसी ही स्थिति प्राप्त की, पश्चिम जर्मनी व जापान युद्ध के आघात से उबर कर शक्तिशाली आर्थिक केन्द्र के रूप में सामने आए, इनके साथ ही साथ विकासशील राष्ट्रों द्वारा गुटनिरपेक्ष आन्दोलन ने भी अपनी संगठित-शक्ति का परिचय कराया।

---

1 Steven J. Rosen & Walter S. Jonse, The Logic of International Relatoins, 1975, P-220-227.

द्विधुवीयता की एक प्रमुख विशेषता शीत युद्ध थी। शीत युद्ध के प्रारम्भिक काल में कठोर द्विधुवीय व्यवस्था सामने आई, जो साम्यवादी गुट मे उभरते हुए बहुकेन्द्रवाद तथा अमेरिकी गुटबन्दी के बिखराव के साथ-साथ तीसरी दुनिया के राष्ट्रों की बढती हुई संख्या के फलस्वरूप ढीली हो गयी।[1] कुछ नए शक्ति केन्द्रों के उभार से शिथिल द्विधुवीयता की स्थिति तो आई परन्तु इन केन्द्रों के बहुत प्रभावशाली न हो पाने से असली बहुध्रुवीयता में इनकी परिणाती न हो सकी। इससे दोनों महाशक्तियों के गुटों की क्रियाशीलता पर प्रभाव तो पड़ा परन्तु इनके द्विगुटीय संरचना में कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं आया।

1980-90 के दशक में ऐसे संकेत थे कि द्विधुवीय व्यवस्था बहुध्रुवीय व्यवस्था में परिवर्तित हो रही है किन्तु 1987 के बाद के घटनाक्रम ने विश्व व्यवस्था को 'एकधुवीय विश्व व्यवस्था' को ओर उन्मुख कर दिया। अर्न्राष्ट्रीय राजनीति का खाका बदलने में सहायक महत्वपूर्ण परिवर्तन अत्यन्त शीघ्रता से आए जिसके फलस्वरूप शीत युद्ध का अन्त हुआ, पूर्वी यूरोप से साम्यवाद का पतन हुआ, जर्मनी का एकीकरण व सोवियत संघ का विघटन हुआ। साम्यवादी देश चीन, क्यूबा व वियतनाम अकेले पड़ गए और अमेरिका ही एक मात्र महाशक्ति के रूप में स्थापना हो गयी। निम्न तथ्यों से विश्व शक्ति संरचना की एकधुवीयता का पता चलता है।

शीत युद्ध के अंत के साथ ही करीब पॉच दशकों तक विश्व मंच पर एक महाशक्ति के रूप में स्थापित सोवियत संघ का भी विघटन हो गया। इस विघटन के बाद रूस सोवियत संघ का उत्तराधिकारी तो बना परन्तु अपनी आंतरिक व वाह्य परिस्थितियों के कारण विश्व राजनीति में कोई भूमिका निभा पाने में असफल रहा। इसका प्रमाण खाड़ी युद्ध, यूगोस्वाविया संकट आदि में उसकी भूमिका है। उसकी दयनीय आर्थिक स्थिति ने अमेरिका व पश्चिमी राष्ट्रों पर उसकी निर्भरता निश्चित कर दी, विशेष रूप से आर्थिक पराभव ने रूस के प्रभाव को अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर समाप्त कर दिया है। चेचेन्या की घटना में मानवाधिकार के प्रश्न पर रूस पर दबाव बनाना अमेरिका के एकछत्र राज को ही परिलक्षित करता है।

---

1 Rosen and Jones, The logic of Internation Relations, 1975, P-225.

पूर्वी यूरोप में भी साम्यववाद के प्रभाव में रहे राष्ट्रों में लोकतन्त्र की स्थापना से अमेरिका को मिलने वाली पूर्व की चुनौतीयॉ समाप्त हो गयी हैं। साम्यवादी गुटों का वार्सा पैक्ट समाप्त हो गया है परन्तु इसके विपरीत नाटो का विस्तार ही हुआ है। यूरोप के इस घटनाक्रम ने साम्यवादी गुट को बिखेर दिया है और शीतकालीन साम्यवादी गुट जैसी कोई अवधारणा शेष नहीं है।

चीन, क्यूबा व वियतनाम अभी तक साम्यवाद तो अपनाए हुए है किंतु उदारवादी परिवर्तनों की ओर अग्रसर है। वे वर्तमान में साम्यवादी गुट को पुर्नजीवित करने के न तो इच्छुक है न सक्षम। चीन एक प्रभावशाली शक्ति के रूप में उभरा है और अमेरिका को भी उसके भविष्य में महाशक्ति बनने का भय है। चीनी शासक भी सन् 2020 तक चीन के विश्व में नंबर एक को शक्ति बनने की बात करते है परन्तु वर्तमान में वह अपने को आर्थिक रूप से सुदृढ़ कर एक आर्थिक महाशक्ति बनाना चाहता है, जो उसके सैन्य रूप में भी महाशक्ति बनने का मार्ग प्रशस्त करेगी। इस आवधारणा को स्वरूप देने के लिए वह आर्थिक क्षेत्र में उदारवादी रूख अपनाए हुए है और प्रत्यक्ष विदेशी निवेश और व्यापार आदि में अमेरिका व अन्य राष्ट्रों को लुभा रहा है। इस दृष्टिकोण के कारण उसका विश्व के किसी भाग में प्रत्यक्ष सैन्य टकराव या इसके सहभागी बनने की फिलहाल कोई इच्छा नहीं है। अतः वह विश्व राजनीति में उतना खुलकर भाग नहीं लेता, जितना एक महत्वपूर्ण शक्ति से अपेक्षित होता है। उसके इस रूख ने अमेरिका को बिना बाधा विश्व राजनीति को अपने पक्ष में संचालित करने में सहायता ही दी है।

एक और तथ्य जिससे एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था को मान्यता मिल रही है, वह यह है कि जर्मनी और जापान के रूप में दो और शक्ति के केन्द्र है परन्तु इन राष्ट्रों की शक्ति केवल आर्थिक जगत तक ही है। सैन्य शक्ति के रूप में स्थापित न होने से इनका अमेरिका पर कोई दबाव नही है। इसी प्रकार गुटनिरपेक्ष आन्दोलन से जुड़े राष्ट्र भी अपनी-अपनी आर्थिक समस्याओं में उलझे हुए हैं और उन्हें नए वातावरण के अनुरूप अपनी दिशाओं को निर्धारित करना है। जिससे उनकी क्रियाशीलता में कमी आई है।

शीत युद्ध के अंत के तुरंत बाद आए खाडी संकट ने अमेरिका के वर्चस्व को इस नयी व्यवस्था में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इराक द्वारा कुवैत पर 1990 में कब्जे के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्तावों की इराक द्वारा बार-बार अवहेलना हुई। उसने संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा-परिषद के प्रस्तावों की भी अवहेलना की। इसके बाद अमेरिका ने 1991 में सुरक्षा परिषद को दर किनार कर अपने नेतृत्व में बहुराष्ट्रीय सैन्य बल को खाड़ी क्षेत्र में उतार दिया तथा अपने सैन्य शक्ति से कुवैत को मुक्त कराने में सफलता पाई। इस खाड़ी संकट ने एक ओर तो अमेरिका की सैन्य शक्ति को स्थापित किया तो दूसरी ओर संयुक्त राष्ट्र संघ की लाचारी को पेश किया। इराक पर लगे प्रतिबन्धों के सन्दर्भ में भी संयुक्त राष्ट्र संघ अमेरिकी उपकरण के रूप में परिलक्षित हुआ।

1993, 1994, 1996 व 1998 में अमेरिका ने इराक पर बम वर्षा कर अपनी शक्ति प्रदर्शित की। सितम्बर 2002 में भी संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा के अधिवेशन के अवसर पर अमेरिका ने इराक पर आक्रमण करने की वकालत की। इस संकट में अन्य राष्ट्रों के विरोध या असन्तोष का अमेरिका की नीति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है तथा वह अपनी नीतियों के अनुरूप इराक को संचालित कर रहा है।

शीत युद्धोत्तर काल में विरोध-सुलझाव के क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका में वृद्धि हुई तथापि इसकी सुरक्षा परिषद में निर्णय निर्माण प्रक्रिया पर अमेरिकी प्रभुत्व स्पष्ट दिखाई दे रहा है। बोस्निया, लीबिया, सोमालिया आदि विषय पर सुरक्षा के निर्णय अमेरिकी इच्छाओं के अनुसार हुए हैं। लीबिया तथा इराक में प्रतिबन्धों की अवधि को बढ़ाये जाने से भी ऐसा स्पष्ट दिखाई देता है।

यूगोस्लाविया संकट में भी अमेरिका की सुरक्षा परिषद पर पकड़ दृष्टिगत हुई। सर्बिया में जारी गृह युद्ध में नरसंहार को रोकने के लिए मार्च 1999 में नाटो ने बम वर्षा शुरू की और यह तब तक जारी रही जब तक सर्बियाई राष्ट्रपति मिलोसेविच ने अपने सैन्य बल को कोसोवो से नहीं बुला लिया। इस बम वर्षा में अनेक बेकसूर

नागरिक मारे गए और संयुक्त राष्ट्र संघ इसे रोकने में नाकामयाब रहा। इस संकट में भी रूस कमजोर स्थिति उजागर हुई, जो अपने इच्छा के अनुरूप सर्बिया की मदद न कर सका।

अपने अन्तर्राष्ट्रीय प्रभुत्व के संरक्षण के प्रयास में ही अमेरिका, मानवाधिकार, श्रम कानून, बौद्धिक संपदा अधिकार, पेटेन्ट अधिकार, पर्यावरण और परमाणु अप्रसार संधि आदि मुद्दे उठाकर इनका प्रयोग विकासशील देशों पर दबाव डालने व उन्हें अपने प्रभाव क्षेत्र में लाने के लिए करता हैं। आज वित्तीय संस्थान भी अमेरिकी प्रभाव से अछूते नहीं हैं। विश्व बैंक व अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष आदि संस्थाओं पर अमेरिकी वर्चस्व सर्वविदित है। जो संधियां या मुद्दे उसके स्वार्थ सिद्धि में सहायक नहीं है उससे वह अपने को भारी विरोध के बाद भी अलग कर ले रहा है, जैसे सी.टी.बी.टी. का अमेरिकी सीनेट द्वारा नामंजूर किया जाना, ए.बी.एम. संधि से अलग होना, क्योटो समझौते को मानने से इंकार करना आदि। उसके इन कदमों का पश्चिमी देशों द्वारा भी विरोध हुआ है परन्तु यह भी अमेरिकी नीति में पुनर्विचार का दबाव नहीं बना पा रहा है।

उपरोक्त तथ्यों के साथ-साथ वर्तमान में अफगानिस्तान संकट ने भी अमेरिका के एकछत्र राज को पहचान दी है। अमेरिकी हितों पर चोट पर वह अपना यह अधिकार सुरक्षित रखता है कि वह इसका प्रति-उत्तर देगा। अमेरिकी दूतावास पर हमले के प्रति-उत्तर में उसने सूडान व अफगानिस्तान पर मिसाइल हमला किया था तथा 11 सितम्बर 2001 में अमेरिका पर हुए आतंकवादी हमले ने उसे आतंकवादी गुटों के विरूद्ध युद्ध छेड़ने की शक्ति दी। अमेरिका ने अफगानिस्तान को इन आतंकवादी घटनाओं का केन्द्र मानते हुए उस पर अक्टूबर 2001 में आक्रमण कर दिया और वहाँ के तालिबानी शासन को हटाकर एक अंतरिम सरकार को गठित कराने मे सफल रहा। इस घटनाक्रम में उसने विश्व जनमत को अपने साथ रखने मे सफलता पाई।

अमेरिकी प्रभुत्व का प्रमाण यह बयान भी है, जब सितम्बर 2002 में राष्ट्रपति बुश ने कहा कि संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद को इराकी सत्ता को हटाने का कार्य करना चाहिए वर्ना अमेरिका व उसके सहयोगी यह करेंगे।[1] उनका यह भी कहना था कि यदि संयुक्त राष्ट्र ने कार्यवाही नहीं की तो उसका हश्र भी लीग ऑफ नेशन की तरह होगा।[2] अमेरिका ने दुनिया में एकमात्र ताकत बने रहने की ओर इशारा करते हुए व्हाइट-हाउस की राष्ट्रीय रणनीति संबंधी प्रपत्र में कहा कि अमेरिका अपनी सुरक्षा के लिए खतरा पैदा होने पर पहले कार्यवाही का विकल्प अपनाएगा परन्तु दूसरे देशों को इसे बहाना बनाकर हमला नहीं करना चाहिए।[3]

इस प्रकार उपरोक्त सभी तथ्य अमेरिकी प्रभुत्व व एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था की पुष्टि करते हैं। इसने सारी विश्व व्यवस्था में उथल-पुथल पैदा की, जिससे भारत अमेरिका संबंध भी अछूता न रहा। इस दौरान दोनों देशों के सामरिक, आर्थिक व राजनीतिक हितों मे सामंजस्य व सहयोग बढ़ा। इस समय की भारत की प्रतिक्रिया भी विरोधात्मक न होकर नपी-तुली रही है जो उनके दूरगामी हितों के लक्ष्य साधन में सहायक रहेगी।

(ग) एकीकृत यूरोप :

शीत युद्ध के अंत का प्रभाव दोनों विश्व युद्धों के जनक व शीत युद्ध में संघर्ष का एक प्रमुख अखाड़ा रहे यूरोप पर बहुत गहरा रहा। यहाँ पर हुए युगान्तकारी परिवर्तन, विश्व व्यवस्था में बदलाव के प्रमुख कारण बने। यूरोप विश्व राजनीति का एक प्रमुख केन्द्र रहा है, जिसने सारे विश्व में अपना प्रभाव डाला । इस सन्दर्भ में मार्च 1940 मे चर्चिल ने अपने भाषण मे कहा भी था कि हमारे पूर्वजों के झगड़ों के कारण ही दोनों विश्व युद्ध और पूर्व में होने वाले युद्ध छिड़े हैं।

---

1 The Times of India, Lucknow, 21 September 2002.
2 Ibid
3 Dainik Jagran, Allahabad, 22 September 2002.

द्वितीय विश्व युद्ध के उपरान्त के घटनाक्रम ने पूरे विश्व के साथ-साथ यूरोप को भी दो भागों मे बॉट दिया। जहॉ एक ओर अमेरिका समर्थक पूँजीवाद व्यवस्था के पोषक राष्ट्र थे जो पश्चिमी यूरोप में थे, तो दूसरी ओर सोवियत संघ समर्थक साम्यवादी व्यवस्था से शासित राष्ट्र थे, जो पूर्वी यूरोप में थे।

पश्चिमी यूरोप ने अपने एकीकरण की दिशा मे प्रयास शीत युद्ध काल में ही शुरू कर दिया था क्योंकि द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका ने उसकी पूर्व की शक्ति खत्म कर दी थी और आर्थिक व राजनीतिक रूप से क्षीण कर दिया था। इस दिशा में उनकी सोच का प्रमाण 19 सितम्बर 1940 के चर्चिल के भाषण में मिलता है जिसमें उन्होंने कहा कि यूरोप की त्रासदी का एकमात्र सर्वोच्च उपाय एक यूरोपीय परिवार की स्थापना है। जितना अधिक से अधिक एकीकरण हम कर सकते हैं हमे करना चाहिए तथा इसका ढॉचा ऐसा बनाना चाहिए कि हम शांति, सुरक्षा तथा आजादी से रह सकें। हमें यूरोप को यूरोपीय संयुक्त राज्य बनाना चाहिये। यद्यपि चर्चिल की यह इच्छा फलीभूत न हो पायी क्योंकि यूरोप द्वितीय विश्व युद्ध के बाद पूँजीवादी व साम्यवादी व्यवस्था में बदल गया।

अमेरिका की मार्शल योजना, ट्रूमैन सिद्धांत व अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति से पश्चिमी यूरोप ने अपना पुनर्निमाण शुरू किया। उनमें एकीकरण की भावना सफल व उपयोगी सिद्ध हुई। इस दिशा में किए गए प्रयासों से कई संगठन अस्तित्व में आए जैसे - बेनीलिक्स (1944), नाटो (1948), यूरोपीय आर्थिक सहयोग संगठन (1948), यूरोपीय परिषद (1949), यूरोपीय अदायगी संघ (1950), यूरोपीय कोयला तथाा इस्पात संघ (1952), यूरोपीय आणविक शक्ति समुदाय (1958), यूरोपीय साझा बाजार (1958), यूरोपीय मुक्त व्यापार संघ (1960) तथा आर्थिक सहयोग और विकास संगठन (1961) आदि।

अमेरिका के नेतृत्व में पश्चिमी यूरोप के राजनीतिक आर्थिक एवं सैनिक एकीकरण की प्रतिक्रिया में सोवियत संघ की अगुआई में पूर्वी यूरोप मे भी 1947 में 'कॉमिनफार्म', 1949 में पारस्परिक आर्थिक सहायता परिषद व 1955 में वार्सा पैक्ट का निर्माण किया। उसके बावजूद पश्चिमी व पूर्वी यूरोप के आर्थिक विकास में बहुत अंतर बना रहा।

शीत युद्ध की विभाजनात्मक प्रवृत्ति ने जर्मनी जैसे देश का भी विभाजन करा दिया, यह संघर्ष का एक महत्वपूर्ण बिन्दु रहा। शीत युद्ध की दोनों महाशक्तियों ने जर्मन एकीकरण का समर्थक होने का दावा किया परन्तु यह समस्या विश्व की शक्ति राजनीति के भंवरजाल मे फॅसी रही।[1] यूरोप की यह विभाजनात्मक रेखा शीत युद्ध के अंत के साथ समाप्त हुई। 1989 व 1990 के अति तीव्र घटनाक्रम ने पाँच छः महीने की अल्प अवधि में पूर्वी यूरोप के राजनीतिक स्वरूप को परिवर्तित कर दिया। 24 अगस्त 1989 को पोलैण्ड की साम्यवादी सरकार का पतन हुआ। छः महीने के अंदर हंगरी, पूर्वी जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया और रूमानिया के साम्यवादी सरकारों का पतन हो गया। 9 नवम्बर 1989 को बर्लिन दीवार गिरायी गयी और 2 अक्टूबर 1990 को पश्चिम व पूर्वी जर्मनी का एकीकरण हुआ। इन परिवर्तनों में गोर्बाच्योव की नीतियों का प्रमुख योगदान रहा, उन्होंने ब्रेजनेव सिद्धांत का परित्याग किया तथा यह स्पष्ट कर दिया कि वे पूर्वी यूरोप में लोकतांत्रिक और सुधारवादी आन्दोलनों के विरूद्ध सैन्य शक्ति का प्रयोग नहीं करेंगे।

पूर्वी यूरोप में शीत युद्ध काल में शासन व्यवस्था सोवियत संघ साम्यवादी शासन से जुडी थी, मगर वे भौगोलिक, ऐतिहासिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से यूरोप से ज्यादा जुड़े रहे हैं।[2] शीत युद्धोत्तरकालीन युगान्तकारी परिवर्तनों ने पूर्वी यूरोप को लोकतान्त्रिक राजनीतिक व्यवस्था के रूप में एकीकृत किया जो शासन की दृष्टि से भी पश्चिमी यूरोप से एकाकार होने में सहायक हुई। यूरोप ने अब आर्थिक रूप में अपने को एकीकृत कर आर्थिक शक्ति बनने की चेष्टा की है। इस मार्ग में सार्थक प्रयास किया गया और उसके परिणाम भी सामने आए हैं।

9-10 दिसम्बर 1991 को मैस्ट्रिच में यूरोपीय समुदाय की सफल बैठक सम्पन्न हुई, जिसमें राजनीतिक संघ, सांझी विदेश नीति, सांझी प्रतिरक्षा व संयुक्त यूरोपीय संसद को भी प्रारूपित किया गया। इसमें हुए समझौते के अनुसार 1 जनवरी

---

1 P.D. Kaushik, International Relations, 1995, P-448

2 Puspesh Pant & Shri Pal Jain, International Relations, 1995, P-584

1994 को स्वतन्त्र यूरोपीय मुद्रा सस्थान की स्थापना हुई। यूरोप के आर्थिक एकीकरण के प्रयास में एक प्रमुख कदम एकल मुद्रा अवधारणा पर विचार, यूरोपीय संघ (1958) की स्थापना के साथ ही शुरू हुआ। यद्यपि 1950 में ही एकल मुद्रा का विचार जीन मानेट जैसे राजनयिक द्वारा दिया जा चुका था। 1965-1975 के बीच अन्तर्राष्ट्रीय तरलता समस्या ने यूरोपीय देशों को यूरोपीय मुद्रा प्रणाली (EMS) को अपनाने पर जोर दिया। यह यूरोपीय मुद्राओ को एकीकृत करने का पहला कदम था। 1 जनवरी 1999 को यूरोपीय मुद्रा संघ भी समाप्त करके 'यूरो' को अपना लिया गया तथा यह 1 जनवरी 2002 से यूरोपीय संघ के 12 देशों (कुल सदस्य 15) की राष्ट्रीय मुद्रा के रूप में प्रचलन में आ गया। यद्यपि यूरोपीय संघ के तीन महत्वपूर्ण सदस्य - स्वीडन, डेनमार्क व ब्रिटेन ने इसे अभी नहीं अपनाया है। इस संघ में शामिल देशों ने एकल केन्द्रीय बैंक, एक समान कर एवं प्रतिस्पर्द्धी नीतियों को अपनाने का निर्णय लिया है।

2003 तक यूरो जोन में 6 नये देश शामिल होने के इच्छुक हैं - हंगरी, पोलैण्ड, स्लोवाकिया, चेक गणराज्य, साइप्रस तथा एसटोनिया। इसके अलावा 5 अन्य देश भी यूरोपीय मुद्रा संघ में शामिल होना चाहते हैं, लातविया, बुल्गारिया, लिथुवानिया, स्लोवाकिया तथा रोमानिया परन्तु इसमें शामिल होने के लिए कुछ शर्तें हैं जिन्हें उन्हें पूरा करना होगा। इस प्रकार यूरोपीय समुदाय दुनिया का सबसे समृद्ध बाजार होगा, विश्व का 40 प्रतिशत व्यापार यही अभिकेन्द्रित होगा। नया यूरोप एक आर्थिक शक्ति के रूप में अमेरिका के लिए सबसे बड़ी चुनौती होगा तथा सैनिक क्षमता को छोड़कर सभी दृष्टियों से अमेरिका को दरकिनार करने की इसमें क्षमता होगी।

यूरोपीय संघ भारत का मुख्य व्यापारिक सहयोगी है। यूरोपीय संघ का भारत को 1999 में निर्यात 10.3 बिलियन पौण्ड व भारत का उसे निर्यात 10.0 बिलियन पौण्ड रहा।[1] यूरोलैण्ड की स्थापना से इसके और बढ़ने की सम्भावना है। भारत की

---

1 Source : Finance Department

आर्थिक नीतियों, उदारीकरण व विशाल बाजार ने अमेरिका व यूरोपीय संघ दोनों को भारत की ओर आकर्षित किया है। भारत को भी अपने हितों को देखते हुए इनसे अपने संबंधों को समृद्ध करना है। यूरोपीय संघ से भारत के आर्थिक सहयोग का प्रभाव अमेरिका से उसके संबंधों पर नहीं पड़ना चाहिए क्योंकि दोनों के लिए भारत में पर्याप्त संभावनाएं हैं और भारत को भी अपने निर्यात के लिए यूरोपीय संघ व अमेरिका का विस्तृत बाजार उपलब्ध रहेगा।

शीत युद्ध के समय यूरोप में व्याप्त दो प्रकार की शासन व्यवस्थाओं के कारण भारत व अमेरिका के संबंध में तनाव आया था क्योंकि भारत ने पूर्वी यूरोप में सोवियत संघ द्वारा साम्यवाद के प्रसार का विरोध नहीं किया था परन्तु वर्तमान में यूरोप राजनीतिक रूप से भी एकीकृत है और लोकतांत्रिक व्यवस्था से संचालित हैं इस कारण राजनीतिक रूप से मतभेद की स्थिति उत्पन्न होने की कम संभावना है। शीत युद्ध के बाद भारत की प्रतिक्रिया यूरोप के सन्दर्भ में नपी-तुली रही हैं। इससे भारत व अमेरिका संबंध पर अच्छा ही प्रभाव पड़ा है।

भारत का एकीकृत यूरोप से आर्थिक व राजनीतिक संबंध ज्यादा महत्वपूर्ण है। जबकि अमेरिका के लिए यह सामरिक, आर्थिक व राजनीतिक तीनों पक्ष से महत्वपूर्ण हैं। नाटो में अभी भी अमेरिका का वर्चस्व है और यूरोपीय राष्ट्र भविष्य में आने वाली किसी भी खतरे से निपटने में उसकी भूमिका को नकार नहीं सकते। इस प्रकार यूरोप के सन्दर्भ में भारत व अमेरिका के सामरिक हितों में टकराव न होने तथा अमेरिका को यूरोप के सामरिक व राजनीतिक समर्थन की आवश्यकता, भारत व यूरोपीय संघ के आर्थिक व राजनीतिक संबंध पर अमेरिका को गलत तरीके से दबाव डालने से रोकेगी।

वर्तमान में भी भारत के साथ यूरोपीय संघ का व्यापार अमेरिका से ज्यादा है परन्तु उसका प्रभाव भारत-अमेरिका संबंध पर नहीं है। ज्यादातर यह देखा जाता है कि राजनीतिक व सामरिक मुद्दों पर टकराव का प्रभाव आर्थिक संबंध पर पड़ता है।

अतः यह संभावना हो सकती है कि भारत के व्यापार पर उसके विशाल बाजार में भागीदारी बढ़ाने के लिए अमेरिका व यूरोपीय संघ में प्रतिस्पर्धा बढ़े और भारत को इसका लाभ ही मिले। भारत द्वारा अब ज्यादा व्यवहारिक नीति अपनाने के कारण यह संभावना है कि भारत के अपने सामरिक व आर्थिक हितों को देखते हुए यूरोप के संदर्भ में अमेरिका से राजनीतिक मुद्दों पर मतभेद न हो। यद्यपि भारत को अपने लिए अमेरिका के साथ-साथ यूरोपीय संघ से भी राजनीतिक समर्थन की आवश्यकता रहती है क्योंकि यूरोप के ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रॉस आदि देशों का समर्थन भारत को विश्व मंच पर अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए आवश्यक है।

(घ) खाड़ी संकट :

शीत युद्ध के उपरान्त जब युगान्तकारी परिवर्तनों के बीच नये वातावरण में उज्जवल भविष्य के लिए वायदे किए जा रहे थे और संभावनाएँ तलाशी जा रही थी। उस समय आए एक संकट ने विश्व शान्ति की परीक्षा ली और विश्व मंच पर एकमात्र महाशक्ति के रूप में बचे अमेरिका को एकध्रुवीय विश्व में अपनी छवि को निर्विवाद रूप से स्थापित करने में मदद की। यह संकट, जो खाड़ी संकट के नाम से जाना जाता है, ने पूरे विश्व को प्रभावित किया।

खाड़ी संकट की शुरूआत तब होती है, जब 2 अगस्त, 1990 को इराक ने कुवैत पर आक्रमण कर उसे अपना 9वाँ राज्य घोषित कर दिया। इस आक्रमण के पीछे कुवैती भाग पर इराक के ऐतिहासिक दावे, ईरान-इराक युद्ध में खराब हुई इराक की आर्थिक हालत व अरब नेतृत्व की इराकी लालसा मुख्य रही। इसके लिए इराक का तर्क था कि कुवैत ने अपने कोटे से ज्यादा तेल का दोहन किया जिससे तेल की कीमतों में गिरावट आई। उसका यह भी आरोप था कि कुवैत ने उसके तेल क्षेत्र का अतिक्रमण किया है जिससे 1980-90 के बीच उसे 2400 मिलियन डालर का नुकसान हुआ।

इराक के इस आक्रमण की तीव्र प्रतिक्रिया हुई। संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद ने कई प्रस्ताव पास किए जिसमें कुवैत से इराकी सेना की वापसी व कुवैत की संप्रभुता पुनः स्थापित करने की इराक से अपील की गई। इराक के इसे बार-बार नजरअंदाज करने से सुरक्षा परिषद के सदस्य राष्ट्रों ने उसके विरूद्ध आर्थिक व सैन्य प्रतिबन्ध लगाने को कहा। अमेरिका व ब्रिटेन ने समुद्री नाकाबंदी कर दी मगर वांछित परिणाम न आया। अन्ततः सुरक्षा परिषद ने 15 जनवरी 1991 तक कुवैत से न हटने पर इराक पर बल प्रयोग की बात की। इसका फायदा उठाते हुए अमेरिका ने अपने सहयोगियों द्वारा इराक पर हमला बोल दिया। यह युद्ध 28 फरवरी 1991 को खत्म हुआ तथा इराक ने संयुक्त राष्ट्र के प्रस्तावों को मानने की बात की।

अमेरिका ने इसके पहले ईरान की अमेरिकी विरोधी गतिविधियों के कारण इराक के प्रति अपनी आँखें बन्द रखी थीं। 1989 में पूरे वर्ष भर राष्ट्रपति बुश, इराक द्वारा कुर्दिश पृथकतावादियों के विरूद्ध प्रयोग किए जा रहे रासायनिक हथियारों के प्रति उदासीन रहे व प्रतिबंध की बात को नजरअंदाज किया। बुश ने राष्ट्रीय सुरक्षा निर्देश 26 पर भी हस्ताक्षर किए जिसमें इराक के साथ सामान्य रिश्तों की बात की गई थी। इन रिश्तों के बाद भी अमेरिका ने इराक द्वारा कुवैत पर कब्जे के विरूद्ध कार्यवाही की क्योंकि अब इस कार्यवाही से उसका हित सिद्ध होता था।

कुवैत पर कब्जे के बाद इराक के अधिकार में 20% से अधिक तेल क्षेत्र आ गया जो पश्चिमी हितों के विरूद्ध था। पश्चिमी देश तेल की आपूर्ति बिना बाधा के चाहते थे क्योंकि तेल शुद्धिकरण का कार्य पश्चिमी देशों की कम्पनियों के पास था। इस सम्बन्ध में पश्चिमी दृष्टिकोण अमेरिका के भूतपूर्व रक्षा सचिव कैस्पर वाइनबर्गर के शब्दों से स्पष्ट होता है कि-हम और यूरोप व जापान में हमारे सहयोगी ऐसी दुनियाँ में नहीं रह सकते जिसमें एक स्वच्छन्द तानाशाह अपनी 10 लाख सेना के सहारे हमारी औद्योगिक अर्थव्यवस्था को चलाने वाले तेल पर कब्जा कर लेता है, मुद्रास्फीति को प्रभावित करता है और यह तय करने का काम करता है कि हम अपने जीवन स्तर को यथावत् रख सकते हैं या नहीं ? सही मायने में हमारा अस्तित्व ही संकट में है।

इस खाडी संकट ने शीत युद्ध के उपरान्त अमेरिका को अपनी शक्ति प्रदर्शित करने तथा अपने ऊपर लगे पुराने धब्बों को मिटाने का अवसर प्रदान किया। इस खाडी युद्ध के दौरान राष्ट्रपति बुश ने कई बार कहा कि, "वियतनाम का भूत अरब प्रायद्वीप के रेगिस्तान में दफन कर दिया गया है।"[1] बुश ने यह भी कहा कि हमने वियतनाम सिन्ड्रोम को हमेशा-हमेशा के लिए दूर कर दिया है।[2] इस प्रकार अमेरिका ने इस संकट द्वारा अपने वर्चस्व को स्थापित करने का प्रयास किया।

इराकी राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन ने परिस्थितियों का गलत आकलन कर लिया था, वह ईरान-इराक युद्ध के दौरान मजबूत हुए अमेरिका व खाड़ी देशों के सम्बन्ध का अनुमान न कर पाए।[3] उसे अरब राष्ट्रों के बीच अपनी सही स्थिति और फिलीस्तीन समस्या को अमेरिका के अरब विरोधी के रूप में प्रयोग करने की सम्भावना तथा गोर्बाच्योव के इराक को समर्थन के बारे में सही ज्ञान न था।[4] अपनी सैनिक तैयारियों व अमेरिका की प्रतिक्रियाओं ने भी उसे दिग्भ्रमित किया। वह कुवैत के शासक परिवार अल सबाह की तेल कीमतों को कम करने की इच्छा से भी परेशान था।[5]

अपनी कार्यवाही के औचित्य को सिद्ध करने के प्रयास में अमेरिकी राष्ट्रपति ने सद्दम की तुलना हिटलर से करते हुए कहा कि संभावित सैन्य लक्ष्यों के पास बंधको को मानव कवच के रूप में रखा जा रहा है और ऐसा हिटलर ने भी नहीं किया था।[6] अमेरिकी प्रवक्ता ने तेल सप्लाई को सुरक्षा की आवश्यकता के सम्बन्ध में भी अपने दृष्टिकोण को खुले रूप से रखा। जेम्स बाकर ने अक्टूबर 1990 में कहा कि यदि इराक खाड़ी के ऊर्जा स्त्रोतों पर अपनी पकड़ बनाता है तो विश्व एक गहरे

1 R.W. Tucker and D.C. Hendrickson, The Imperial Temptation, New York : Council on Fareign Relations, 1992, P-152.

2 Ibid, P-152.

3 S.A. Yetiv, The outcomes of Desert Shield and Desert storm : Some Antecedent Causes, Political Science Quarterly, 107(1992), P- 195-212.

4 G. Golan, Gorbachev's Difficult time in the Gulf, Political Science Quarterly, 107(1992), P- 212-222.

5 D. Hiro, Desert Shield to Desert Storm : The Second Gulf war, London Paladin, 1992, Ch. 2.

6 Freedman and Karsh, the Gulf Conflict, P- 462.

मन्दी के दौर में चला जाएगा। यदि यह होने दिया गया तो अमेरिकी उद्योग, किसान और छोटे व्यापारियों पर इसका गहरा असर होगा।[1] रिचर्ड चेनी ने भी इसके द्वारा विश्व अर्थव्यवस्था के जाम होने की बात कही।[2]

अमेरिका ने बाद में इस संकट को तेल के मुद्दे से हटा कर और मुद्दों से जोडने का प्रयास किया। जेम्स बाकर ने कहा कि यदि सद्दाम की आक्रमकता को नहीं रोका गया तो शीत युद्ध के बाद के युग के उज्जवल वादों को नए खतरे व नयी अराजकता का ग्रहण लग जाएगा।[3] इसके साथ-साथ अमेरिका ने शीत युद्ध के बाद सामुहिक सुरक्षा की आवश्यकता को वास्तविक बतलाते हुए अमेरिकी कार्यवाही को सही बताया।

अमेरिका द्वारा दूसरे देशों की आक्रमता के समय अपनाई गई विरोधाभासी नीतियों के बारे में कांग्रेस में जनवरी 1991 में हुई बहस में चर्चा की गई। कई कांग्रेस सदस्यों ने कहा कि अमेरिका इराक में तो इस शान्तिभंग की कार्यवाही के विरूद्ध आक्रमण कर रहा है परन्तु इजरायल द्वारा गाजा व पश्चिमी किनारे के अधिग्रहण, सहारा में मोरक्कों की गतिविधियॉ, साइप्रस में तुर्की के अतिक्रमण का उसने विरोध नहीं किया। अमेरिका ने अपने हितों के संवर्द्धन में सहायक नीतियों का ही पालन किया है। संभावित विरोध के कारण ही अमेरिका ने खाड़ी संकट में विश्व जनमत व अपने देशविसयों को विश्वास में लेने का प्रयास किया विश्व को सद्दाम की नाभिकीय क्षमता, मानवाधिकार उल्लंघन, तेल सप्लाई की सुरक्षा व अमेरिकी रोजगार के बारे में बताया गया। खाडी युद्ध के संचालकों ने जनता को सूचना देने में वियतनाम युग के साथियों के अपेक्षा अधिक कुशलता दिखाई।[4] जिससे अमेरिका के पक्ष में माहौल बना।

---

1 American Foreign Policy Current Decuments 1990, Washington DC, Department of State 1991, P-526.

2 Ibid, P-528-29

3 American Foreign Policy Current Documents, 29 Oct. 1990, P-525.

4 W.L. Bennett and D.L. Paletz (eds.), Taken by Storm, The media Public Opinion and US Foreign Policy in the Gulf war, Chicago, University of Chicago Press, 1994.

28 फरवरी 1991 को इराक द्वारा कुवैत को खाली कर देने से खाड़ी युद्ध तो समाप्त हो गया परन्तु उसके बाद भी इराक द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्तावों का पालन पूर्ण रूप से न करने पर तनाव उभरता रहता है। कुर्द लोगों के विरूद्ध इराकी अत्याचार के कारण कुर्द क्षेत्र में अगस्त 1992 से हवाई निषिद्ध क्षेत्र बना दिया गया। इसके उल्लंघन पर इराक पर बराबरी की गई। इराकी सैन्यबल के कुर्दिस्तान में प्रवेश पर 1996 व संयुक्त राष्ट्र संघ के शस्त्र निरीक्षकों पर प्रतिबंध लगाने पर, 1998 में इराक पर बमबारी की गई। 2002 के संयुक्त राष्ट्र संघ के अधिवेशन के अवसर पर अमेरिका द्वारा इराक पर बार-बार अपने वायदों से मुकरने व खतरनाक शस्त्रों के निर्माण में संलग्न रहने के आरोपों के सन्दर्भ में आक्रमण की मॉग की जा रही है।

यह खाड़ी युद्ध कई प्रकार से नया था इसका प्रमाण निम्न तथ्य हैं-

1. इसमें पहली बार तीन नाभिकीय शक्तियों का गठबंधन हुआ और वे किसी देश के विरूद्ध सैन्य अभियान में संलग्न हुई तथा दूसरी दो नाभिकीय शक्तियों का मौन समर्थन रहा।
2. एक मुस्लिम राष्ट्र इराक के विरूद्ध बड़ी संख्या में अरब व गैर अरब मुस्लिम राष्ट्रों का अमेरिका को सहयोग रहा। दोनों महाशक्तियों में से कोई भी इसके पहले किसी भी युद्ध में इतनी बडी संख्या में एशियाई देशों का समर्थन न पा सका था।
3. पहली बार सुरक्षा परिषद के सभी स्थायी सदस्य संयुक्त रूप से सक्रिय हुए और सभी 12 प्रस्ताव बिना वीटो के पारित हुए।
4. युद्ध के शुरू होने के पहले पाँच माह का चेतावनी काल मिला। जो इसके पहले के सभी युद्धों के विपरीत था।
5. खाड़ी युद्ध संयुक्त राष्ट्र संघ की तरफ से नहीं लड़ा गया। यह अमेरिका के नेतृत्व में उसके सहयोगियों द्वारा लड़ा गया।
6. इस युद्ध में पर्यावरण को भी युद्ध के साधन के रूप में प्रयुक्त किया गया। इराक ने समुद्र में तेल गिरा कर उसे प्रदूषित किया।
7. इस युद्ध का वित्तीय भार उठाने वालों ने इसकी योजना, क्रियान्वयन आदि में कोई भूमिका नहीं निभाई।

8. इस युद्ध ने वायु सेना व उसकी शक्ति को स्थापित किया और पहली बार मुख्यतः वायु शक्ति द्वारा विजय प्राप्त हुई।
9. इस युद्ध में इराक को नए-नए विकसित सैन्य उपकरणों के परीक्षण की स्थली बना दिया गया।

इस युद्ध ने रूस की शक्तिहीनता को प्रदर्शित किया। वह कोई भी महत्वपूर्ण भूमिका के निर्वहन में असफल रहा। चीन ने भी शुरुआती अवरोध के बाद ऐसा कोई विरोध नहीं किया। खाड़ी संकट पर भारत की विदेशी नीति दुविधाजनक व अस्पष्ट रही। 3 अगस्त 1990 को भारत की पहली प्रतिक्रिया थी कि इराक को कुवैत से सेना हटा लेनी चाहिए। 23 अगस्त को विदेश मन्त्री ने कहा कि सुरक्षा परिषद ने इराक की नाकेबन्दी का जो प्रस्ताव पारित किया उसे लागू करने के लिए एक तरफा कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए। हम विदेशी सेनाओं के इस क्षेत्र में मौजूदगी के खिलाफ हैं। भारत को 37% तेल खाड़ी से मिलता है और लाखों भारतीय वहॉ कार्यरत थे अतः उसने इराकी हमले की दो टूक निन्दा नहीं की। भारतीय विदेश मन्त्रालय का यह आकलन गलत रहा कि आने वाले दिनों में इराक क्षेत्रीय महाशक्ति बनेगा। खाड़ी में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन और भारत की कोई भूमिका नहीं रही। भारत के इस रुख ने अमेरिका को नाराज किया। यद्यपि इसके बाद भारत ने अमेरिकी जहाजों को तेल की सुविधा दी मगर बाद में आंतरिक दबाव में वापस ले ली।

इस प्रकार खाड़ी युद्ध ने शीत युद्ध के बाद की नयी व्यवस्था में अमेरिका के परचम को स्थापित किया और भारत को अपने हितों को समझते हुए अपनी नीतियों को और परिपक्व बनाने का सबक दिया। जिसका प्रभाव बाद में दोनों देशों के सम्बन्धों पर पड़ा।

(ङ) भूमण्डलीकरण का प्रभाव :

भूमण्डलीकरण कोई नया या अनोखा सिद्धान्त नहीं है परन्तु 1990 के बाद अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति संतुलन में आए बदलावों के कारण यह महत्वपूर्ण हो गया है और इसने अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर आर्थिक कारक को प्रमुखता प्रदान कराने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

यदि हम अतीत में झॉके तो पाएंगे कि प्रत्येक धर्म और मानवतावादियों ने पूरे विश्व को एक मानने तथा सभी मानव प्रजातियों के सम्मान पर जोर दिया है। हम इसे भारतीय संस्कृति में भी पाते हैं, जिसमें कहा गया है कि ''वसुधैव कुटुम्बकम'' अर्थात् सारा विश्व एक परिवार की तरह है। भूमण्डलीकरण इस भावना से भिन्न हैं। इसमें विश्व को एक प्रभुत्व व एक व्यवस्था के अन्तर्गत लाने के प्रयास का सन्दर्भ लिया जाता है। हम इतिहास में एक प्रभुत्व वाले शासन की स्थापना करने का प्रयास देख सकते हैं। जिसमें सिकंदर, चंगेज खॉ व नेपालियन बोर्नापार्ट आदि शामिल रहे हैं परन्तु कोई भी विजेता विजित प्रान्त के उत्पादन के साधनों को बदल या उसे बाधित नहीं कर पाया। इनका मुख्य उद्देश्य धन संपदा एकत्र करना रहा। वे लूट की सम्पदा को पूँजी में नहीं बदल पाए, जिससे वे श्रम शक्ति, कच्चे माल व उपरकणों आदि को खरीद कर वस्तुओं का निर्माण करें तथा लाभ कमाएँ। यह धन संपदा पूॅजीवाद के उत्कर्ष के साथ पूॅजी में बदलनी शुरू हुई।

19वीं शताब्दी के मध्य में इसमें जबर्दस्त बदलाव आया। उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद के विस्तार से पूँजी का प्रवाह शुरु हुआ। जिसे भूमण्डलीकरण की शुरूआत कहते हैं। शक्तिशाली देश अपने उपनिवेशों से कच्चा माल, श्रम आदि का दोहन कर उससे उत्पादित वस्तुओं को उन्हीं देशों में बेचने लगे जिससे उनको बहुत ज्यादा आर्थिक फायदा हुआ। बढ़ते औद्योगीकरण ने उनके उत्पादन को खपाने के लिए बाजार की खोज शुरू कराई, जिससे उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद का तेजी से विस्तार हुआ। पूँजीवादी देशों में पूॅजी के अधिक एकत्रीकरण ने उन्हें पूँजी को दूसरे देशों में निवेश करने के लिए प्रेरित किया। यह व्यवस्था 19वीं शताब्दी के मध्य से प्रथम विश्व युद्ध तक चलती रही। 1914 के बाद बदली हुई राजनीतिक व सैन्य परिस्थितियों में इसे बढ़ावा मिला। शीत युद्ध के समय इस प्रक्रिया के धीमे होने का कारण राजनीतिक व सामरिक मुद्दों का प्रभुत्व होना था।

इस प्रकार भूमण्डलीकरण वह व्यवस्था है जिसमें पूॅजी राष्ट्रीय सीमाओं को लांघकर मुख्य रूप से विचरण करती है और अपने विस्तार के लिए सस्ते श्रम और

सस्ते कच्चे माल की तलाश में रहती है। जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं तथा अमीर देशों के दबाव से राज्यों के नियम-कानून बदले जाते हैं और एक मुक्त बाजार व्यवस्था का बढावा दिया जाता है, जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार समाकलित किया जाता है। इसमें दुनिया भर का वित्तीय बाजार आपस मे जुडा होता है।

इस वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण के चार अंग माने जाते हैं :

1. व्यापार अवरोधकों को कम करना ताकि वस्तुओं का विभिन्न देशों में बेरोक टोक आदान प्रदान हो सके।
2. ऐसी परिस्थिति कायम करना जिसमें विभिन्न राज्यों में पूँजी का स्वतंत्र रूप से प्रवाह हो सके।
3. ऐसा वातावरण बनाना कि तकनीक का निर्बाध प्रवाह हो।
4. ऐसा वातावरण कायम करना जिसमें विभिन्न देशों में श्रम का निर्बाध प्रवाह हो।[1]

यदि हम द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की विश्व आर्थिक व्यवस्था का विश्लेषण करें तो पाएँगे कि औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्र हुए देशों ने, जिसमें भारत भी था, अपने बाजार व स्त्रोतों को स्वदेशी उद्योग के लिए सुरक्षित रखा। इस समय पूँजी प्रवाह में स्वदेशी व्यापार अवरोधकों व नियन्त्रण की वजह से बाधा थी। 1930 के समय में अमेरिका व अन्य देशों ने व्यापार शुल्क आदि में वृद्धि कर दी, जिससे उस काल की मंदी का दौर और गहराया तथा अन्र्राष्ट्रीय पूँजी प्रवाह करीब-करीब रूक गया।

उपरोक्त स्थिति से निपटने के लिए 1944 में ब्रेटन वुड्स समझौता हुआ। जिसके फलस्वरूप विश्व बैंक व अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी संस्थाओं की स्थापना हुई। जो भूमण्डलीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। 1948 में जेनेवा में गैट (GATT) की स्थापना हुई। जिससे संबद्ध देशों में निर्बाध व्यापार प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया जा सके। इसका मुख्य उद्देश्य वस्तु व्यापार में प्रतिस्पर्धा को सुनिश्चित करने

---

1 Datta & Sundaram, Indian Economy, 2001, P- 564

के लिए व्यापार अवरोधकों की समाप्ति या उन्हें कम करना था। गैट के अधीन बातचीत के सात दौर हुए। इसका आठवाँ दौर उरुगुए दौर के नाम से प्रसिद्ध है, जो शीत युद्ध के बाद सम्पन्न हुआ और विश्व व्यापार व भूमण्डलीकरण का प्रमुख आधार बना।

शीत युद्ध के बाद की परिस्थितियों ने विकासशील देशों को वित्तीय संस्थाओं और विकसित देशों के दबाव में आने को मजबूर किया और वे अपने बाजार को खोलने पर सहमत हुए। गैट के आठवें दौर की वार्ता के डंकल प्रस्तावों को स्वीकार करते हुए 124 सदस्य देशों ने हस्ताक्षर किए, जिसके फलस्वरूप 1 जनवरी 1995 सें विश्व व्यापार संगठन (WTO) की स्थाना की गई।

भूमण्डलीकरण में सहायक इन संस्थाओं व इनके समर्थकों द्वारा यह कहा गया कि इन भूमण्डलीकरण की नीतियों के परिणामस्वरूप विकासशील देश अपनी स्पर्द्धा-शक्ति को मजबूत बना पायेंगे और त्वरित विकास की प्रक्रिया आरम्भ हो जाएगी। परिणामतः विकासशील देशों को कई प्रकार के प्रलोभनों और विभिन्न प्रकार के सख्त दबावों द्वारा इन नीतियों को अपनाने के लिए राजी किया जाता है। भारत ने भी विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के ढॉचागत समायोजन कार्यक्रम के तहत अपनी नई आर्थिक नीति की 24 जुलाई 1991 को घोषणा की। जो भूमण्डलीकरण, उदारीकरण, मुक्त बाजार और निजीकरण में सहायक थी।

भारत में जो आर्थिक सुधार लागू किए गए, वे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष के उस व्यापक कार्यक्रम एस.ए.पी. के तहत किये गए, जिसे इन ब्रेटन वुड संस्थाओं ने लैटिन अमेरिका, अफ्रीका और पूर्व यूरोप में 76 से अधिक देशों पर 1981-82 से लागू कर रखा था। यह उदारीकरण की नीति इंडोनेशिया, मलेशिया, थाइलैण्ड, दक्षिण कोरिया आदि एशियाई देशों में तेजी से चल रही है। लैटिन अमेरिका के ब्राजील, मैक्सिको, चिली, कोस्टारिका, कोलम्बिया, अर्जेटीना जैसे देशों में भी यही नीति चलाई गई। अफ्रीका के नाईजीरिया, जांबिया, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में भी उदारीकरण की नीति जारी है।

विकसित देश श्रम मुद्दे, पेटेंट कानून व बौद्धिक संपदा अधिकार जैसे मुद्दों पर विकासशील देशों को घेरने की कोशिश करते हैं। भारत-अमेरिका सम्बन्ध में भी यह मुद्दे प्रमुख हैं और इसको लेकर भारत पर दबाव पडता रहता है। अमेरिका ने श्रम मानदण्डों का मुद्दा उठाया ताकि भारत से आयातित कालीन की मात्रा कम की जा सके। अमेरिका में लोकप्रिय हो रहे भारतीय लंहगे के बारे में मिथ्या धारणा फैलाई गई कि वे ज्वलनशील पदार्थ से बने हैं। भारत में बन रहे नकली सॉफ्टवेयर के प्रयोग को रोकने के लिए अमेरिका का बौद्धिक सम्पदा अधिकार के तहत दबाव है। पेटेंट कानून के द्वारा अमेरिकी कम्पनियों ने भारतीय उत्पाद जैसे बासमती चावल, नीम, हल्दी आदि पर पेटेंट प्राप्त कर लिया जिससे भारत को चिन्ता हुई। यद्यपि इन उत्पादों पर लिए गए पेटेन्ट को रद्द करवाने में वह सक्रिय रहा तथा उसे सफलता भी मिली। बीमा क्षेत्र, ऊर्जा क्षेत्र, प्रिंट मीडिया में भी अमेरिकी सहभागिता का दबाव बना हुआ है। एनरॉन के सम्बन्ध में भारत-अमेरिका सम्बन्ध में थोड़ी खटास भी आई जब उसने उच्च स्तर पर दबाव बनाना शुरू किया और इस मुद्दे ने भारत के आन्तरिक राजनीति को भी आन्दोलित किया।

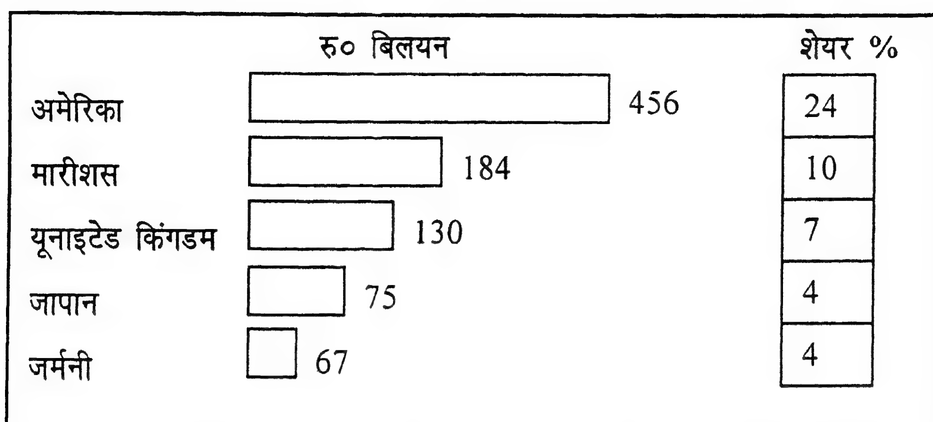
इन सब दबावों और मत भिन्नता के बावजूद हम देखें तो शीत युद्ध के बाद के इस भूमण्डलीकरण के दौर में भारत में प्रत्यक्ष पूँजी निवेश, सकल विदेशी मुद्रा भण्डार में जबरदस्त वृद्धि हुई है। भारत व अमेरिका के बीच व्यापार में भी अच्छी वृद्धि हुई। वर्ष 2000 में पिछले वर्ष की अपेक्षा भारतीय निर्यात में 25% की वृद्धि हुई और द्विपक्षीय व्यापार भी 15 बिलियन डालर तक पहुॅच गया तथा सॉफ्टवेयर निर्यात भी करीब 3 बिलियन डालर का इसके अतिरिक्त रहा।[1] इस भूमण्डलीकरण का भारत-अमेरिका आर्थिक संबंध पर अच्छा प्रभाव पड़ा जो नीचे की तालिकाओं से स्पष्ट है।

---

1 India-US. Relations : A General Overview, Embassy of India Washington.

तालिका 1.1

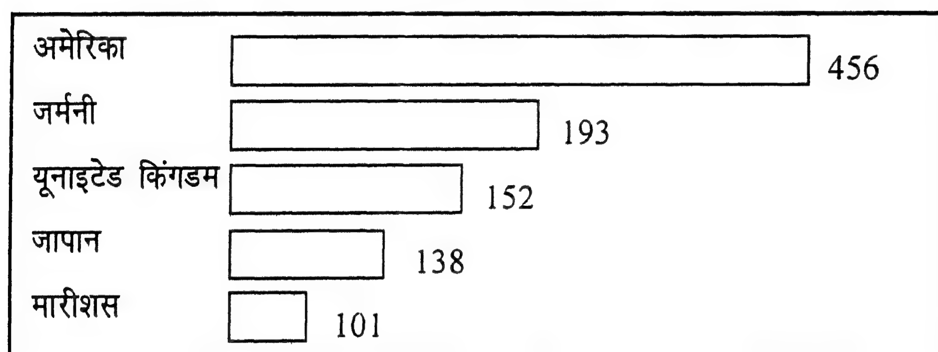
भारत में विदेशी निवेश



भारत में विदेशी निवेश जनवरी 1991 से नवम्बर 1999[1]

तालिका 1.2

भारत में विदेशी सहभागिता



विदेशी सहभागिता की संख्या जनवरी 1991 से नवम्बर 1999[2]

उपरोक्त आँकड़ों में अमेरिका की प्रधानता है तथा अभी भी भारत के साथ व्यापार व आर्थिक क्षेत्र में सहयोग की अपार सम्भावनाएँ हैं और इस भूमण्डलीकरण से इसमें सहायता मिलेगी क्योंकि 1996 तक अमेरिका के पूरे विश्व निवेश का एक बहुत छोटा हिस्सा भारत में आया, जहाँ यूनाइटेड किंगडम में 122.7 बिलियन डॉलर,

1 US Department of Commerce.
2 US Department of Commerce.

हॉलैण्ड में 54.4 बिलियन डालर, फ्रांस में 33.7 बिलियन डालर, ब्राजील में 38.7 बिलियन डालर, जापान में 75.6 बिलियन डालर, चीन में 38 बिलियन डालर का निवेश रहा, वहीं भारत में मात्र 1.3 बिलियन डालर का निवेश था।[1] अमेरिकी व्यापार में भारत का हिस्सा 1 प्रतिशत से भी कम है। अतः नई विश्व व्यवस्था में जहॉ आर्थिक कारक महत्वपूर्ण हो गए हैं वहॉ अपने राष्ट्रीय हितों के परिपेक्ष्य में दोनों देशों के बीच व्यापार की अपार सम्भावनाएँ मौजूद हैं। भारत को भी अपने पक्ष को बिना कमजोर किए हुए श्रम कानून, पेटेंट कानून आदि पर विश्व जनमत को अपने साथ रखते हुए, विकसित देशों विशेषकर अमेरिका के साथ आर्थिक व व्यापारिक सम्बन्ध को सुदृढ़ करना चाहिए।

इस भूमण्डलीकरण के दौर में अमेरिकी नीति में अर्थ व व्यापार महत्वपूर्ण हो गया है, जो उसकी दक्षिण एशिया नीति में परिवर्तन में भी सहायक हो रहा है। अतः भूमण्डलीकरण दोनों देशों के दूरगामी हितों के संवर्द्धन व विकास में सहायक हो सकता है बशर्ते भारत अपनी नीतियों के क्रियान्वयन व निर्माण में सजग रहे क्योंकि भूमण्डलीकरण का यह दौर मैक्सिको, अर्जेन्टीना, दक्षिण कोरिया, मलेशिया में भयंकर आर्थिक संकट ला चुका है।

(च) अमेरिका की दक्षिण एशिया नीति व भारत :

अमेरिका की दक्षिण एशिया नीति का भारत-अमेरिका सम्बन्ध पर गहरा प्रभाव रहा। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिका की नीति थी कि भारत को अपने गुट में रखकर एशिया में अपने प्रभाव को फैलाया जाए परन्तु भारत के इन्कार व गुटनिरपेक्ष नीति के पालन के कारण अमेरिका ने पाकिस्तान के रूप में सहयोगी को पाया, जो भारत से अपनी शत्रुता के कारण स्वाभाविक रूप से उसके सहयोग का इच्छुक था। अमेरिका ने पाकिस्तान को साम्यवाद के प्रसार को रोकने के नाम में सैन्य व आर्थिक सहायता देनी शुरू की, जिससे दक्षिण एशिया में सैन्य सन्तुलन खराब हुआ जो भारत-अमेरिका सम्बन्ध में तनाव का कारण बना।

---

1 US Department of Commerce.

पाकिस्तान को जारी सैन्य सहायता ने भारत-अमेरिका सम्बन्ध को सहज नहीं होने दिया। अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप से यह सैन्य सहयोग और बढा तथा इसने पाकिस्तान के सामरिक महत्व को बढा दिया। शीत युद्ध के दौरान अमेरिका की दक्षिण एशिया नीति भारत के विरूद्ध ही रही परन्तु शीत युद्ध के अन्त व थोडे ही समय में घटी विश्वव्यापी घटनाओं ने और सब परिवर्तन के साथ ही साथ अमेरिका की दक्षिण एशिया नीति में भी बदलाव के संकेत दिए।

शीत युद्ध के अन्त ने पाकिस्तान के सामरिक महत्व को कम कर दिया। जिससे अमेरिका की दिलचस्पी उसमें कम हुई तथा नई विश्व व्यवस्था में आर्थिक कारकों के महत्वपूर्ण हो जाने से, भारत के विशाल बाजार, उसकी उदारवादी नीतियों, तकनीकि कौशल आदि ने उसे भारत की ओर आकर्षित किया।

पाकिस्तान के प्रति उसकी नीति में परिवर्तन 1990 से स्पष्ट होने लगा था। अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश ने 1990 में पाकिस्तान के पास परमाणु बम की पुष्टि की और प्रेसलर संशोधन के तहत सहायता व अन्य सुविधाएँ रोक दी।[1] कोलीन पावेल, जो खाड़ी युद्ध के समय अमेरिकी सैन्य प्रधान थे, ने कहा कि पाकिस्तान खाड़ी युद्ध में अमेरिकी उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक न था।[2] इस प्रकार पाकिस्तान के प्रति झुकाव कम होने से भारत की स्थिरता व सुरक्षा का वातावरण अमेरिकी व्यापारिक हितों को लुभाने लगा। जिससे भारत व अमेरिका के बीच व्यापार में वृद्धि हुई।

इसके बावजूद अमेरिकी नीति में दक्षिण एशिया बहुत नीचे रहा। अपने प्रथम कार्यकाल में क्लिंटन अमेरिका को आर्थिक महाशक्ति बनाने और वर्तमान तथा भविष्य के आर्थिक प्रतिद्वन्दी दक्षिण पूर्वी एशियाई राष्ट्र, चीन, जापान, यूरोपीय संघ व रूस के प्रति नीति बनाने में संलग्न रहे। दक्षिण एशिया में उत्पन्न हो सकने वाले नाभिकीय टकराव व उसका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर पड़ने वाले प्रभाव के कारण ही दक्षिण एशिया अमेरिकी नीति में बीच-बीच में चमक उठता था।

---

1 Indo-US Relations in the Bush White House : Strategic Analysis/July 2001.

2 RAND Report, "Taking Charge : A Bipartisan Report to the President Elect on Foreign Policy and National Security", January, 2001.

इस बीच भारत व पाक के विरूद्ध अमेरिका द्वारा कभी सहयोग तो कभी टकराव की नीति अपनाई गई। पाकिस्तान को कहा गया कि वह 1970 के दशक के सैन्य सहयोग की आशा न रखे तो भारत को दक्षिण एशिया में प्रभुत्व स्थापना से मना किया गया। पाकिस्तान पर कभी आतंकवाद को संरक्षण देने का आरोप लगाया गया तो भारत पर भी मानवाधिकार उल्लंघन के कारण दबाव पड़ा। कश्मीर के बारे में भी ढुल-मुल नीति रही। 1995 में में ब्राउन संशोधन को स्वीकार कर प्रेसलर संशोधन में छूट देने की व्यवस्था कर दी गई। भारत पर परमाणु अप्रसार सन्धि (N.P.T.), व्यापक परीक्षण निषेध सन्धि (C.T.B.T.), पेटेंट कानून, बौद्धिक सम्पदा संरक्षण आदि को लेकर दबाव पड़ा। भारत ने अमेरिकी नीति में अभी उतनी प्रमुखता नहीं पाई थी, यद्यपि आर्थिक व व्यापारिक सहयोग काफी बढ़ चुका था।

1995 तक अमेरिकी नीति में उसकी सुरक्षा हित को लेकर जो राष्ट्र महत्वपूर्ण थे उनकी तीन सूची विलियम पेरी व एसटोन कार्टर ने बनाई।

सूची ए : उन स्थानों से खतरा जो पूर्व काल में भी महत्वपूर्ण थे। जैसे- सोवियत संघ।

सूची बी : अमेरिकी हितों को तात्कालिक खतरा मगर उसके अस्तित्व को चुनौती नहीं। जैसे उत्तरी कोरिया, इराक।

सूची सी : महत्वपूर्ण आकस्मिक घटनाएँ जो अमेरिका सुरक्षा को अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करें परन्तु अमेरिकी हितों को प्रत्यक्ष खतरा न हो। जैसे कोसोवो, बोस्निया, सोमालिया, हैती, रवाण्डा आदि।

इसमें दक्षिण एशिया कहीं भी नहीं है, यद्यपि दक्षिण एशिया में नाभिकीय टकराव सम्बन्धी आशंका को आकस्मिक घटना में रखा जा सकता है जो कि सूची सी में है अर्थात् दक्षिण एशिया से अमेरिका को कोई बड़े व स्थायी खतरे की आशंका 1995 तक न थी। इसके अतिरिक्त व्हाइट हाउस ने भी नई शताब्दी में राष्ट्रीय सुरक्षा नीति में अमेरिकी सुरक्षा पर खतरे के बारे में बताया।

❖ क्षेत्रीय खतरे : बहुत से राज्य ऐसे हैं जिनमें अमेरिकी हितों को चोट पहुँचाने की इच्छा व शक्ति है। ये अपने पडोसियों की सम्प्रभुता के लिए भी खतरा हैं। दक्षिण पश्चिम एशिया में ईरान व इराक में अपने पड़ोसियों को भयभीत करने व तेल के स्वतन्त्र प्रवाह के लिए खतरा उत्पन्न करने की क्षमता है।

❖ राष्ट्र से परे खतरे : आतंकवाद, राष्ट्रीय अपराध, ड्रग व्यापार, अवैध शस्त्र हस्तान्तरण, अनियन्त्रित शरणार्थी समस्या, साईबर अपराध आदि जो किसी भी राष्ट्र में अस्थिरता उत्पन्न कर सकती हैं।

❖ खतरनाक तकनीक का फैलाव : व्यापक विनाश वाले शस्त्र राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा हैं। इनपर व इनको ले जा सकने वली मिसाइलों आदि पर नियन्त्रण तथा आतंकववादी गुटों के हाथ में या तकनीक व नाभिकीय पदार्थ जाने से रोकना।

❖ विदेशी खूफिया संस्थाएँ : नई तकनीकों को अपनाने के कारण नई खुफिया संस्थाएँ संवेदनशील सूचना तन्त्र में हस्तक्षेप में सक्षम।

❖ असफल राष्ट्र : यह भी अमेरिकी हितों व नीतियों के लिए खतरा हैं। कुछ राष्ट्र आधारभूत शासन व जनता के लिए सुविधा व अवसर उपलब्ध करा पाने में असफल रहते हैं। जिससे अशान्ति, सूखा, प्राकृतिक आपदा, व्यापक जन हस्तान्तरण, पड़ोसियों से तनाव आदि होता है। जो अमेरिकी हितों को खतरा उत्पन्न करते हैं।[1]

व्हाइट हाउस का यह प्रपत्र अमेरिकी हितों को स्पष्ट रूप से सामने लाता है। इसका अध्ययन करने पर यह कहा जा सकता है कि राजनीतिक रूप से बॅटा भारत या पाकिस्तान दक्षिण एशिया में अस्थिरता का कारण हो सकते हैं। भारत के

---

1 The White House, A National Security Strategy for a New Century, The White House,Oct.1998, P-7.

साथ तो यह खतरा नहीं है परन्तु पाकिस्तान राजनीतिक रूप से अस्थिर है तथा यह अस्थिरता उसके नाभिकीय शस्त्र या तकनीक को आतंकवादियों तक पहुँचने में माध्यम भी हो सकती है। अतः पाकिस्तान अमेरिकी हितों के सम्दर्भ में एक खतरा बन गया है। क्लिंटन के दूसरे कार्यकाल में दक्षिण एशिया नीति इसी सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए संचालित हुई।

आर्थिक जगत में हो रहे सुधार के उपरान्त भी 4 दिसम्बर, 1997 में दक्षिण एशिया मामलों की असिस्टेंट सेक्रेट्री रॉबिन रफेल के कश्मीर पर बयान से भारत-अमेरिका में तनाव उभरा परन्तु प्रधान मंत्री गुजराल की अमेरिका यात्रा पर क्लिंटन ने कहा कि ''हम आपके व पाकिस्तान के बीच किसी भी मुद्दे पर हस्तक्षेप के प्रति बहुत सजग हैं।''[1] अमेरिका का कश्मीर मुद्दे पर हस्तक्षेप का कोई इरादा नहीं है। भारत में अमेरिकी राजदूत फ्रैंक विजनर ने 13 अप्रैल, 1997 को कहा कि दोनों देशों के सम्बन्ध अब मजबूत धरातल पर हैं तथा अमेरिका, इस महाद्वीप में शान्ति और सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए, एक शक्तिशाली भारत की आवश्यकता अनुभव करता है। इन घटनाक्रमों से 1997 के वर्ष में भारत व अमेरिका के बीच सम्बन्धों में सहजता आई व घनिष्ठता बढ़ी। भारत की तेजी से बढ़ रही अर्थ व्यवस्था व उनकी सैन्य क्षमता जो चीन को सन्तुलित करने में सहायक थी, अमेरिका को भारत के और पास लाई परन्तु मई 1998 के नाभिकीय परीक्षण नें द्विपक्षीय सम्बन्धों को धक्का पहुँचाया। इसके फलस्वरूप भारतीय विदेश मंत्री व अमेरिका के डिप्टी सेक्रेट्री ऑफ स्टेट स्ट्रोब टालबोट की बात-चीत ने दोनों देशों को अपनी सुरक्षा व सामरिक आवश्यकता को समझने में मदद की।

दक्षिण एशिया में विशेषकर भारत के साथ सम्बन्धों में सुधार के बावजूद यदि हम 30 जून, 1999 के ''फॉरेन ऑपरेशन एशोसिएशन बिल'' का अध्ययन करें तो पाएंगे कि दक्षिण एशिया अमेरिका की आर्थिक सहायता पाने वालों की सूची में प्रमुख स्थान नहीं रखता। इस बिल ने दो क्षेत्रों में सहायता जारी रखने पर जोर दिया-

---

1 India Aborad, December 26, 1997.

1. सोवियत संघ से स्वतन्त्र हुए नव स्वतन्त्र राष्ट्रों (NIS) के निर्यात को बढ़ावा व उसका विकास। इसके लिए वित्तीय वर्ष 2000 के लिए 780 मिलियन डालर की राशि रखी गई।
2. दक्षिण पूर्व यूरोप के पुनर्निर्माण के लिए 535 मिलियन डालर की राशि रखी गई।[1]

इस बिल व अमेरिका की नीतियों का विश्लेषण करने पर इस काल में प्रधानता वाले क्षेत्र मध्य एशिया, यूरोप, अफ्रीका व चीन सामने आते हैं। इसके बावजूद दक्षिण एशिया धीरे-धीरे अपनी स्थिति का भान करा रहा है, विशेषकर आतंकवाद, परमाणु शस्त्र सम्पन्न क्षेत्र व चीन की महाशक्ति के रूप में उभार ने इसके महत्व को एक बार फिर उजागर किया है और अमेरिका की इस क्षेत्र के प्रति नीति में भारत की स्थिति शीत युद्ध काल जैसी नहीं है। इसमें सुधार स्पष्ट रूप से दृष्टिगत है।

सन् 2000 में क्लिंटन की भारत व पाकिस्तान की यात्रा ने अमेरिका के हितों को भारत के साथ जोड़ दिया और क्लिंटन ने कश्मीर मुद्दे पर मध्यस्थता करने की पाकिस्तान की अपील नकार दी। उन्होंने पाकिस्तान को चेतावनी दी कि यदि नियन्त्रण रेखा पार नागरिकों पर हमले को पाकिस्तान का समर्थन जारी रहा तो वह अमेरिका का समर्थन खो देगा और उसे अलग-थलग रहने का खतरा उठाना पड़ेगा। अमेरिका ने पाकिस्तान की आन्तरिक अस्थिरता व कारगिल प्रकरण में उसकी भूमिका के कारण बने तनाव व इस प्रकार की घटना के विस्तृत होकर नाभिकीय टकराव में बदलने की सम्भावना के कारण पाकिस्तान को एक खतरा माना।

अमेरिका में रिपब्लिकन जॉर्ज बुश के सत्ता में आने पर अमेरिका की दक्षिण एशिया नीति में भारत के साथ आई घनिष्ठता के बारे में शंका हुई परन्तु 19 नवम्बर, 1999 को जॉर्ज बुश ने अपने चुनावी भाषण में कहा कि आने वाली शताब्दी लोकतान्त्रिक भारत को विश्व की एक शक्ति के रूप में देखेगी जो एक विशाल जनसंख्या व विश्व की अधिकतम आबादी वाले राष्ट्र में से एक है। यहाँ एक बदलती

[1] Source : U.S. State Department.

हुई अर्थव्यवस्था है जहाँ पाँच अमीरों में से तीन सॉफ्टवेयर उद्यमी हैं। भारत अब अपने भविष्य व सुरक्षा पर बहस कर रहा है और अमेरिका को उस पर और ध्यान देना चाहिए। हमें भारत के साथ व्यापार व उद्यम बढ़ाने चाहिए और एशिया की सुरक्षा और स्थिरता के लिए भारत सरकार के साथ सहयोग करना चाहिए।[1] अमेरिकी विदेश मन्त्री कोलीन पावेल का भी यह बयान आया कि भारत के अन्दर विशाल हिन्द महासागर के क्षेत्र व उसकी परिधि में शान्ति स्थापित करने की क्षमता है। हमें इस प्रयत्न में भारत की मदद के लिए लगातार व कठोर श्रम की आवश्यकता है।[2]

रैंड रिपोर्ट में भी कहा गया है कि भारत मुख्यतः अपनी अर्थव्यवस्था व तकनीकी क्षमता व सम्भावना के कारण एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकता है। भारत एशिया की एक प्रमुख शक्ति है। अतः वह दक्षिण एशिया के परिदृश्य के बाहर भी अपनी संलग्नता का अधिकार चाहता है।[3]

इस प्रकार भारत की क्षमता व आवश्यकता को समझने का अमेरिका में प्रयास हुआ और दोनों देशों में घनिष्ठता बढ़ी। यह अमेरिका की दक्षिण एशिया नीति में भारत के महत्व को दर्शाता है परन्तु 11 सितम्बर, 2001 की अमेरिका में आतंकवादी घटना से तात्कालिक रूप से भारत की स्थिति में बहुत परिवर्तन नहीं आया। इस समय अमेरिकी नीति में आतंकवाद प्रमुख है और इसके खात्मे के लिए भारत का उसे समर्थन भी है। इस घटना ने उसे भारत के आतंकवाद के प्रति सोच को समझने में भी मदद की तथा दोनों देशों के बीच सैन्य व सामरिक सहयोग भी बढ़ा। अमेरिका ने पाकिस्तान पर सीमा पर आतंकवाद को समाप्त करने के लिए दबाव डाला और कश्मीर में सक्रिय कुछ आतंकवादी संगठनों को प्रतिबन्धित भी किया। इसके साथ ही साथ अफगानिस्तान में चल रहे उसके अभियान ने उसे पाकिस्तान का साथ देने पर मजबूर किया। इस समय अमेरिका द्वारा पाकिस्तान का

---

1 George W. Bush, "A Distinctly American Internationaism", Forign Policy Speech at the Reagan Library Nov. 19, 1999.

2 Colin Powell, Opening statement before the Senate Foreign Relations Committee, January 17, 2001.

3 Rand Report, "Taking Charge : A Bipartisan Report to the President Elect on Foreign Policy and National Security." January, 2001.

फिर से साथ लेने की परिस्थिति का विश्लेषण करने पर लगता है कि अमेरिका पाक के साथ लगी अफगानिस्तान की विशाल सीमा व भविष्य में मध्य एशिया में अपने प्रभाव के विस्तार के सन्दर्भ में पाकिस्तान को अपने से अलग नहीं रखना चाहता। वह पाकिस्तान को चीन के प्रभाव से दूर रखना चाहता है परन्तु पाकिस्तान को चीन के द्वारा मकरान तटीय क्षेत्र में 'ग्वादार' में बन रहे सैनिक अड्डे व 22 मार्च, 2002 को दोनों बीच हुए ''परस्पर सैन्य समझौते'' की घटनाएँ पाकिस्तान पर चीन के प्रभाव को स्पष्ट करती हैं।

अफगानिस्तान अभियान के कारण ही भारत द्वारा अपने खिलाफ जारी आतंकी कार्यवाहियों के प्रतिकार के लिए संयम बरतने व पाकिस्तान को और समय दिये जाने की बात की जा रही है। अमेरिका अपनी दक्षिण एशिया नीति के द्वारा अपने दूरगामी व तात्कालिक हितों का साधन कर रहा है। हिन्द महासागर में भारत की भूमिका, चीन को प्रति सन्तुलनकर्ता व विशाल आर्थिक सम्भावनाओं के कारण अमेरिका भारत को नजरअन्दाज नहीं कर सकता और उसके दूरगामी हितों के साधक के कारण उनकी दक्षिण एशिया नीतियों में प्रमुख हो गया है। यद्यपि अपने मध्यगामी व तात्कालिक हितों के परिप्रेक्ष्य में वह पाकिस्तान का भी साथ ले रहा है परन्तु यह नीति शीतकालीन नीति के तरह नहीं है जो भारत अमेरिका सम्बन्धों में असहजता लाए। एक विशाल अर्थतन्त्र, सैन्य शक्ति, नाभिकीय शक्ति व राजनीतिक रूप से सुदृढ़ भारत की उपेक्षा अब आसान नहीं है।

द्वितीय अध्याय

भारत-अमेरिका :
आर्थिक एवं वाणिज्यिक संबंध

भारत-अमेरिका : आर्थिक एवं वाणिज्यिक संबंध

राष्ट्रों के आपसी संबंधों में आर्थिक पहलू एक महत्वपूर्ण कारक रहता है। आधुनिक काल में आर्थिक कारक, राजनीतिक व सामरिक संबंधों पर वरीयता प्राप्त करते जा रहे हैं। राजनीतिक व सामरिक हित भिन्न होते हुए भी राष्ट्रो के आर्थिक संबंधों में प्रगाढ़ता आ रही है। अतः आर्थिक राष्ट्रवाद से आर्थिक भूमण्डलीकरण की ओर बढ़ते विश्व में, भारत व अमेरिका अपने आर्थिक संबंध को पुनः परिभाषित करते हुए सहयोग के क्षेत्र को बढ़ाने में प्रयासरत है।

(I) संबंधों का विकास :

अपनी स्वतंत्रता के बाद से ही अमेरिका पूर्व के साथ अपने आर्थिक व वाणिज्यिक संबंधों को बढ़ाने का इच्छुक था परन्तु ब्रिटेन व फ्रांस के बीच की प्रतिद्वन्दिता ने इसमें बाधा पहुँचायी। 1803-1807 के बीच करीब 500 अमेरिकी जहाज, ब्रिटेन व फ्रांस द्वारा पकडे गए। जिसके परिणामस्वरूप अमेरिका सामान्यतः एशिया व विशेषतः भारत के साथ 19वीं शताब्दी के अंत तक अपने व्यापार को न बढ़ा सका।[1]

बीसवीं शताब्दी की शुरूआत में प्रथम विश्व युद्ध के कारण भारत-अमेरिका संबंधों पर भी असर पड़ा परन्तु इसके बाद इसमें सुधार के लक्षण दिखाई पड़े। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जापान व यूरोप की धराशयी हो चुकी अर्थव्यवस्था के कारण अमेरिकी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ होने का अवसर मिला। दूसरी ओर भारत औपनिवेशिक शासन के बाद की आर्थिक चुनौतियों का सामना कर रहा था। जिससे भारत व अमेरिका के संबंध ग्राही व दाता जैसे रहे।

भारत व अमेरिका के आर्थिक संबंध में अनेक मतभेद आए। जिसके मुख्यतः दो कारण रहे। पहला दोनों देशों के चरित्र में ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व

---

1 Jones, Peter D.A., An Economic History of the United States Since 1783, Routledge Iteegan Paul, London, 1956, P- 58.

क्षमता के हिसाब से भिन्न प्राथमिकताओं का होना। जबकि दूसरा था अंतराष्ट्रीय मंच पर भिन्न-भिन्न प्राथमिकताओं का होना। अमेरिका, समाजवाद के प्रति कटिबद्धता रखने वाले देशों को संदेह की दृष्टि से देखता था। अमेरिका अपने 'आर्थिक समझौतों' का उपयोग एक औजार के रूप में करता रहा है। जो कि उसके मित्र देशों के लिए उपहार था जबकि शत्रु देशों को दंडित करने का एक साधन था। अमेरिका की आर्थिक सहायता के लक्ष्य निम्न कारकों से प्रभावित रहे।

(i) यदि अमेरिका भारत व अन्य विकासशील राष्ट्रों की सहायता करने में असफल रहा तो ये देश साम्यवादी गुट से सहायता पा जायेंगे, जो अमेरिका को इन देशों सें व्यापारिक व वाणिज्यिक रूप से अलग करेगी, और यह उसके हितों के खिलाफ होगा।

(ii) विकासशील राष्ट्रों के आर्थिक विकास में स्वावलम्बन को प्रोत्साहित करने से यूरोप के औद्योगिक राष्ट्रों के साथ-साथ जापान व अमेरिका की अर्थव्यवस्था भी लगातार बढेगी।[1]

(iii) विकासशील राष्ट्रों के प्राकृतिक रबर, टिन, जूट, तेल, यूरेनियम आदि खनिज व कच्चे पदार्थ अमेरिकी औद्योगिक व आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण है।[2]

(iv) अमेरिका में रोजगार के अवसर बढाने व उसे पूरा करने के लिए निर्यात बाजार की आवश्यकता थी। जो विभिन्न सहायता कार्यक्रमों द्वारा पूरी की जा सकती थी। राष्ट्रपति निक्सन ने कहा भी था कि विकासशील राष्ट्रों की आर्थिक सहायता द्वारा हम निश्चित रूप से दूसरे देशों में अपने संभावित बाजार का विकास कर पायेंगे।[3]

1947 के बाद अमेरिका के साथ भारत के आर्थिक संबंध उपरोक्त अमेरिकी आर्थिक उद्देश्यों के बीच शुरू हुए। इस प्रकार शुरु हुआ दाता-ग्राही का संबंध

---

1 Stebbines, P. Richard and Elaine. P. Adam, Documents on American Forign Relations, 1972, Mac Millan Publishers, New York. P- 643.

2 Max F. Millitean & Rogstow, W.W., A proposal keep to an effective Foregin Policy, 1957, New York, P-55.

3 Jain, B.M., South Asia - India and United States, 1987, R.B.S.A. Publishers, Jaipur, P-37.

1990 के दशक में व्यवसायिक सहयोगी के रूप में परिणत हुआ। इस दाता-ग्राही संबंध के दौरान 1950 व 1960 के दशक में अमेरिका ने भारत को खाद्य सहायता में देरी की, जिसका कारण कभी 'अमेरिकी गर्व' थे तो कभी उसके 'राजनीतिक हित'। द्वितीय विश्व युद्ध के मध्य में भारत में पडे अकाल के समय भारत को UNRRA (United Nations Relief and Rehabilitation Administration) की खाद्य सहायता न मिली। यह कहा गया कि भारत पर न तो आक्रमण हुआ है, न ही किसी शत्रु ने उस पर कब्जा किया है। अतः वह आपातकालीन खाद्य सहायता पाने के योग्य नहीं है।[1] यद्यपि UNRRA की स्थापना करने वाले 44 राष्ट्रों में भारत भी एक था।

राष्ट्रपति ट्रूमैन ने 1 मार्च 1946 को विश्व के विभिन्न भागों में पड़े अकाल के अध्ययन के लिए हरबर्ट हूवर को आपातकालीन अकाल समिति का अध्यक्ष बनाया। इसी समय भारत भी अकाल से पीड़ित था परन्तु भारत हूवर की योजना में शामिल न था। दबाव पड़ने पर ट्रूमैन ने भारत को हूवर की योजना में शामिल किया परन्तु यूरोप यात्रा के बाद भारत के लिए प्रस्थान करने के पूर्व की उन्हें वापस बुला लिया गया। ट्रूमैन ने यह अनुभव नही किया कि यह यात्रा जरूरी है, उनके अनुसार भारत की अकाल स्थिति को बढ़ा-चढ़ा कर बताया गया था।[2]

आन्तरिक आर्थिक चुनौतियों के कारण भारत द्वारा अपनाए गए लोकतांन्त्रिक समाजवादी आर्थिक विकास की पद्धति को, अमेरिका ने संदेह की दृष्टि से देखा क्योंकि वह मुक्त बाजार अर्थव्यवस्था में विश्वास रखता था। नेहरू जी का मत था कि अमेरिका ने 150 वर्षो के विकास व सुदृढ़ता के बाद यह स्थिति प्राप्त की है। उसके पास विशाल आर्थिक स्रोत है। उसके पास न तो विशाल जनसंख्या है और न ही सांमतवाद जैसा भूत। अतः यह कहना गलत है कि जो अमेरिका ने किया वह हम भी करे।[3] नेहरू जी ने अमेरिकी मशीनी व तकनीकी सहायता को भारत की गरीबी दूर करने के लिए आवश्यक बताया परन्तु उन्हें

---

1 Srinivas Mudumai, United States Foreign Policy Towards India, 1947-1954, New Delhi: Manohar, 1980, P-22.

2 Ibid , P-28-29.

3 Jawahar Lal Nehru Speaches, Vol-2 August 1949-February 1953, Publications division, Ministry of information and Broadcasting Government of India, Fifth edition, May 1983, P-48

सहायता माँगने में लापरवाही भरा रवैया अपनाने का दोषी ठहराया गया। अमेरिकी राजदूत लॉय हैंडसर्न ने 500 मिलियन डालर की आर्थिक सहायता की संस्तुति, नेहरू जी के अक्टूबर 1949 में अमेरिका पहुँचने के कुछ समय पहले की, परन्तु इस सहायता का यह प्रस्ताव नेहरू जी के भारत वापस लौटने के तुरन्त बाद समाप्त कर दिया गया।[1] इसका एक कारण 13 अक्टूबर 1949 में अमेरिकी कांग्रेस में नेहरू जी के भाषण को भी माना गया।

जनवरी 1949 में राष्ट्रपति ट्रूमैन ने विकासशील राष्ट्रों को आर्थिक व तकनीकी सहायता देने के लिए 'प्वांइट फोर' कार्यक्रम शुरू किया। भारत ने दिसम्बर 1950 में इस पर हस्ताक्षर किए परन्तु यह कार्यक्रम भी भारत को सुदृढ़ता देने व औद्योगिक रूप से विकसित करने के लिए पर्याप्त न था। जब भारत ने गेहूँ खरीदने के लिए अमेरिका से ऋण की माँग की तो उसने इस ऋण वापसी के लिए शर्ते लगाई कि वह मैगनीज, मोनाजाइट, माइका एवं बर्लेप (Burlap) का निर्यात करे। एक कॉग्रेस सदस्य ने कहा था कि भारत को खाद्यान्न प्राप्ति की जल्दी है और हमें सामरिक वस्तुओं की, जो भारत के पास है।[2]

भारत व अमेरिका के अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक मतभेदों ने भारत को प्राप्त होने वाली आर्थिक सहायता पर बुरा प्रभाव डाला। 1950 के दशक के मध्य में आइजनहावर ने भारत की गुटनिरपेक्ष नीति को एक अन्य दृष्टिकोण से देखा नई दक्षिण एशिया नीति (NSC5701) को पास करते हुए 10 जनवरी 1957 को आइजनहावर ने कहा कि अमेरिकी सुरक्षा को स्थिर व प्रभावशाली भारत के बजाय एक कमजोर व घायल भारत से ज्यादा खतरा है। एशिया के सन्दर्भ में एक मजबूत भारत साम्यवाद के विरुद्ध एक प्रभावी उदाहरण रहेगा और दक्षिण व दक्षिण पूर्व एशिया में साम्यवादी चीन के फैलाव के विरुद्ध अपने वाह्य सुरक्षा के साधनों के विकास के लिए अमेरिका को अनुमति प्रदान करेगा।[3]

---

1 Dennis Kux, India and the united states : Estranged Democracies, 1941-1991, washington, D.C. National Defence University Press, 1992, P-79

2 Srinivas Mudumbai, United States Foreign Policy Towards India, 1947-1954, N. Delhi, Manohar 1980, P-52-54.

3 Ibid, P-184.

1950 में 'प्वांइट फोर समझौते' पर हस्ताक्षर के बाद भारत को ठोस सहायता मिलनी शुरू हुई। इसी वर्ष दो समझौते और हुए, पहले के अन्तर्गत अगस्त 1950 में खाद्यान्न की खरीद के लिए 'चाइनीज एरिया एड एक्ट 1948' के द्वारा 4. 5 मिलियन डालर की सहायता मिली जबकि दूसरे समझौते के अन्तर्गत जून 1951 में 'भारतीय आपातकालीन खाद्य सहायता एक्ट' के द्वारा 189.7 मिलियन डालर की सहायता मिली।[1]

भारत में 1952 में अमेरिकी राजदूत चेस्टर बाउल्स की नियुक्ति से दोनों देशों के आर्थिक संबंधों में और सुधार हुआ। 'तकनीकी सहयोग मिशन' भारत को प्राप्त सहायता का पहला अमेरिकी स्रोत था तथा 1950 के दशक के मध्य तक इसने सभी प्रकार की सहायता दी। 1952 में अमेरिका ने 'म्यूचूअल सिक्योरिटी एक्ट' के द्वारा 53 मिलियन डालर की आर्थिक व तकनीकी सहायता भारत को शुरू की। भारत ने 'एग्रीकल्चरल ट्रेड डेवलेपमेंट एक्ट 1954' के द्वारा भी 1950 के दशक में 54 मिलियन डालर का अनाज पाया।[2] अमेरिकी सहायता के सन्दर्भ में यह तथ्य सामने आता है कि 1956-57 और 1960-61 के बीच भारत को अमेरिकी सहायता का वार्षिक औसत 128 मिलियन डालर रहा।[3]

1950 से 1960 के दशक के मध्य तक अमेरिकी सहायता का जो रूप संज्ञान में आता है उसके अनुसार पहली पंचवर्षीय योजना (1952) के दौरान भारत ने 518 मिलियन डालर की ऋण व सहायता अमेरिका से पाई, जो की दूसरी पंचवर्षीय योजना में छः गुना बढ़कर 3 बिलियन डालर हो गई।[4] कैनेडी काल में सबसे अधिक सहायता अप्रत्यक्ष रूप से 'एड इडिया कंसोर्टियम' द्वारा आई। इसने तीसरी पंचवर्षीय योजना के लिए 2.29 बिलियन डालर दिए। जिसमें से 40 प्रतिशत

---

1 Chandrasekhar, S., American Aid and India's Economic Development, 1965, Praeger Publishers, New York, P-72.

2 Walter K. Andersen, U.S. Indian Relations, 1961-1963, Good in tentions and uncertain Results,edited. by Harold A. Gould & Sumit Genguly, The Hope and the Reality, 1993, P-71.

3 Statistical Abstract of the United States, 1962, P-868.

4 Jain B.M., India and the United States, ch-7, for a comprehensive discussion of U.S. aid.

सहायता अमेरिका से मिली। 1954-64 के बीच भारत को 10 बिलियन डालर की कुल सहायता मिली।[1]

अमेरिका ने भारत को 'यूनाइटेड स्टेट्स एजेन्सी फॉर इंटरनेशनल डेवलपमेंट' (USAID) और 'यू०एस० एक्सपोर्ट इम्पोर्ट बैंक' (EXIM BANK) द्वारा सहायता देनी शुरू की। 1961 में स्थापित USAID द्वारा भारत को तीसरी पंचवर्षीय योजना में 1,376.31 मिलियन डालर, तीन वार्षिक योजनाओं 1966-69 में 897.97 मिलियन डालर व चौथी व पाँचवी पंचवर्षीय योजना में क्रमशः 423.79 मिलियन डालर व 45 मिलियन डालर की सहायता मिली।[2]

भारत के प्रति राष्ट्रपति कैनेडी का रवैया उदार था। उनका विचार था कि आर्थिक सहायता में राजनीतिक मतभेदों को कम रखना चाहिए और आर्थिक सहायता इस प्रकार वितरित की जानी चाहिए जिससे कि संतुलित आर्थिक विकास हो। 1958-59 में भारत के 'विदेशी मुद्रा संकट' को कम करने के लिए एक सीनेटर के तौर पर कैनेडी ने जॉन शरमन कूपर के साथ सीनेट में एक प्रस्ताव पेश किया और कहा कि आज भारत भविष्य के लिए महत्वपूर्ण है और वह 1947 में पश्चिमी यूरोप के समान ही चुनौती का सामना कर रहा है।[3]

कैनेडी को विश्वास था कि अमेरिकी सहायता के विषय में भारत में व्याप्त नकारात्मक अमेरिकी छवि दूर होगी। 1965 तक भारत की कुल सहायता का 51.7 प्रतिशत अमेरिका से आया, यह किसी भी एक देश द्वारा दी गई सहायता का पाँच गुना थी।[4] कैनेडी बोकारो स्टील प्लांट के बारे में भी सहायता देने के इच्छुक थे परन्तु अमेरिकी स्टील कार्पोरेशन की नकारात्मक रिपोर्ट व 'क्ले कमीशन' की रिपोर्ट के बाद कांग्रेस ने इसे रोक दिया। अंततः इस प्रोजेक्ट को 1965 में सोवियत संघ से सहायता मिली।

---

1 Arther G. Rubinoff, Congressinal Attitudes toward India, edited by Harold A. Gould & Sumit Ganguly. The Hope and the Reality, 1993, P-161.

2 Vinay Kumar Malhotra, K.S. Purushothaman (Eds) India and the U.S.A. Economic Relations and Literature, 1998. Annual Publications, P-58-59.

3 George Rosen, Western Economists and Eastern societies, Delhi, Oxford University Press, 1985, P-114.

4 P.J. Eldridge, The Politics of Foreign Aid in India, Delhi, Vikas, 1969, P-38.

1950 व 1960 के दशक में अमेरिका भारत का सबसे बड़ा विदेशी सहायता देने वाला राष्ट्र रहा। कैनेडी का विश्वास था कि यह सहायता दूरगामी हित में अमेरिकी सुरक्षा हितों में सहायक होगी। उन्होंने 1962 में जनरल ल्यूसियस डी क्ले की अध्यक्षता में एक समिति बनाई जो आर्थिक सहायता व सुरक्षा संबंधों की समीक्षा व एशिया में एक समतुल्य शक्ति केन्द्र बनाने के संदर्भ में भारत को सहायता देने के संदर्भ में थी।[1]

जॉनसन काल, खाद्यान्न सहायता में कमी, वियतनाम युद्ध विश्व बैंक व अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष पर अमेरिकी दबाव व रुपये के अवमूल्यन से प्रभावित रहा। इस समय की 'बेल रिपोर्ट' में भारत की योजनाओं व उसके परिणामों के प्रति आलोचनात्मक रुख अपनाया गया। राष्ट्रपति जॉनसन व कृषि मंत्री ओरविले क्रीमैन की कथित 'स्वयं सहायता नीति' भारत के विरुद्ध थी और इसका अमेरिकी राजदूत चेस्टर बाउल्स ने विरोध भी किया। इसी समय खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता के लिए भारत ने हरित क्रान्ति की शुरूआत की थी। जिससे अमेरिका पर खाद्य निर्भरता समाप्त की जा सके।

1970 के दशक में भारत की कुल सहायता में अमेरिका का शेयर पॉच प्रतिशत से कम था, जो इस दशक की विभिन्न घटनाओं के प्रभाव के कारण था। निक्शन काल में जनवरी 1972 में अमेरिका ने भारत को टेंकर्स खरीदने के लिए आई०डी०ए० के ऋण के विरुद्ध वोट किया और 1972 भारत-पाक युद्ध के समय सारी सहायता रोक दी।[2]

1980 का दशक भी बहुत सकारात्मक न रहा। रीगन की नीतियाँ भारत के पक्ष में न थी। अमेरिका ने भारत को 'गरीबतम राष्ट्र' की श्रेणी से हटा दिया जो आई०डी०ए० से ऋण प्राप्त करने में सहायक थी और भारत पर व्यवसायिक बैंकों से ऋण लेने के लिए दबाव बनाया।[3] भारत को इस समय भय था कि उसके विश्व बैंक व अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के सन्दर्भ में उसका शेयर कम होगा। जो उसकी

---

1 Walter K. Anderson, U.S. Indian Relations, 1961-1963 (Edited by Harold A. Gould & Sumit Ganguly, The Hope and the reality, 1993), P-72.

2 Mansingh, India's Search for power, P-91.

3 Chester Crocker, In Department of State Bulletin, November 1982.

सहायता में कमी का कारण बनेगा। रीगन प्रशासन का प्रयास अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष पर अधिक नियंत्रण रखकर उसकी नीतियों को निजी क्षेत्र के अनुकूल बनाना था।

1980 के दशक की शुरूआत में रीगन ने उच्च तकनीक हस्तान्तरण पर नकारात्मक रवैया अपनाया, इसने भारत में विदेशी निवेश को प्रभावित किया। इन्दिरा गॉधी की अमेरिका यात्रा के बाद आर्थिक संबंधों में बदलाव परिलक्षित हुए और राजीव गॉधी के काल में इसमें सकारात्मक विकास हुआ परन्तु भारत से 'टेक्सटाइल आयात' के संदर्भ में मतभेद गहराए। इस काल में व्यापार के तरीकों व उसके मदों में परिवर्तन दिखा। इसके पहले तक व्यापार का एक प्रमुख भाग कच्चे माल व कम मूल्य के पदार्थो के व्यापार से संबंधित था। भारत मुख्यतः अनाज व खाद आयात करता था और जूट, कच्चे तेल व कपड़े निर्यात करता था परन्तु इसमें बदलाव आया। 1985 और 1986 के बीच भारत को खाद का अमेरिकी निर्यात 60 प्रतिशत कम होकर 425 मिलियन डालर से 169 मिलियन डालर हो गया। भारत हरित क्रान्ति के कारण अपनी खाद्य जरूरतें भी स्वयं ही पूरी करने लगा। इसके बावजूद अमेरिकी निर्यात का कुल मूल्य करीब-करीब वही रहा। इसका अर्थ यह हुआ कि अन्य क्षेत्रों में अमेरिकी निर्यात बढ़ा।

भारत व अमेरिकी आर्थिक संबंधों में एक नए युग की शुरूआत शीत युद्ध के उपरान्त देखने को मिलती हैं, जब भारत ने जून 1991 से उदारीकरण की नीति का अनुसरण किया।

(II) शीत युद्धोपरान्त : सहयोग व मतभेद

जून 1991 के भारत के आर्थिक उदारीकरण के कार्यक्रम व दिसम्बर 1991 में सोवियत संघ के विघटन ने भारत व अमेरिका के आर्थिक संवाद को एक नया रूप दिया। बिल क्लिंटन के शीत युद्ध के बाद, प्रथम राष्ट्रपति के रूप में 1993 में ओवल आफिस में जाने के पूर्व ही 'शीत युद्ध के बाद भारत व अमेरिका' नामक रिपोर्ट आई। जिसमें इस बात पर जोर दिया गया था कि अमेरिका भारत को विश्व

का विशालतम् लोकतंत्र व विश्वव्यापी संघर्षों को हल करने में एक संभावित सहयोगी के रूप में उसकी प्राथमिकता को बढाए।[1] इस रिपोर्ट को जारी करते हुए पूर्व अमेरिकी राजदूत राबर्ट कोहेन ने कहा कि अमेरिकी नीति निर्माताओं को भारत से इस समझ के साथ संबंध बढाना चाहिए कि वह दक्षिण एशिया की सबसे मजबूत सैनिक व आर्थिक शक्ति है और यह शक्ति भविष्य में बढेगी।[2] एशिया सोसायटी स्टडी मिशन के एक अन्य अध्ययन में भी दक्षिण एशिया में मुख्यतः भारत के साथ अमेरिकी सहयोग का मुख्य बिन्दु आर्थिक संबंध पर रखने की बात की गई। इन रिर्पोटों का क्लिंटन प्रशासन के पहले वर्ष तक तत्कालीन स्टेट डिपार्टमेंट के अधिकारियों पर कोई असर न पड़ा।

1993 में सुपर व स्पेशल 301 के अन्तर्गत भारत को रखने की धमकी व कश्मीर पर क्लिंटन व दक्षिण एशिया मामलों की सेक्रेटरी ऑफ स्टेट रॉबिन रफेल के गैर जिम्मेदाराना बयानों व दिल्ली में अमेरिकी राजदूत की नियुक्ति में देरी ने भारत व अमेरिका के रिश्तों में उदासीनता लाने का काम किया। यद्यपि स्टेट डिपार्टमेंट में नए दक्षिण एशिया ब्यूरों की स्थापना ने दक्षिण एशिया के संबंध में बढ़ रहे आकर्षण को इंगित किया।

अमेरिकी कामर्स डिपार्टमेंट द्वारा किए गए एक अध्ययन में भारत को विश्व के 10 बड़े उभरते हुए बाजार में से एक बताया गया। इन बाजारों की विश्व के कुल घरेलू उत्पाद में भागीदारी वर्तमान 10 प्रतिशत से दो गुनी बढ़कर 20 प्रतिशत अगले दो दशकों में हो जाएगी। भारत के अलावा ये बाजार चीन, हांगकांग, ताइवान, दक्षिण कोरिया, इंडोनेशिया, तुर्की, दक्षिण अफ्रीका, पोलैण्ड, अर्जेंटीना ब्राजील व मैक्सिको थे। इसने विकसित हो रहे भारत के प्रति स्टेट डिपार्टमेंट के दृष्टिकोण को प्रभावित किया। रॉबिन रफेल ने 1993 में दक्षिण एशिया पर एशिया फाउण्डेशन की कांफ्रेस में कहा कि व्यापार अवरोधों के खत्म होने से अमेरिका की

---

1 Selig S. Harrison and Geoffrey Kemp, India and America After the cold war, washington, DC : Carnegie Endownment for International peace, 1993.

2 Berta Gomez, "Panel Urges to give Priority to India," Textline : 262566, file date/ID, January 13, 1993, United States information service, New Delhi.

इस उपमहाद्वीप में व्यवसायिक उपस्थिति तेजी से बढ़ रही है। इस वर्ष के लिए भारत में निवेश का 200 मिलियन डालर का लक्ष्य है, जो स्वतंत्रता के बाद से कुल निवेश का एक चौथाई है। पहले छः महीने में भारत सरकार द्वारा पारित नए विदेशी निवेश में आधा अमेरिकी है।[1] इसके अलावा भी अन्य कई अवसरों पर रॉबिन रफेल ने भारत व अमेरिका के बीच बढ़ रहे आर्थिक संबंधों को इंगित किया।

प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव की अमेरिका यात्रा के पूर्व 'विदेशी संबंध समिति' (Foreign Relation Committe) के अध्यक्ष ली हेमिल्टन ने एशिया सोसायटी में 29 अप्रैल 1994 के अपने भाषण में कहा कि दशकों से दक्षिण एशिया अमेरिकी विदेश नीति में भूले हुए सौतेले बच्चे की तरह रहा है। यद्यपि अमेरिका को भारत का ध्यान रखना चाहिए। विश्व की एक चौथाई जनसंख्या दक्षिण एशिया में है और इसमें से अधिकांश भारत में हैं। यह विश्व का विशालतम् लोकतंत्र है और अंग्रेजी बोलने वाले देशें में दूसरा सबसे बड़ा। इसके पास पाँचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था, चौथी सबसे बडी सेना, सबसे बड़ा वैज्ञानिक व तकनीकी बल और दूसरी सबसे बड़ी साफ्टवेयर पेशेवरों की संख्या है।....... सौभाग्य से ये सारी शक्तियाँ दोनों देशों को साथ लाती हैं। चार दशकों की समाजवादी व्यवस्था के बाद भारत ने 1991 में आर्थिक सुधार का कार्यक्रम चलाया है। सरकार ने व्यापार अवरोधों को कम किया, सरकारी आधिपत्य को खत्म किया, करों को कम किया, विदेशी निवेश को प्रोत्साहन दिया, बैंकिंग क्षेत्र व वित्त बाजार को खोला और मुद्रा को परिवर्तनीय बनाया है। इनका नाटकीय परिणाम रहा। सकल घरेलू उत्पाद बढ़ा और मुद्रास्फीति कम हुई, जबकि उस समय बम्बई स्टाक एक्सचेंज पर बम विस्फोट हुआ था। विदेशी निवेश देश में आ रहा है और विदेशी मुद्रा भण्डार बढ़ता जा रहा है। भारतीय मध्यम वर्ग अमेरिका की कुल जनसंख्या के लगभग बराबर है और यह उपभोक्ता सामानों का अच्छा बाजार है, जो अमेरिकी व्यापार के लिए चुम्बक की तरह है और अमेरिकी व्यापारियों ने इसे समझा है। अमेरिकी कार्मस विभाग ने हाल ही में भारत को विश्व के बड़े बाजारों में से एक माना है, अमेरिकी कम्पनियां भी

1 "South Asia Bureau Chief Gives overview of US Policy." Official Text, USIS. September 21, 1993.

अपने हितों के लिए सक्रिय है और उन्होंने द्विपक्षीय व्यवसायिक समझौतों को बढ़ाने के लिए 'इंडिया इंटरेस्ट ग्रुप' का अनौपचारिक गठन किया है। इसमें अमेरिका की कुछ सबसे बडी कम्पनियां भी हैं जैसे-कोकाकोला, सिटी बैंक, ए.टी. एण्ड टी., अमेरिकन एक्सप्रेस, आई०बी०एम०, फोर्ड, और जेराक्स आदि।[1] हेमिल्टन का यह वक्तव्य भारत अमेरिका आर्थिक संबंध की तत्कालीन स्थिति को स्पष्ट करता है।

नरसिम्हा राव ने अपनी मई 1994 की अमेरिका यात्रा में कहा कि भारत-अमेरिका संबंध एक साहसिक नए युग के प्रवेश द्वार पर है। हमने अनेक क्षेत्रों में अनोखे सहयोग को देखा है। हाल ही में भारतीय सैनिकों ने सोमालिया में अमेरिकी व संयुक्त राष्ट्र के बलों के साथ गश्त की। हम विश्व पर्यावरण संकट, अन्तर्राष्ट्रीय आंतकवाद को रोकने, अन्तर्राष्ट्रीय ड्रग व्यापार को रोकने में समान हितों को देखते हैं और इसके लिए साथ-साथ कार्य कर रहे हैं। इस एजेंडे में वह क्षेत्र प्रमुख रहे जिनमें दोनों देश बहुत करीब नहीं आए थे जैसे-व्यापार, निवेश व तकनीक का हस्तान्तरण। राव ने कहा कि शायद भारत के महत्वाकांक्षी आर्थिक सुधारों का सबसे प्रभावी पहलू एक बंद व संरक्षित अर्थव्यवस्था का एक खुली व निर्यातोन्मुखी अर्थव्यवस्था में सहज रूप से परिवर्तन है। भारत का विशाल घरेलू बाजार, विशाल शिक्षित, प्रवीण व अर्द्ध प्रवीण कार्य बल, स्वस्थ वित्तीय संस्थाएं और परखी हुई लोकतांत्रिक व्यवस्था भविष्य की ओर सोचने वाली कम्पनियों को विशाल निवेश के अवसर उपलब्ध कराती है।[2] नरसिम्हा राव ने इस समय आर्थिक कूटनीति का सफल प्रयोग किया जिसनें दोनों देशों के संबंधों को नए युग के अनुरूप विकसित होने का आधार दिया।

संयुक्त राष्ट्र संघ में 29 सितम्बर 1994 को अपने भाषण में सेक्रेटरी ऑफ स्टेट वारेन क्रिस्टोफर ने कहा कि भारत के आर्थिक सुधारों ने दोनों देशों के बीच एक अभूतपूर्व व्यापार व निवेश का रास्ता साफ कर दिया है। यह हमारे व्यापारिक समुदाय द्वारा ज्यादा से ज्यादा संज्ञान में लाया जा रहा है। हमारा पिछले साल का

---

1 Hamilton Stresses Need for Better ties with India,Wireless file USIS, April 30, 1994.

2 Strategic Digest, July 1994.

भारत में निवेश बढा जो पिछले चार दशकों में निवेश से भी ज्यादा था।[1] भारत के आर्थिक उदारीकरण नीति के विकास को देखते हुए ही राष्ट्रपति क्लिंटन ने 1995 की शुरूआत में एक आर्थिक मिशन रोनाल्ड ब्राउन की अध्यक्षता में भेजा। इनके साथ अमेरिका के 25 बडे व्यापारिक समूह थे। इस समय दिल्ली में एक मेमोरेंडम ऑफ अंडरस्टैंडिंग (M.O.U.) पर हस्ताक्षर हुआ, जो एक उच्च स्तरीय मंच बनाने के विषय में था जो कि द्विपक्षीय विचार-विमर्श व व्यापारिक सहयोग का विकास कर सके। इसे 'व्यवसायिक संबंध' (Commercial Alliance) का नाम दिया गया। इस दौरान करीब 4 बिलियन डालर से अधिक के ऊर्जा संचार व बीमा क्षेत्रों में समझौते किए गए।[2]

दोनों देशों के द्विपक्षीय संबंधों को 'व्यवसायिक संबंध' के रूप में विकसित करने का यह नया प्रयास था। यह भारत व अमेरिका के बीच शीत युद्ध के शुरूआती दिनों के दाता व ग्राही संबंध से परिणत 'वर्तमान संबंध' का महत्पूर्ण पड़ाव है। शीत युद्ध के अंतिम समय तक अमेरिका भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक सहयोगी बना रहा परन्तु दोनों पक्षों के व्यापार की मात्रा बहुत कम रही। भारतीय व्यापार नीति और आर्थिक नीति, 'लाइसेन्स राज' से निर्धारित रही और राजनीतिक व सुरक्षा वातावरण भारत-अमेरिका आर्थिक गठजोड़ में बाधक रहे परन्तु राजीव गाँधी की 21वीं सदी के संदर्भ में सोच तथा इस संदर्भ में आने वाली चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार किए गए आधार ने आर्थिक कूटनीति द्वारा व्यापार व निवेश के क्षेत्र में संबंध को प्रगाढ़ किया।

राजीव गाँधी ने रीगन काल में तकनीक हस्तांतरण के संदर्भ में कुछ सफलता पाई थी परन्तु आर्थिक एजेण्डे ने विदेशी व्यापारिक समूहों व निवेशकों में बहुत उत्साह नहीं पैदा किया। राजीव गाँधी आन्तरिक व क्षेत्रीय चुनौतियों का सामना करने में व्यस्त रहे, 1987 के इस सदी के भीषणतम् सूखे, आतंकवादी घटनाओं में उछाल व अन्य घटनाओं ने उनके 21वीं सदी के भारत की योजना के

1 US officials Praise South Asian Association for Regional cooperation, Offical text, USIS. October 1, 1994

2 Annual Report, Ministry of External Affairs, Government of India, 1994-95.

अनुरूप काम करने में रूकावटें डाली। भारत इन चुनौतियों का सामना कर ही रहा था कि सोवियत संघ की घटनाओं ने विश्व परिदृश्य को बदला तथा इसमें राष्ट्रीय सुरक्षा के सन्दर्भ में आर्थिक स्थिति के महत्व के बारे में अमेरिकी सोच को बदला। इस सन्दर्भ में हेनरी किसिंजर व साइरस वेनसी ने कहा कि विदेश नीति व आर्थिक नीति एक दूसरे पर आश्रित होते जा रहे हैं। आज आर्थिक सुदृढता ज्यादा महत्वपूर्ण है।[1] राष्ट्रपति जॉर्ज बुश (सीनियर) पूर्वी यूरोप व पूर्व सोवियत संघ की घटनाओं व खाड़ी युद्ध आदि में ही उलझे रहे और आर्थिक जगत् का नेतृत्व न कर पाए। क्लिंटन ने किसिंजर व वेनसी के विचारों को साकार किया और अर्थ जगत् को महत्वपूर्ण स्थान दिया। उन्होंने अमेरिका के संभावित प्रतिद्वन्दी चीन के साथ राजनीतिक मतभेदों को किनारे रखते हुए आर्थिक संबंधों को सुधारा। जबकि भारत के साथ आर्थिक संबधं में अपने शुरूआती काल में क्लिंटन प्रशासन का रूख बहुत उत्साहवर्धक न था परन्तु इसमें धीरे-धीरे गर्माहट आई।

1992-93 के काल में अयोध्या में बाबरी मस्जिद के विध्वंस, साम्प्रदायिक दंगे और बम्बई बम काण्ड आदि ने सामाजिक अशान्ति व असुरक्षा की भावना को जन्म दिया परन्तु भारतीय अर्थ व्यवस्था इससे प्रभावित न हुई। सकल राष्ट्रीय उत्पाद में वृद्धि 3 प्रतिशत की दर से हुई जो पिछले वर्ष 2.5 प्रतिशत ही थी तथा देश के भुगतान संतुलन की स्थिति में भी सुधार हुआ। शेयर बाजार घोटाले ने प्रधानमंत्री व वित्तमंत्री की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिन्ह लगाया। 1994-95 में भारत में प्लेग महामारी के भय ने करीब एक माह तक अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बाधित किया परन्तु इन सबके बावजूद भारत-अमेरिका व्यापार व निवेश में वृद्धि ही हुई। 1988-89 का 5 बिलियन डालर का व्यापार स्तर 1993-94 में 7 बिलियन डालर तक बढ़ गया। क्लिंटन प्रशासन के पहले वर्ष ही भारत में जो अमेरिकी निवेश हुआ व 1947 से मध्य 1991 तक के कुल अमेरिकी निवेश से ज्यादा था।[2] यह तथ्य भारत व अमेरिका के आर्थिक संबंध में बढ़ रही समझ को सामने लाते हैं।

---

1 Henry Kissinger and Cyrus Vance, Bipartisan objectives for American Foreign Policy, Foreign Affairs, summer 1988.

2 Annual Report, Ministry of External Affairs, Government of India, 1993-94.

1996 में कांग्रेस पार्टी की हार के बाद आर्थिक सुधारों के संबंध में संदेह किया गया। अमेरिकी कामर्स सेक्रेटरी मिकी केनटोर ने कहा कि किसी भी अन्य विशाल देश की तरह, जिनमें विभिन्न राजनीतिक व आर्थिक आवाज व हित हो, भारत भी बहुत से विरोधाभासी संकेत देता है। मैं नई सरकार के साथ करीबी संबधं बनाना चाहूँगा। आपके साथ मैं यह निश्चित करने के लिए कार्य करूँगा कि नये अधिकारी व भारतीय व्यापारिक समुदाय उदारीकरण के लाभों को समझे।[1] भारत-अमेरिकी व्यापारिक परिषद् (Indo-US Business Council) के चेयरमैन हावर्ट क्लार्क ने भी कहा कि हम यह नहीं सोचते कि चुनाव परिणाम अस्थिरता पैदा करेंगे यहॉ पर यह सहमति है कि उदारीकरण का मार्ग चालू रहेगा और उसकी गति आने वाली सरकार के प्रकार व उसके मन्त्रियों पर निर्भर करेगी।[2]

भारत में मिली-जुली सरकारों के दौर में भी यह उदारीकरण की नीति जारी है। केवल इसकी गति में परिवर्तन आता रहा है। इसकी जड़ें काफी गहरी हैं। अतः नेतृत्व परिवर्तन से इसमें बहुत अंतर नहीं आएगा। वर्तमान भारतीय जनता पार्टी की सरकार भी इस दिशा में अग्रसर है तथा सरकारी क्षेत्रों में विनिवेश व नए क्षेत्रों को निजी क्षेत्रों के लिए खोलकर इस दिशा में ही आगे बढ़ रही है। जिससे दोनों देशों को अपने राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए अपने सहयोग के क्षेत्र के विस्तार में मद्द मिल रही है।

इन सबके बावजूद अमेरिका का भारत के साथ व्यापार का टर्नओवर उसके विदेशी व्यापार के 1 प्रतिशत से भी कम है। अमेरिकी निर्यात में भारतीय भागीदारी पिछले वर्षो से स्थिर हुई है, वर्ष 2000 में यह 0.88 प्रतिशत थी।[3] अतः अभी सुधार व विकास की संभावनाओं को पहचानते हुए आर्थिक संबंध के आधार को और वृहद करने की आवश्यकता है।

कुछ वर्षो से भारतीय निर्यात की रचना में परिवर्तन आया है। भारतीय निर्यात में वृद्धि के प्रमुख मद हीरा, टेक्सटाइल, रेडीमेड वस्त्र, मशीनरी, कार्पेट,

---

1 Indian Express, 15 May 1996.
2 Ibid
3 Report of Indian Embassy, Washingoton D.C.

जूते व चमडे के समान, रंग, लोहे व स्टील के समान, रसायन, खाद्य तेल, मसाले, काफी एवं चाय हैं। अमेरिका को भारतीय निर्यात का 70 प्रतिशत कटे व पालिश किए हुए हीरे, ज्वैलरी, टेक्सटाइल व वस्त्र कार्पेट, केकड़े व अन्य समुद्री उत्पाद, जूते व चमडे के उत्पाद लोहा व स्टील, तथा काजू के मद में है।[1]

अमेरिका से भारत के आयात की संरचना में भी परिवर्तन आया है। भारत खाद्यान्न में आत्मनिर्भर हो चुका है तथा पी०एल०-480 फंड का भी भारत ने उपयोग कर लिया है। गेहूँ व खाद्य तेलों का अमेरिका से आयात रूक गया है। कच्चे तेल का आयात जो 1985 में आयात सूची में नम्बर दो पर था धीरे-धीरे समाप्त हो रहा है है। इस समय आयात होने वाली मुख्य वस्तुएॅ हैं- मशीनरी, खाद, वायुयान व उसके उपकरण, मेडिकल उपकरण और आर्गेनिक रसायन। इस प्रकार शीत युद्ध के अंत के बाद भारतीय आयात-निर्यात संरचना में बदलाव आया है।

निजी क्षेत्र का मुख्य संयुक्त व्यापारिक समूह, भारत अमेरिका व्यापारिक परिषद (Indo-US Business Council) है। जो नई दिल्ली व वाशिंगटन में वार्षिक मिटिंग के साथ-साथ प्रोत्साहन आयोजन (Promotional Events) आयोजित करने में भी सक्रिय है। इसके साथ ही साथ वाशिंगटन स्थित कई बड़ी अमेरिकी कम्पनियों की प्रतिनिधियों की सदस्यता के साथ जनरल इलेक्ट्रिक ने भारत हित समूह (India Interest Group) की स्थापना की पहल की है।

अमेरिकी राष्ट्रपति क्लिंटन ने 20-24 मार्च 2000 को भारत की यात्रा की। 21 मार्च 2000 को राष्ट्रपति क्लिंटन व प्रधानमंत्री बाजपेयी ने 21वीं शताब्दी में भारत अमेरिका संबंध की दृष्टि से संबंध में संयुक्त वक्तव्य दिया। इसके द्वारा भारत-अमेरिका व्यवसायिक वार्ता शुरू करने की बात की गई। इसमें सरकारों के स्तर पर नियमित रूप से वार्त्ता होगी इसमें निजी क्षेत्र के साथ भी मिटिंग की जाएगी। इसके उद्देश्य होंगे। i) व्यापार को बढ़ाना ii) निवेश संभावनाओं को बढ़ाना। इसके साथ-साथ दोनो पक्ष व्यापार पर भारत-अमेरिका कार्य समूह की स्थापना पर सहमत हुए, जिसके अन्तर्गत यू०एस०टी०आर० और कामर्स मंत्रालय

Report of Indian Embassy Washingoton D.C.

और अन्य सम्बद्ध मन्त्रालय व विभाग व्यापार नीति में सहयोग बढ़ाने के लिए नियमित रूप से वार्ताएँ करेगे। दृष्टिकोण प्रपत्र द्वारा भारत-अमेरिका वित्तीय व आर्थिक फोरम की बात की गई, जो वित्तीय व निवेश के मुद्दे, अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक विकास जैसे मुद्दों पर विचार करेगा। इसके साथ-साथ भारत-अमेरिका विज्ञान व तकनीकी फोरम तथा ऊर्जा पर्यावरण पर सहयोग के संयुक्त वक्तव्य पर हस्ताक्षर किए गए। 21 मार्च 2000 को क्लिंटन ने भारतीय वित्तीय बाजार के आधुनिकीकरण के लिए वित्तीय संस्थाओं के सुधार व विस्तार कार्यक्रम (FIRE) के तहत 25 मिलियन डालर की सहायता दी। 24 मार्च 2000 को उन्होंने इस यात्रा के दौरान 4 बिलियन डालर से ऊपर के व्यापारिक समझौते पर हस्ताक्षर होने की घोषणा की।[1] इस प्रकार आर्थिक संबंध को एक दिशा देने का प्रयास हुआ।

अमेरिकी राष्ट्रपति की भारत यात्रा के बाद सितम्बर 2000 में प्रधानमंत्री बाजपेयी ने अमेरिका यात्रा की। इस दौरान भी दोनों देशों के बीच व्यापार के नए क्षेत्रों को खोलने व सहयोग के विस्तार पर सहमति बनी। व्यावसायिक वार्ता के दौरान कई योजनाओं पर सहयोग की सहमति बनी। प्रधानमंत्री बाजपेयी ने नवम्बर 2001 को पुनः अमेरिका यात्रा की। इस दौरान राष्ट्रपति बुश व प्रधानमंत्री बाजपेयी ने भारत-अमेरिका के बीच आर्थिक वार्ताओं को और विस्तार देने व इसमें गति लाने का निश्चय किया। दोनों पक्ष आर्थिक वार्ताओं में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ाने पर सहमत हुए तथा ऊर्जा व पर्यावरण के मुद्दों को अलग से शामिल किया। इन सब घटनाओं व संबंधों के विकास के बावजूद कई मुद्दों पर इनके बीच असहमति रही है, जिससे मतभेद उभरे हैं। शीत युद्ध के बाद से वर्तमान तक सामने आए मतभेद के प्रमुख स्वर इस प्रकार रहे हैं :-

i) 1998 का परमाणु परीक्षण व भारत पर प्रतिबंध।

ii) भारतीय कंपनियों पर अमेरिकी आयात नियंत्रण।

iii) बौद्धिक सम्पदा अधिकार।

---

1 Report of Indian Embassy Washingoton D.C.

iv) प्राथमिकता की आम व्यवस्था। (Generalized system of Preferences, GSP)

v) टेक्सटाइल व कृषि व्यापार।

vi) भारतीय उत्पादों पर एंटी डंपिग ड्यूटी व काउण्टरवेलिंग ड्यूटी।

vii) बाइर्ड ड्यूटी संशोधन (Byrd Amendment)

viii) भुगतान संतुलन पर मतभेद।

ix) अमेरिका को भारतीय श्रिम्प (Shirmp) का निर्यात।

x) व्यापार के साथ पर्यावरण मुद्दों को जोडना।

xi) विश्व व्यापार संगठन (W.T.O.) के सम्मेलन।

मई 1998 के परमाणु परीक्षण के बाद अमेरिका ने भारत पर आर्थिक प्रतिबन्ध लगा दिए थे। इसके अन्तर्गत अमेरिका ने निम्न कदम उठाए :-

i) मानवीय सहायता खाद्यान्न व अन्य कृषि उत्पादों को छोड़कर विदेशी सहायता अधिनियम के तहत विदेशी सहायता को समाप्त या निलंबित कर दिया गया।

ii) सैन्य बिक्री को शस्त्र निर्यात नियंत्रण एक्ट के तहत निलंबित किया तथा अमेरिकी युद्ध सामग्री सूची के किसी भी उत्पाद के व्यवसायिक बिक्री के लिए लाइसेन्स को पुनः लागू कर दिया।

iii) अमेरिकी सरकार की क्रेडिट व क्रेडिट गारंटी के किसी भी नए वादों को रोक दिया।

iv) सैन्य कार्यक्रमों को रोक दिया, इसके साथ-साथ कुछ शैक्षणिक कार्यक्रमों व आधिकारिक दौरों को रद्द किया।

v) नाभिकीय व प्रक्षेपास्त्र कार्यक्रमों में प्रयुक्त हो सकने वाले दोहरे प्रयोग वाले सभी सामानों के निर्यात पर प्रतिबंध लगाया।

इसके अतिरिक्त अमेरिकी एक्जिम बैंक ने भारत को होने वाले अमेरिकी निर्यात के लिए दिए गए 500 मिलियन डालर की क्रेडिट को निलंबित कर दिया। इसी तरह अमेरिकी ओवरसीज प्राइवेट इनवेस्टमेंट कार्पोरेशन (OPIC) भी प्रभावित हुआ। भारत के साथ उस समय पूर्व से चल रहे अनुबंध तो चलते रहे परन्तु नए

अनुबन्ध पर रोक लग गयी। जिससे ऊर्जा, वित्त, होटल व उत्पादन के क्षेत्रों के 80 निवेश प्रोजेक्ट में OPIC का लक्षित निवेश, जो कि 10 बिलियन डालर के बराबर था, रुक गया।

मई 1998 के प्रतिबन्धों के बाद से ही धीरे-धीरे इसमें शिथिलन भी आता रहा, यह प्रतिबन्ध सितम्बर 2001 में उठा लिया गया। सर्वप्रथम 15 जुलाई 1998 को राष्ट्रपति ने 'फारमर एक्सपोर्ट रिलीफ बिल' पर हस्ताक्षर किए, जो पाकिस्तान को गेहूँ की बिक्री के अमेरिकी हित से प्रभावित था। इसके बाद कांग्रेस ने एक वर्ष के लिए प्रतिबंध में शिथिलन का अधिकार ब्राउन बैक संशोधन के तहत राष्ट्रपति को दिया। जिससे 6 नवम्बर 1998 को राष्ट्रपति ने एक्जिम बैंक, ओ०पी०आई०सी० व ट्रेड डेवलेपमेंट एजेन्सी के कार्यक्रमों व अमेरिकी बैंकों को भारत सरकार को ऋण व क्रेडिट देने की अनुमति दी। यद्यपि सैन्य उपकरणों की बिक्री एवं दोहरे प्रयोग में आ सकने वाली वस्तुओं पर प्रतिबन्ध रहा। इसके साथ-साथ विश्व बैंक व अन्य प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के विकासात्मक कार्यक्रमों में सहयोग पर प्रतिबन्ध लगा रहा।

17 सितम्बर 1999 को अमेरिकी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कमीशन (USITC) ने अमेरिकी प्रतिबन्धों के आर्थिक प्रभाव पर एक रिपोर्ट प्रकाशित की। इस रिपोर्ट के अनुसार इन प्रतिबन्धों का भारत की अर्थ व्यवस्था पर बहुत कम असर हुआ। शुरू में भारत की वित्तीय क्षेत्र में गिरावट आई परन्तु 1998 के अन्त तक वह इससे उबरने में सफल रहा तथा 1998 के लिए 5.6 प्रतिशत के आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त किया। मात्रा के आधार पर इन प्रतिबन्धों द्वारा भारत पर 320 मिलियन डालर, पाकिस्तान पर 57 मिलियन डालर व अमेरिका पर 161 मिलियन डालर का असर पड़ा। इन प्रतिबन्धों से अमेरिकी निर्यात की कमी का फायदा अन्य देशों ने उठाया, जिससे अमेरिकी कम्पनियों को नुकसान हुआ।[1]

---

1 Report of Indian Embassy Washingoton D.C.

7 अक्टूबर 1999 को सीनेटर ब्राउन बैक द्वारा प्रस्तुत संशोधन प्रस्ताव से राष्ट्रपति को प्रतिबन्धों के कुछ हिस्सों को शिथिल करने का अधिकार पुनः मिला। राष्ट्रपति क्लिंटन ने 27 अक्टूबर 1999 को भारत के प्रति अनिश्चित् काल के लिए निम्न प्रतिबन्धों को शिथिल किया: एक्जिम बैंक व ओ०पी०आई०सी० की गतिविधियॉ, अन्तर्राष्ट्रीय सैन्य शिक्षा व प्रशिक्षण (IMET) के तहत सहायता, अमेरिकी बैंक से ऋण या क्रेडिट, एशियाई हाथी संरक्षण फंड, गेंडा व चीता संरक्षण फंड के तहत सहयोग, भारत-अमेरिकी पर्यावरण कार्यक्रम, कृषि विभाग द्वारा खाद्यान्न खरीद या अन्य कृषि उत्पादों के सहयोग के लिए कोई भी क्रेडिट, क्रेडिट गारण्टी या वित्तीय सहायता देना। 16 मार्च 2000 को भी अन्य क्षेत्रों में ढील दी गई।

क्लिंटन ने अपने कार्यकाल का अंतिम शिथिलन 19 जनवरी 2001 को दिया, जिसके तहत अमेरिकी युद्ध सामग्री सूची में से कुछ सामानों, जिसमें यू०के० से अमेरिकी मूल के हेलिकाप्टर के कलपुर्जो की भारत को निर्यात की अनुमति दी गई। 24 अगस्त 2001 को सीनेटर जोयबीडन व 28 अगस्त 2001 को टॉम लेनटोस ने बुश प्रशासन से प्रतिबंधों को समाप्त करने के लिए पत्र लिखा। अन्ततः बुश प्रशासन ने 22 सितबंर 2001 को इन प्रतिबन्धों की समाप्ति की घोषणा की।

भारत-अमेरिका के बीच एक अन्य मतभेद में अमेरिकी कामर्स विभाग के ब्यूरो ऑफ एक्पोर्ट एडमिनिस्ट्रेशन (BXA) ने 12 मई 1997 व 27 जून 1997 को दो अधिसूचनाएं जारी की तथा चार भारतीय कम्पनियों भेल, बार्क (BARC), इंदिरा गाँधी सेण्टर फार एटामिक रिसर्च कलपक्कम व इंडियन रेयर अर्थ लि० को होने निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिया। अक्टूबर 1997 में भेल की सात इकाइयों यूनिटों को छूट दी गई परन्तु बैंगलोर व हैदराबाद की यूनिटों पर प्रतिबंध रहा। मई 1998 के अमेरिकी प्रतिबंधों के आलोक में BXA ने निर्यात लाइसेंस को और कड़ा कर दिया तथा जून 1998 की अधिसूचना में कहा कि BXA भारत को निर्यात किए जाने वाले सभी दोहरे प्रयोग (नाभिकीय व प्रक्षेपास्त्र क्षेत्र में) में आ सकने वाले पदार्थो के

निर्यात को मंजूरी नहीं देगा तथा वह नाभिकीय व मिसाइल कार्यक्रमों में संलग्न भारतीय व पाकिस्तानी कम्पनियों तथा उत्पादों की सूची प्रकाशित करेगा।

13 नवम्बर 1998 को सूची प्रकाशित हुई तथा इसके अन्तर्गत करीब 300 भारतीय व पाकिस्तानी उत्पादों (entities) को रखा गया। 16 दिसम्बर 1999 को BXA ने 51 भारतीय उत्पादों को सूची से हटा लिया तथा 26 जुलाई 2000 को भी BXA ने दो भारतीय नामों को हटाया। 22 सितम्बर 2001 को बुश प्रशासन के प्रतिबंधों को उठाने के बाद से BXA की सूची निम्न उत्पाद है-भारत डाइनेमिक्स लि० (1 उत्पाद), डी०आर०डी०ओ० (4 उत्पाद), डी०ए०ई० (3 उत्पाद), इसरो (8 उत्पाद)।

भारत व अमेरिका के बीच मतभेद का एक प्रमुख मुद्दा बौद्धिक संपदा अधिकार है। अप्रैल 1991 में बौद्धिक सम्पदा अधिकार के संरक्षण में उचित कदम न उठाने के आरोप में भारत को स्पेशल 301 की प्राथमिकता वाले देशों की सूची में रखा गया। 1993 में भारत को प्राथमिकता वाली निगरानी सूची में लाया गया। अप्रैल 1996 में USTR ने यह संकेत दिया कि अमेरिका भारत को फार्मास्यूटिकल और कृषि रसायन उत्पादों के बौद्धिक सम्पदा अधिकार के सरंक्षण में असफलता के कारण विश्व व्यापार संगठन के पैनेल में यह मुद्दा रखेगा। विश्व व्यापार संगठन की विवाद निवारण संस्था (Dispute Settlement Body) ने भारत को दोषी माना और ट्रिप्स समझौते के तहत 1995 से 2005 के संक्रमण काल में इस सन्दर्भ में पर्याप्त व्यवस्था करने को कहा। भारत की इस निर्णय के विरुद्ध अपील को भी ठुकरा दिया गया। अतः भारत 19 अप्रैल 1999 तक ट्रिप्स समझौते के अनुच्छेद 70.8 और 70.9 के अनुपालन के लिए अपने कानूनों में संशोधन के लिए सहमत हुआ।

इस वायदे को पूरा करने के लिए 22 दिसम्बर 1998 को राज्य सभा तथा 10 मार्च 1999 को लोक सभा द्वारा पेटेंट (संशोधन) एक्ट 1999 पास किया गया। इसके द्वारा पेटेंट एक्ट 1970 में संशोधन कर मेल बाक्स व्यवस्था को स्थापित करने

का प्रावधान किया गया। इसके साथ-साथ भारत ने 2004 तक विश्व व्यापार संगठन के बौद्धिक सम्पदा अधिकार मानकों को पूरा करने के लिए उत्पाद पेटेंट व्यवस्था अपनाने की सहमति दी है। अमेरिका ने अपने व्यापारिक हितों व बौद्धिक सम्पदा अधिकार के संरक्षण के लिए दो अधिनियम बना रखे हैं। जो इस प्रकार है :

सुपर 301 :

यह अमेरिकी व्यापार व प्रतिस्पर्धा अधिनियम 1988 की वह धारा है जिसके अन्तर्गत अमेरिका द्वारा ऐसे किसी देश के विरुद्ध बदले की कार्यवाही की जा सकती है, जिसने वस्तुओं एवं सेवाओं के व्यापार तथा निवेश व्यवसाय के क्षेत्रों में ऐसी अडचने उत्पन्न की है जिससे कि अमेरिकी व्यापारिक फर्मो को हानि पहुँचती हो।

स्पेशल 301 :

यह अमेरिकी व्यापार एवं प्रतिस्पर्धा अधिनियम 1980 की वह धारा है जिसके अन्तर्गत अमेरिका द्वारा किसी भी ऐसे देश के विरुद्ध बदले की आर्थिक कार्यवाही की जा सकती है, जिसने अमेरिकी बौद्धिक सम्पत्तियों के अधिकार क्षेत्र में ऐसी कार्यवाही की है, जिनके फलस्वरूप अमेरिका के 'पेटेंट धारकों' को हानि पहुँचती है। यह केवल बौद्धिक सम्पत्तियों के अधिकार से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत पेटेंट ट्रेडमार्क, कापीराइट आदि से सम्बन्धित नियम आते हैं।

30 अप्रैल 1999 की स्पेशल 301 की रिपोर्ट में अमेरिका ने भारत को प्राथमिकता वाली निगरानी सूची में रखा। वर्ष 2000 की रिपोर्ट में भी भारत को ट्रिप्स समझौते के तहत पेटेंट संरक्षण के लिए पर्याप्त व्यवस्था न करने का दोषी माना गया। 1 मई 2001 को प्रकाशित USTR की रिपोर्ट में सुपर 301/स्पेशल 301/टाइटिल VII की रिपोर्ट को रखा गया। इसमें स्पेशल 301 को प्राथमिकता वाली निगरानी सूची में अन्य 16 देशों के साथ भारत को भी रखा गया।

एक अन्य मतभेद का क्षेत्र जर्नलाइण्ड सिस्टम आफ प्रिफरेंस (Generalized System of Preferences, GSP) रहा। GSP व्यवस्था के तहत करीब 1.1 बिलियन डालर के भारतीय निर्यात ने अमेरिकी बाजारों में ड्यूटी फ्री या कम ड्यूटी द्वारा प्रवेश पाया। 1992 में अमेरिका ने बौद्धिक सम्पदा अधिकार के संरक्षण में विफल रहने के आरोप में भारत के बहुत से उत्पादों पर से GSP लाभ को हटा लिया। वर्तमान में करीब 800 उत्पाद जो GSP पाने के उपयुक्त हैं उन्हें यह लाभ नहीं मिल रहा है। 29 जून 2001 को राष्ट्रपति बुश ने कुछ भारतीय उत्पादों को GSP लाभ देने की घोषणा की और 18 अगस्त 2001 को आधिकारिक तौर पर 42 उत्पादों पर GSP लाभ देने की घोषणा हुई, जिनमें रत्न आभूषण भी शामिल थे परन्तु अभी भी करीब 800 उत्पादों पर रोक लगी हुई है।

भारत द्वारा अमेरिका को निर्यात में टेक्सटाइल व वस्त्रों का एक महत्वपूर्ण भाग है। कुल निर्यात का करीब 25 प्रतिशत में सिले व बुने कपड़े, विभिन्न टेक्सटाइल उत्पाद, सूत व धागे, आते हैं। भारत द्वारा अमेरिका को वस्त्र निर्यात, कोटा व्यवस्था के तहत किया जाता है। इस अमेरिकी कोटा को 1 जनवरी 2005 तक समाप्त होना है। इस कोटा व्यवस्था को लेकर भारत का अमेरिका से मतभेद रहता है। अमेरिका ने 1 जुलाई 1996 को टेक्सटाइल व वस्त्रों के उत्पादन नियमों में बदलाव कर दिया। उसके तहत वस्त्र की उत्पत्ति का स्थान वह देश माना गया जहॉ पर वस्त्र के लिए पदार्थ (कपड़े) का निर्माण हुआ न कि जहॉ पर वस्त्र को सिला गया। भारत से बहुत सा कपडा तीसरी दुनिया के देशों में जाता है जहॉ पर सिलकर वस्त्रों का निर्माण किया जाता है तथा उसे अमेरिका भेजा जाता है। अब इसके लिए भारतीय वीजा लेना होगा, क्योंकि उस कपड़े का निर्माण भारत में हुआ भले ही वस्त्र को दूसरे देश में सिला गया और वहाँ से इसका निर्यात हो रहा है। यदि वस्त्र को यूरोपीय यूनियन के रास्ते अमेरिका भेजा जा रहा है तो वह पहले यूरोपीय यूनियन कोटे के मद में आएगा फिर अमेरिकी कोटे के मद में। जिससे भारतीय निर्यातकों को दोहरी मार पड़ने लगी।

एक अन्य मतभेद का क्षेत्र एंटीडपींग ड्यूटी व कांउटरवेलिंग ड्यूटी है। अमेरिका के एंटीडम्पींग कानून के अन्तर्गत यदि कामर्स विभाग को यह लगता है कि कोई उत्पाद वहाँ पर डम्प किया जा रहा है जो घरेलू उत्पादों के लिए खतरा है तो उन उत्पादों पर अधिभार लगा दिया जाता है। विदेशों से आयातित पदार्थ जिन पर उस देश ने सब्सिडी दी है और वह अमेरिका में आकर घरेलू उत्पादों को चुनौती दे रही है तो उन पर काउंटरवेलिंग ड्यूटी लगाई जाती है। 1974 के अमेरिकी व्यापार एक्ट के तहत जो सेक्शन 201 के नाम से भी जाना जाता है, राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह अतिरिक्त ड्यूटी या कोटा लगा सके।

1998 में 9 एंटीडपिंग ड्यूटी (AD) आदेश व 1999 में 211 एंटिडपिंग आदेश दिए गए। इसी तरह 1998 में 1 काउंटरवेलिंग ड्यूटी (CVD) आदेश जारी हुए। 1996 व 1997 में भारत के विरुद्ध कोई नया केस नहीं था। इसके अन्तर्गत आने वाले उत्पादों में संरक्षित मशरूम, स्टेनलेस स्टील के गोल तार, इलास्टिक रबर टेप, कार्बन क्वालिटी स्टील प्लेट, स्टील वायर, गर्म मुड़े क्वाएल आदि है। 21 दिसम्बर 2000 को भारत व 8 अन्य डब्लू०टी०ओ० के सदस्यों ने बाइर्ड संशोधन (Byrd Amendment) पर अमेरिका से डब्लू०टी०ओ० में विचार विमर्श का आग्रह किया। इस संशोधन के तहत एटिंडपिंग व काउंटरवेलिंग ड्यूटी से प्राप्त वित्त को उस कम्पनी को दिया जाएगा, जिसने शिकायत दर्ज करायी थी। इससे यह डर है कि कम्पनियाँ अपने फायदे के लिए यह शिकायते करने लगेगी। अतः जुलाई 2001 में विश्व व्यापार संगठन के नौ सदस्यों ने विवाद निर्धारण पैनल के गठन की माँग की है।

एक अन्य महत्वपूर्ण विवाद के क्षेत्र के तहत अमेरिका, यूरोपीय संघ भारत पर अपने आयात में मात्रात्मक प्रतिबन्ध समाप्त करने पर जोर देते हैं। अमेरिका का मत है कि भारत को भुगतान संतुलन के आधार पर आयात पर मात्रात्मक प्रतिबन्ध को नहीं बनाए रखना चाहिए। 1991 से भारत ने काफी मात्रा में उत्पादों पर से मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटाया है।

नवम्बर 1997 में कई दौर की वार्ता के बाद भारत ने यूरोपीय यूनियन, स्विटजरलैण्ड, कनाडा आस्ट्रेलिया, जापान और न्यूजीलैण्ड के साथ एक समझौता किया कि 1997 से 6 वर्षो में मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटा लिया जाएगा परन्तु अमेरिका के साथ कोई सहमति न बन सकी। तब इसके निर्धारण के लिए विश्व व्यापार संगठन ने विवाद निर्धारण पैनल का गठन किया, जिसने अमेरिका के पक्ष में निर्णय दिया। भारत ने इसके खिलाफ अपील की परन्तु डब्लू०टी०ओ० की पुनर्विचार निकाय (Appellate Body) ने भारत की अपील ठुकरा दी और इसे विश्व व्यापार संगठन के नियमों के विरुद्ध माना। अंततः अमेरिका से इस बात पर सहमति बनी की 1 अप्रैल 2001 तक दो दौर में 1429 उत्पादों पर से मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटा लिया जाएगा। 31 मार्च 2000 को भारत ने 714 उत्पादों व 1 अप्रैल 2001 को शेष 715 उत्पादों पर से मात्रात्मक प्रतिबन्ध हटा लिया गया।

भारत से समुद्री उत्पाद के निर्यात में भी मतभेद सामने आया। भारत अमेरिका को करीब 250 मिलियन डालर से अधिक के केकड़े (Shirmp) निर्यात करता है। 1 मई 1996 से यह अनिवार्य कर दिया गया कि इन्हें पकड़ने वाली नौकाओं में कछुओं को बचाने वाले यंत्र (TED) लगे होने चाहिए तथा निर्यात करने वाली सरकार इसका प्रमाण पत्र दे। 25 नवम्बर 1996 को नया आदेश आया कि इन्हें निर्यात किया जा सकता है यदि इन्हें पकड़ने में मशीनी नौकाओं का प्रयोग न हुआ हो। भारत व अन्य दक्षिण एशियाई देशों ने इसके विरुद्ध डब्लू०टी०ओ० में निवेदन किया तथा विवाद निर्धारण पैनल नें भारत के पक्ष में निर्णय दिया।

सन 2000 में भारत की समुद्री उत्पाद का निर्यात 43 प्रतिशत बढ़ा जो 1999 के 188 मिलियन डालर से बढ़कर 270 मिलियन डालर हो गया। भारत अमेरिका को मछली व समुद्री खाद्य पदार्थ निर्यात करने वाले देशों में 7वें स्थान पर आ गया, जो 1999 में 11वें स्थान पर था। इस प्रकार इस उत्पाद के निर्यात में भारत की स्थिति मजबूत हुई है और अब यह विवाद का मुद्दा नहीं रह गया है।

शीत युद्धोंपरान्त भारत व अमेरिका के बीच उठने वाले उपरोक्त मतभेदों के अतिरिक्त दो और क्षेत्र ऐसे हैं, जिनका प्रयोग अमेरिका दबाव बनाने व अपनी

स्थिति को सुदृढ करने के लिए करता है, ये हैं-विश्व व्यापार संगठन के सम्मेलनों में उठने वाले विभिन्न मुद्दों व व्यापार के साथ पर्यावरणीय मुद्दों को जोड़ना।

गैट के उत्तराधिकारी के तौर पर विश्व व्यापार संगठन (WTO) का गठन 1 जनवरी 1995 को हुआ। इसके चार मंत्री स्तरीय सम्मेलन हो चुके हैं, जो सदस्य देशों में आपसी सहमति बनाने पर थे। यद्यपि सिंगापुर (1996), जेनेवा (1998), सिएटल (1999) के सम्मेलन किसी सार्थक परिणाम तक न पहुँचे क्योंकि अमेरिका ने श्रम कानूनों, बौद्धिक सम्पदा अधिकार, कृषि सब्सिडी आदि मुद्दों पर मनमानी की तथा इन सम्मेलनों में श्रम मानकों, निवेश व प्रतिस्पर्धा तथा पर्यावरण के मुद्दों को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जोड़ने की कोशिश की गई। चौथा सम्मेलन जो दोहा में हुआ उसमें यह तय करना था कि नये विषयों के साथ वार्ता का नया दौर शुरू किया जाए या उरूग्वे-राउण्ड में निर्णीत मुद्दें पर अमल के तौर तरीके इजाद किए जाए। भारत का कहना था कि कृषि क्षेत्र में सब्सिडी खत्म करने के अलावा वस्त्र निर्यातक विकासशील देशों के लिए यूरोपीय व अमेरिकी बाजार खोलने का प्रावधान हो, किन्तु अभी तक उस पर अमल नहीं हुआ है। भारत, ब्राजील आदि विकासशील देशों ने यह मुद्दा उठाया कि एडस, कैंसर, मलेरिया, तपेदिक जैसी बीमारियों के इलाज के लिए सस्ती दवाएं उपलब्ध कराने हेतु उन्हें पेटेन्ट कानून में छूट मिलनी चाहिए किन्तु अमेरिका, स्विट्जरलैण्ड आदि ने विरोध किया।

भारत का अमेरिका से सेवा सम्बन्धी मुद्दे पर भी मतभेद रहा। भारत की प्राथमिकता यह है कि भारतीय तकनीकी एवं गैर तकनीक कर्मियों के विदेश जाने संबंधी प्रावधान उदार हो। ट्रिप्स पर वार्ता में भारत के लिए लाभकारी दो मुद्दों को समाहित किया गया। प्रथम, भौगोलिक आधार पर ट्रिप्स को विस्तारित करना इससे भारतीय नामों बासमती, अलफांसों आदि का दुरूपयोग नहीं किया जा सकेगा और द्वितीय परम्परागत ज्ञान को भी इस विषय की परिसीमा में लाने पर सहमति बनी।

अमेरिका ने विश्व व्यापार संगठन के सम्मेलनों में अपने हितों को सर्वोच्च मानते हुए उसके अनुरूप आचरण किया, जिससे पूर्व के तीन सम्मेलन सार्थक न हुए। भारत के साथ उसकी असहमति श्रम कानून, पेटेन्ट कानून, बौद्धिक सम्पदा अधिकार, पर्यावरण मुद्दों आदि पर बनी रही।

इस प्रकार उपरोक्त तथ्यों का विश्लेषण करने पर यह लगता है कि अमेरिका ने अपने आर्थिक हितों को देखते हुए समय-समय पर भारत पर दबाव बनाने के लिए विभिन्न उपायों का सहारा लिया है। आज के समय के आर्थिक भूमण्डलीकरण के दौर में भारत अपने को अलग-थलग नहीं रख सकता। उसके लिए अमेरिका से व्यापार को बढ़ाने की अपार सभावनाएं हैं। बदली हुई परिस्थितियों में जब चीन भी विश्व व्यापार संगठन का सदस्य बन गया है, भारत को इस मंच पर अपनी आवाज व पहचान को बनाए रखना है। जिससे अमेरिका व विकसित राष्ट्र 'गैर टैरिफ मुद्दों' की आड़ में दबाव डालकर मनमानी न कर सके।

(III) आर्थिक संबंध की दिशा :

यदि हम भारत अमेरिका व्यापार के आंकड़ों पर दृष्टि डाले तो हमें इनके आर्थिक संबंधों के भविष्य तथा इसका विश्लेषण करने में आसानी होगी। इसके लिए सर्वप्रथम भारत के निर्यात का विश्व निर्यात व भारतीय आयात के सन्दर्भ में स्थिति का संज्ञान आवश्यक है।

तालिका 2.1

भारतीय निर्यात का प्रतिशत

वर्ष	भारत का निर्यात प्रतिशत में	
	विश्व निर्यात में*	भारतीय आयात में
1980-81	0.42	53.5
1990-91	0.58	75.4
1992-93	0.56	84.7
1993-94	0.62	95.4
1994-95	0.65	91.9
1995-96	0.64	86.7
1996-97	0.65	85.9
1997-98	0.62	83.3
1998-99	0.61	72.2
1999-00	0.80	79.6

***Calender years, 1980-81 For 1980 etc.**
Source : Statistical outline of India

इससे यह पता लगता है कि भारतीय निर्यात विश्व के कुल निर्यात की तुलना में बहुत ही कम है। भारत में उदारीकरण शुरू होने के बाद से इसमें वृद्धि परिलक्षित हुई है परन्तु अभी इसमें वृद्धि की बहुत ज्यादा संभावना है। जिसमें अमेरिका की स्थिति प्रमुख रहेगी क्योंकि भारत व अमेरिका का द्विपक्षीय व्यापार 1999 में 12 बिलियन डालर को पार कर गया परन्तु अमेरिका को भारत का निर्यात उसके कुल आयात का मात्र 0.7 प्रतिशत रहा।[1] अतः अमेरिकी बाजार में भारत के लिए अभी भी काफी संभावनाएँ हैं।

यदि हम भारतीय निर्यात को भारत के प्रमुख व्यापारिक सहयोगियों के साथ उदारीकरण के पूर्व के वर्षों में देखें तो पाएंगे कि इसमें अमेरिका का स्थान महत्वपूर्ण रहा है-

तालिका 2.2

भारतीय निर्यात

(रु० करोड़ में)

देश	वर्ष			
	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91
अमेरिका	103	207	743	4797
यू०के०	173	170	395	2128
जापान	35	204	598-	3039
रूस	29	210	1226	5255
यूरोपीय यूनियन	232	282	1447	8951

Surce - DGCI & S Calcutta

अमेरिका शीत युद्ध में भी भारतीय निर्यात का एक प्रमुख स्थान रहा था। शीत युद्ध के उपरांत भारतीय निर्यात में वृद्धि हुई तथा इसके साथ-साथ अमेरिका से व्यापार में भी उछाल आया। यदि हम हाल के वर्षों के आंकड़ों का विश्लेषण करें

---

1 Press releases - 2000- March

तो पाएगें कि भारतीय निर्यात ने वृद्धि तो की है परन्तु विश्व निर्यात व अमेरिकी आयात के सन्दर्भ में यह काफी कम है। उदारीकरण के बाद भारत का निर्यात अपने प्रमुख व्यापारिक सहयोगियों के साथ निम्न तालिका से स्पष्ट है-

तालिका 2.3

भारतीय निर्यात (मिलियन डालर में)

देश	वर्ष				
	1997-98	1998-99	1999-2000	2000-01	2001-02
अमेरिका	6801.23	7199.64	8522.88	9297.02	4164.63
यू०के०	2140.71	1855.40	2246.62	228.67	1086.29
जापान	1898.43	1651.87	1702.91	1795.08	769.60
जर्मनी	1925.30	1852	1802.27	1898.31	847.44
रूस	952.97	1054.99	951.44	888.98	389.12
फ्रांस	759.77	995.59	919.57	1020.15	457.92
इटली	1115.14	1287.88	1163.84	1304.07	603.42
यू०ए०ई०	1692.44	1829.70	2148.26	2590.11	1222.94
हांगकांग	1931.89	1880.60	2551.59	2635.58	1160.51
आस्ट्रेलिया	438.27	321.70	406.63	405.11	196.09
बेल्जियम	1215.53	1867.59	1380.94	1464.74	642.13

Source : DGCI & S, calcutta.

उपरोक्त सूची हाल के वर्ष में भारत के प्रमुख व्यापारिक सहयोगियों के साथ उसके निर्यात को प्रदर्शित करती है। यह आंकड़े इस बात के गवाह हैं कि आज भी अमेरिका भारतीय निर्यात में अपनी प्रमुखता बनाए हुए है। आज भारत का अमेरिका को निर्यात का झुकाव तकनीक आधारित उत्पादों की ओर हो रहा है तथा उदारीकरण के बाद के वर्षो में इस क्षेत्र में बहुत संभावनाएं हैं आज भारतीय साफ्टवेयर उद्योग की वृद्धि दर 50 प्रतिशत वार्षिक है जो विश्व औसत 12 प्रतिशत

से काफी अधिक है परन्तु विश्व सॉफ्टवेयर बाजार में भागीदारी 0.5 प्रतिशत है।[1] अमेरिका इसके प्रमुख आयातको में से है अतः इस क्षेत्र में निर्यात की वृद्धि की पर्याप्त संभावना है।

यदि हम उदारीकरण के बाद के वर्षो में भारतीय निर्यात प्रमुख व्यापारिक सहयोगियों के साथ प्रतिशत के रूप में देखें तो यह अमेरिका को भारत का प्रमुख निर्यातक राष्ट्र प्रदर्शित करता है।

तालिका 2.4

भारतीय निर्यात (प्रतिशत में)

देश	वर्ष									
	91-92	92-93	93-94	94-95	95-96	97-97	97-98	98-99	99-00	00-01
अमेरिका	16.4	19.0	18.0	19.1	17.4	19.6	19.4	21.7	22.8	20.9
यू०के०	6.4	6.5	6.2	6.4	6.3	6.1	6.1	5.6	5.5	5.2
जापान	9 2	7 7	7.8	7.7	7.0	6 0	5.4	5.0	4.6	4.0
रूस	9.2	3 3	2.9	3.1	3.3	2.4	2.7	2.1	2.6	2.0
जर्मनी	7.1	7.7	6.9	6.6	6.2	5.7	5.5	5.6	4.7	4.3

Source : DGCI & S, Calcutta

भारत के प्रमुख व्यापारिक सहयोगियों के साथ उदारीकरण से पूर्व के वर्षो, बाद के वर्षो तथा प्रतिशत के आधार पर आयात की निम्न सूचियाँ है :-

तालिका 2.5

भारतीय आयात (रु० करोड़ में)

देश	वर्ष			
	1960-61	**1970-71**	**1980-81**	**1990-91**
अमेरिका	**328**	**453**	**1619**	**5245**
यू०के०	**217**	**127**	**731**	**2894**
जापान	**61**	**83**	**749**	**3245**
रूस	**16**	**106**	**1014**	**2548**
यूरोपीय यूनियन	**417**	**520**	**12680**	**32691**

Source : DGCI & S, Calcutta.

1 Press Releases, 2000, March

तालिका 2.6

भारतीय आयात प्रमुख व्यापारिक सहयोगियों के साथ

(मिलियन डालर में)

देश	वर्ष				
	1997-98	1998-99	1999-2000	2000-01	2001-02 (अप्रैल-सितम्बर)
अमेरिका	3716.88	3740.19	3629.52	2809.06	1543.45
यू०के०	2443.56	2621.36	2727.86	3112.92	1339.01
जापान	2144.90	2465.72	2355.32	1823.77	882.88
जर्मनी	2528.84	2140.68	1866.63	1738.30	953.23
रूस	678.20	545.54	617.47	514.02	258.61
फ्रांस	797.74	719.58	737.04	629.58	351.15
इटली	921.70	1088.26	744.05	715.05	348.80
आस्ट्रेलिया	1485.56	1445.01	1079.33	1046.89	578.65
यू०ए०ई०	1780.00	1721.24	2138.84	647.19	441.09
बेल्जियम	2668.12	2876.80	3474.89	2865.21	1264.04
स्वीट्जरलैण्ड	2640.46	2942.46	2620.73	3100.24	1662.90

Source : DGCI & S, Calcutta.

तालिका 2.7

भारतीय आयात (प्रतिशत में)

देश	वर्ष									
	91-92	92-93	93-94	94-95	95-96	96-97	97-98	98-99	99-00	00-01
अमेरिका	10.3	9.8	11.8	10.1	10.5	9.4	8.96	8.60	7.2	6.0
यू०के०	6 2	6.5	6.6	5.4	5.2	5.5	5.89	6.2	5.5	6.3
जापान	7.1	6.5	6.6	7.1	6.7	5 6	5.17	5.80	5.1	3.6
जर्मनी	8.0	7.6	7.7	7.6	8.6	7.2	6.10	5.1	3.7	3.5

Source : DGCI & S, Calcutta

उपरोक्त आंकड़े भारत के विभिन्न देशों से आयात को प्रदर्शित करते हैं। इनसे भी यही तथ्य निकलता है कि शीत युद्ध काल व उसके बाद के उदारीकरण

के युग में भी भारत को आयात के क्षेत्र में अमेरिका की स्थिति प्रमुख बनी रही। यदि हम यू०एस० सेन्सस ब्यूरो के आंकड़ों का संज्ञान ले तो हमें अमेरिका के साथ भारत के आयात-निर्यात का वार्षिक आधार पर स्थिति का पता लगता है-

तालिका 2.8

अमेरिका का भारत के साथ व्यापार (जनवरी से दिसम्बर)

(मिलियन यू०एस० डालर में)

वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार संतुलन
1985	1,641.80	2,294.80	-653.00
1986	1,536.30	2,283.30	-747.00
1987	1,463.40	2,528.60	-1,065.20
1988	2,500.20	2,939.50	-439.50
1989	2,457.60	3,314.50	-856.90
1990	2,486.00	3,196.80	-710.80
1991	1,999.30	3,192.50	-1,193.20
1002	1,917.10	3,779.80	-1,862.70
1993	2,778.10	4,553.70	-1,775.60
1994	2,294.00	5,309.50	-3,015.50
1995	3,295.80	5,725.20	-2,430.40
1996	3,328.30	6,169.50	-2,841.20
1997	3,607.60	7,322.40	-3,714.80
1998	3,564.40	8,237.20	-4,672.80
1999	3,687.80	9,070.80	-5,383.00
2000	3,667.20	10,686.60	-7,019.40
2001	3,425.10	9,076.20	-5,651.10
2002*	2,180.90	6,614.00	-4,433.10

* जनवरी-जुलाई 2002

Source : U.S. Census Bureau, Foreign Trade Division Data Dissemination Branch, Washington D.C.

उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि अमेरिका ने भारत से आयात उसको अपने निर्यात से अधिक किया है अर्थात अमेरिका भारत के बीच का व्यापार संतुलन भारत के पक्ष में हैं। शीत युद्ध की समाप्ति के बाद से अमेरिका को भारतीय निर्यात में अच्छी वृद्धि हुई है परन्तु यह अभी भी अमेरिका के कुल आयात, निर्यात व व्यापार संतुलन में भारत का स्थान क्रमशः 22वां, 28वां तथा 17वां है।[1]

1991 से जुलाई 2001 के बीच भारत द्वारा अनुमोदित सभी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (यूरो इशू व एन०आर०आई० द्वारा अनुमोदित सभी प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (यूरो इशू व एन०आर०आई० निवेश छोड़कर) में अमेरिका की भागीदारी 20 प्रतिशत रही। नीचे की तालिका से भारत में निवेश की स्थिति साफ होती है।

तालिका 2.9

प्रत्यक्ष विदेशी निवेश

(कुल राशि रू० मिलियन में)

देश	वर्ष										
	2002*	2001	2000	1999	1998	1997	1996	1995	1994	1993	1992
अमेरिका	13149.09	49197 41	41938 37	35751.68	35618.81	35698 26	100558.69	70447.83	34880 93	34729.78	11382 6
यू०के०	225 56	49942.44	4121.03	29630.42	32008.45	44907.21	15246 0	17257.65	12991.49	6227 24	1176.72
मारिशस	5932.63	28925.29	72339.79	38030 49	31159 08	104278.9	23340 2	18084.87	5347.4	1242.41	-
जापान	1873 09	7352 74	8275.45	15947.29	12828 23	19063.52	14882 5	15142 57	4009 03	2574.27	6102 30
जर्मनी	389.31	4138 9	5937 64	11429.46	8537 60	21548 17	15375 34	13394.98	5693.64	1754.37	964.85
फ्रांस	3172 24	6798.09	2020 73	14486 18	5135.60	7134 13	16720 52	4203 62	897 32	1290 9	271 09

*जनवरी-मार्च 2002

Source - Finance Department

उपरोक्त आंकड़े भारत में उसके व्यापार सहयोगियों द्वारा किए गए विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को दर्शाते हैं। भारत द्वारा उदारीकरण की नीति अपनाने के बाद से

1 U.S. Census Bureau, Foreign Trade Division, Final- 2001

इसमें तेजी आई है परन्तु इसे हम अन्य देशों जैसे चीन, ताइवान, ब्राजील, मलेशिया आदि में अमेरिका के विदेशी प्रत्यक्ष निवेश से तुलना करें तो यह काफी कम है। यद्यपि भारत में वास्तविक विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में अमेरिका सबसे बड़े निवेशकों में से है। यदि हम 1991 से मई 2002 तक मंजूर विदेशी पूँजी निवेश की सूची को देखे तो भारत में पूँजी निवेश करने वाले दस बडे देशों की यह तस्वीर उभरती है।

तालिका 2.10

कुल मंजूर पूँजी निवेश (देशवार)

(मिलियन रुपये में)

देश	कुल मंजूरशुदा पूंजी निवेश (1991-मई 2002)
अमेरिका	569724.48
मारीशस	335658.97
ब्रिटेन	222329.76
जापान	109856.80
दक्षिण कोरिया	98090.02
जर्मनी	89720.61
हालैण्ड	87926.13
आस्ट्रेलिया	67358.02
फ्रांस	62922.30
मलेशिया	59583.33

Source : SIA Newslatter

इस अमेरिकी निवेश की प्रमुख क्षेत्रों में हिस्सेदारी इस प्रकार रही-

ईधन (ऊर्जा व तेल रिफायनरी) -39 प्रतिशत।

खाद्य संरक्षण उद्योग - 11 प्रतिशत।

दूरसंचार - 10 प्रतिशत।

सेवा क्षेत्र (वित्तीय व गैर वित्तीय सेवाएं) -9 प्रतिशत।

विद्युत उपकरण (कम्प्यूटर साफ्टवेयर और इलेक्ट्रानिक्स) 8 प्रतिशत।

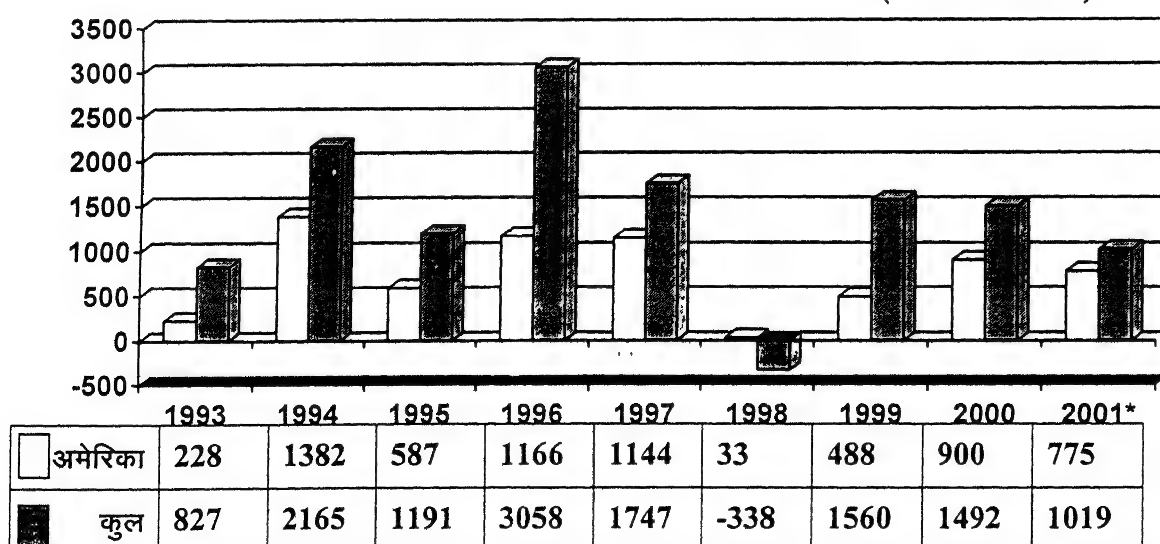
Source : Indian Embassy Washington D.C.

पोर्टफोलियों निवेश के मामले में भी अमेरिका की स्थिति आग्रणी बनी हुई है। सेबी में पंजीकृत 538 विदेशी संस्थागत निवेशकों (FIIS) में से 220 संयुक्त राज्य अमेरिका से थे। 5 फरवरी 2001 तक भारतीय वित्तीय बाजार में विदेशी संस्थागत निवेशों के करीब 13 बिलियन डालर के निवेश में से 7 बिलियन डालर का निवेश अमेरिका का था। यह 1993 से विदेशी संस्थागत निवेश का करीब 47 प्रतिशत है। 1993 से फरवरी 2001 तक के वार्षिक आंकड़े इस प्रकार हैं:-

तालिका 2.11

अमेरिकी संस्थागत निवेशकों का निवेश

(मिलियन डालर)



	1993	1994	1995	1996	1997	1998	1999	2000	2001*
अमेरिका	228	1382	587	1166	1144	33	488	900	775
कुल	827	2165	1191	3058	1747	-338	1560	1492	1019

*4 फरवरी 2001

Source : SEBI

उपरोक्त आंकड़े भारत में अमेरिकी निवेश की स्थिति साफ करते हैं तथा भारत में उसकी रुचि को दर्शाते हैं। यह निवेश अन्य देशों में निवेश की तुलना में कम है। व्यापार एवं विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (UNCTAD) की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2000 में भारत में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश 2.13 अरब डालर व चीन में 40.77 अरब डालर रहा। इसी प्रकार वर्ष 2001 की रिपोर्ट के अनुसार भारत में निवेश में 47 प्रतिशत की वृद्धि हुई और यह 3.4 अरब डालर रहा, जबकि चीन में 15 प्रतिशत की वृद्धि हुई और यह 47 अरब डालर रहा। इस निवेश में अमेरिका का प्रमुख योगदान रहा। अन्य विकासशील देशों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश से तुलना करें तो निम्न आंकड़े प्राप्त होते हैं।

तालिका 2.12

विकासशील राष्ट्रों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश

(बिलियन यू०एस० डालर)

	1990	1992	1993	1994	1995	1996	1997	1998	1999
सभी विकासशील राष्ट्र	24.3	47.5	66.0	88.8	105.0	130.8	170.3	173.2	181.9
भारत	0.162	0.277	0.550	0.973	2.144	2.426	3.577	2.635	2.169
चीन	3.487	11.156	27.515	33.787	35.849	40.180	44.236	43.751	38.753
इण्डोनेशिया	1.093	1.777	2.004	2.109	4.348	6.194	4.677	-0.356	-2.745
थाईलैण्ड	2.444	2.113	1.804	1.366	2.068	2.336	3.746	6.941	6.213
मलेशिया	2.333	5.183	5.006	4.342	4.132	5.078	5.106	5.000	1.533
दक्षिण कोरिया	0.788	0.727	0.588	0.809	1.776	2.325	2.844	8.415	9.333
भारत की हिस्सेदारी सभी विकासशील देशों में (%)	0.67	0.58	0.83	1.10	2.04	1.85	2.09	1.52	1.18
चीन की हिस्सेदारी सभी विकासशील देशों में (%)	14.35	23.49	41.69	38.05	34.14	30.72	25.98	25.26	21.30

Source : Line 1. 1990-98 Toble 21 p-36 Global Development Finance Analysis and summary tables 2000

2. Global Development Finance : Country Tables 2000.

उपरोक्त आंकडे इन देशों में हुए कुल विदेशी प्रत्यक्ष निवेश को दर्शाते हैं। जिसमें अमेरिका का निवेश प्रमुख है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत अभी भी अन्य देशों के मुकाबले पीछे है। वह अपनी नीतियों के सफल क्रियान्वयन द्वारा इसे काफी बढा सकता है और इस प्रयास में अमेरिका का सहयोग नितान्त आवश्यक है।

भारत ने उदारीकरण द्वारा अनेक बाधांए दूर की है, जिससे उसका व्यापार बढ़ा है। जिसमें अमेरिका प्रमुख है परन्तु अभी भी विदेशी निवेशकों के मन में शंकाएं हैं, जिनमें अमेरिकी निवेशक प्रमुख हैं। भारत में अमेरिकी राजदूत रॉबर्ट ब्लैकविल ने कहा कि संभावित अमेरिकी निवेशकों ने मुझसे कहा कि भारतीय टैक्स व टैरिफ बहुत ज्यादा है तथा यहॉ व्यापारिक निर्णयों में बहुत अधिक सरकारी दखल है।[1] एक कन्सलटिंग फर्म ए०टी० कार्ने (A.T. Kearnay) के उपाध्यक्ष ने कहा कि विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के मामले में भारत एक चौराहे पर खड़ा है। निवेशक भारत को लेकर आशावादी तो है परन्तु इस सोच से इनमें निवेश करने के लिए अरुचि है कि अन्य उभरते बाजारों की तुलना में भारत ने निवेश की मूल बाधाओं को दूर करने की दिशा में कम काम किया है। भारत मे निवेश किए हुए व्यापारिक संगठनों में से 61 प्रतिशत ने ही कहा कि वे पुनः निवेश कर सकते है तथा अन्य संगठन जिन्होंने पूर्व में यहाँ निवेश नहीं किया है उनमें से 71% ने कहा है कि उनके निवेश की कम संभावना है। इसके लिए 6 प्रतिशत भ्रष्टाचार को, 39 प्रतिशत नौकरशाही की बाधाएं व 28 प्रतिशत सुधार की धीमी गति को कारण माना गया।[2]

भारत-अमेरिका आर्थिक संबंधों में 1991 के बाद से उभरे प्रमुख विवाद के मुद्दों को पूर्व में वर्णित किया जा चुका है। आर्थिक संबंध की प्रगाढ़ता व सुदृढ़ता के लिए भारत ने अपनी आर्थिक नीतियों में परिवर्तन किया, जो उसकी 1991 में आई आर्थिक मजबूरियों के साथ-साथ इस भूमण्डलीकरण के दौर में समय के साथ चलने की इच्छा से भी प्रेरित थी। 1991 के भुगतान संतुलन के संकट के बाद संरचनात्मक परिवर्तन शुरू किए गए जैसे : लाइसेंस नियंत्रण की समाप्ति, कर

---

1 The Times of India, New Delhi 30 October, 2002.
2 Economic Growth Center, Yale University, Center Discussion, Paper No. 830, 2001.

ढॉचे में सुधार, सार्वजनिक व निजी बैंकों को ज्यादा स्वतंत्रता, सार्वजनिक क्षेत्रों का विनिवेश आदि। इन्हें प्रथम पीढ़ी का सुधार कहा गया। अब द्वितीय पीढ़ी के सुधारों में श्रम, ऊर्जा, शक्ति, सब्सिडी, आधारभूत ढ़ॉचा, कृषि, खाद्य, परिवहन, दूरसंचार आदि क्षेत्रों पर ध्यान दिया जा रहा है। जिससे दोनों देशों को आर्थिक संबंध को मजबूती देने में मदद मिलेगी।

भारत द्वारा उदारीकरण के दौरान किए गए उपायों ने द्विपक्षीय व्यापार को बढ़ाया है। सुधारों के इस दशक में निर्यात पर भारित औसत टैरिफ 1996-97 में 24.6 प्रतिशत तक गिरी, जो 1999-00 में 30.2 प्रतिशत तक बढ़ गयी, क्योंकि 1997-98 में टैरिफ पर 10 प्रतिशत अधिभार लगा दिया गया। 2001-02 के बजट में इस अधिभार को हटाया गया। वित्तीय वर्ष 2000-01 के लिए चार प्रमुख टैरिफ श्रेणियां (35 प्रतिशत, 25 प्रतिशत व 15 प्रतिशत) थी। निर्यात के लिए मात्रात्मक प्रतिबंध को 1 अप्रैल 2001 से अधिकांश उत्पादों पर से हटा लिया गया। जबकि कृषि उत्पादों पर से यह प्रतिबंध उठाने के साथ ही उस पर टैरिफ दर बढ़ा दी गई। जिसका अमेरिका ने विरोध किया, जबकि कृषि उत्पादों पर अमेरिका में दी जा रही सब्सिडी पर भारत का विरोध था। भारत इसे विश्व व्यापार संगठन के सम्मेलनों में भी उठाता रहा है।

1991 के पूर्व विदेशी प्रत्यक्ष निवेश पर अनेक पाबंदियां थी। कुछ प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में ही इसकी सीमित अनुमति थी। उच्चतम स्तर पर 40 प्रतिशत तक ही भागीदारी की अनुमति थी तथा सरकार से तकनीकी हस्तान्तरण की अनुमति, निर्यात बाध्यता और उत्पादन में धीरे-धीरे स्वदेशीकरण करने की नीतियां थीं। यह नीतियां भारत-अमेरिका आर्थिक संबंधों में बाधक हो रही थी। 'ट्रिम्स समझौते' पर भारत के हस्ताक्षर के साथ ही निर्यात बाध्यता व उत्पादन के स्वदेशीकरण की बात समाप्त हो गयी। भारत ने अनेक क्षेत्रों में विदेशी निवेश की उच्चतम सीमा बढाई। मई 2001 से अनेक क्षेत्रों में 100 प्रतिशत तक विदेशी निवेश की सीमा बढ़ा दी गई है। जो भारत में अमेरिकी निवेश बढ़ाने में सहायक होगी। वर्तमान में विभिन्न क्षेत्रों में विदेशी निवेश की निम्नवत् सीमा है-

तालिका 2.13

प्रमुख क्षेत्रों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की अधिकतम अनुमान्य सीमा

क्षेत्र	अधिकतम सीमा (प्रतिशत)
निजी क्षेत्र की बैकिंग	49
वित्तीय कम्पनियां	100
बीमा कम्पनियां	26
स्वदेशी विमान सेवा	40
हवाई अड्डा	100
दूरसंचार (बेसिक, सेल्युलर)	49
निर्माण	100
पेट्रोलियम (रिफायनिंग नई इकाइयां)	100
विपणन	74
अपस्ट्रीम	51-100
कोयला खनन	74-100
ट्रेडिंग	51-100
प्रसारण	20-49
विद्युत	100
फार्मास्यूटिकल	100
सड़क व बंदरगाह	100
होटल एवं पर्यटन	100
खनन	74-100
कोरियर सेवाएं	100
विज्ञापन, फिल्म	74-100
रक्षा	26

Source : Foreign Investment Promotion Board -(FIPB)

उपरोक्त क्षेत्रों में निवेश सीमा बढ़ने से अमेरिकी निवेश व व्यापार के बढ़ने की अच्छी सम्भावना है।

भारत में अमेरिकी निवेश में एक बाधा उच्च टैरिफ की रही है। 1990-91 में निर्यात टैरिफ की भारत की जी०डी०पी० में 3.6 प्रतिशत की भागीदारी थी। 1990-91 की उच्चतम 355 प्रतिशत की टैरिफ दर 1997-98 में 45 प्रतिशत तक घटाई गयी। विश्व बैंक द्वारा 1998 के स्तर पर अर्थ व्यवस्था के हिसाब से किए गए एक सर्वे के अनुसार 20 मिलियन से अधिक जनसंख्या वाली अर्थ व्यवस्थाओं में भारत की टैरिफ दरें दूसरी सबसे ज्यादा थी। भारत से अधिक केवल अर्जेन्टीना की दर थी। भारत की टैरिफ संरचना 1990-99 के बीच इस प्रकार रही।

तालिका 2.14

भारतीय टैरिफ संरचना 1990-99

(प्रतिशत में)

क्षेत्र	माध्य								
	90-91	92-93	93-94	94-95	95-96	96-97	97-98	98-99	99-00
पूरी अर्थव्यवस्था	28	94	71	55	40.8	38.6	34.4	40.2	39.6
कृषि उत्पाद	106	59	39	31	25.1	25.6	24.6	29.6	29.2
खनन	N.A.	N.A.	71	48	30	24.8	24.4	29.4	26.6
उपभेक्ता उत्पाद	142	92	76	59	45.4	45.4	39.8	45.9	42.9
मध्यवर्ती उत्पाद	133	104	77	59	43.7	38.8	34.7	40.7	41.2
पूंजीगत उत्पाद	109	86	58	42	33.1	33.8	29.7	35.3	35.3

Source : World Bank Staff Estimates : the rates are based on the 1997-98, 1998-99. 1999-2000 editions of the Easy Preference Customs Tariffs Academy of Business Studies.

अमेरिका ने भारत की उपरोक्त टैरिफ दर को आर्थिक संबंध को और दृढता देने में बाधा बताया तथा इस उच्च दर को कम करने का आग्रह किया। अमेरिकी निवेश भारत को छोड़कर अन्य एशियाई देशों में ज्यादा हुआ है, इसका एक प्रमुख कारण वहाँ पर टैरिफ दरों का कम होना भी है। भारत के मुकाबले इन देशों में टैरिफ दरों की तुलनात्मक स्थिति इस प्रकार रही है।

तालिका 2.15

औसत टैरिफ दर

(प्रतिशत में)

अर्थ व्यवस्था	वर्ष				
	1988	1993	1996	1998	2000
चीन	39.5	37.5	23.0	17.0	16.4
हांगकांग	0.0	0.0	0.0	0.0	0.0
इण्डोनेशिया	18.1	17.0	13.1	11.9	11.9
कोरिया	19.2	11.6	7.9	7.9	7.9
मलेशिया	13.6	12.8	9.3	9.3	9.2
फिलीपींस	27.9	23.5	15.6	9.4	6.9
सिंगापुर	0.3	0.4	0.0	0.0	0.0
ताइवान	12.6	8.9	8.6	8.3	8.2
थाईलैण्ड	31.2	37.8	17.0	18.4	N.A.

Source : Manila Action Plan IAPs (1996, 1998, 2000) (APEC)

यदि हम उपरोक्त देशों को भारत की दरों के साथ सापेक्षिक वर्षो में तुलना करें तो भारत की टैरिफ तुलनात्मक रूप से बहुत ज्यादा है। अतः वर्ष 2000 में चीन में निवेश का मात्र 10 प्रतिशत भारत अपनी तरफ आकर्षित कर पाया। इन्हीं कारणों से भारत ने वर्ष 2000-01 के लिए टैरिफ की चार दरें 35 प्रतिशत, 25 प्रतिशत, 15 प्रतिशत व 5 प्रतिशत निर्धारित की। 2002 में भारतीय वित्त मंत्री ने यह स्पष्ट किया कि टैरिफ की उच्चतम दर को घटाकर तीन वर्षो में अधिकतम 20 प्रतिशत के स्तर पर लाया जाएगा। इस प्रकार 2004-05 तक भारत में टैरिफ की दो दरें 10 प्रतिशत व 20 प्रतिशत की होंगी। यह कदम भारत व अमेरिका के आर्थिक संबंधों को गति प्रदान करेंगे। यद्यपि यह दर भी अन्य देशों की तुलना में अधिक हैं।

इस प्रकार भारत का उदारीकरण भारत-अमेरिका आर्थिक संबंध की नींव

है। अमेरिकी दृष्टिकोण से इसमें सुधार की काफी संभावना है। खराब आधारभूत ढांचा, उच्च टैरिफ, श्रम कानून, उच्च ब्याज दर, अन्य अकारगर नीतियॉ, इस द्विपक्षीय संबंध को अपेक्षित स्तर तक नहीं पहुँचा पाई हैं। इसी के साथ-साथ भारत की भी अमेरिका के सन्दर्भ में आपत्तियां रही हैं, जिनमें प्रमुख मतभेद वाले मुद्दों का पूर्व में वर्णन हो चुका है। अमेरिका का कृषि पर सब्सिडी, टेक्सटाइल पर कोटा, श्रम व पर्यावरण मुद्दों को व्यापार में शामिल करना, पेटेंट व बौद्धिक सम्पदा कानून आदि पर रूख भारत के लिए आपत्ति का कारण बनता है परन्तु वर्तमान में जब आर्थिक हित महत्वपूर्ण है तथा सामरिक व राजनीतिक गतिरोध इस मार्ग में पहले जैसे महत्वपूर्ण नहीं हैं, दोनों देशों को अपने राष्ट्रीय हितों के परिप्रेक्ष्य में आर्थिक संबंधों को और गति देनी चाहिए।

(IV) सहयोग के नवीन क्षेत्र :

भारत-अमेरिका के आर्थिक परिदृश्य में परम्परागत क्षेत्र तो हैं ही, इसके साथ-साथ सहयोग के नए क्षेत्र भी खुल रहे हैं। जिससे द्विपक्षीय आर्थिक संबंधों को एक नई दिशा मिलने की संभावना है। भारत में आधारभूत ढ़ाँचे की हालत अच्छी नहीं है और यह कमी विदेशी निवेश मे बाधक भी बन रही है। अतः विद्युत, परिवहन, सडकें, संचार बंदरगाह आदि क्षेत्रो में सहयोग की अपार संभावना है।

इसके साथ ही साथ ज्ञान पर आधारित अर्थव्यवस्था का भारत-अमेरिका आर्थिक संबंधों को बढाने में महत्वपूर्ण योगदान होगा। इस क्षेत्र में प्रमुख तौर पर सूचना प्रौद्योगिकी का क्षेत्र है। यदि हम भारतीय साफ्टवेयर व हार्डवेयर निर्यात को देखे तो भारत का साफ्टवेयर निर्यात 1998-99 में 2.6 बिलियन डालर, 1999-2000 में 4.0 बिलियन डालर व 2000-2001 में 6.2 बिलियन डालर था तथा वर्ष 2008 तक का लक्ष्य कुल 80 बिलियन डालर के उत्पादन में से 50 बिलियन डालर का है।[1] नास्काम के आंकड़ों के अनुसार 2000-2001 में 6.2 बिलियन डालर के निर्यात में 6.2 प्रतिशत अमेरिका व कनाडा, 24 प्रतिशत यूरोप, 4 प्रतिशत जापान व 10 प्रतिशत शेष विश्व को हुआ। यद्यपि यह विश्व साफ्टवेयर उद्योग का करीब 0.5

प्रतिशत भाग है। 2008 तक अमेरिका को सूचना प्रौद्योगिकी निर्यात का लक्ष्य 30 बिलियन डालर रखा गया है। अतः भविष्य में अमेरिका को इसके निर्यात की प्रमुख भूमिका रहेगी। इसके साथ ही साथ भारत के साफ्टवेयर प्रोफेशनल अमेरिका में काफी ज्यादा है, जो वहाँ की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। ये भारतीय विशेषज्ञ अमेरिकी सूचना तकनीकी कम्पनियों की रीढ़ हैं। अतः उनके दबाव में अमेरिका को एच-1 बी वीजा का कोटा बढाना पडा है।

सूचना प्रौद्योगिकी के प्रयोग व सेवा से संबंद्ध क्षेत्र मेडिकल ट्रान्सक्रिप्सन सेंटर, कॉल सेटंर, दूरसंचार व इंटरनेट सेवा आदि हैं। ये क्षेत्र भी ज्ञान पर आधारित हैं तथा द्विपक्षीय आर्थिक संबंधों को गति व दिशा देने में सक्षम हैं। दोनों देशों के मध्य सहयोग का एक नया क्षेत्र मनोरंजन क्षेत्र भी है। भारत फिल्मों के निर्माण का विश्व का सबसे बड़ा केन्द्र है तथा अमेरिका मनोरंजन सेवाओं का विश्व का सबसे बड़ा निर्यातक। 1998 में अमेरिका ने 12 बिलियन डालर की मनोरंजन सेवाओं का निर्यात किया। यद्यपि दोनों देशों के बीच कोई साझा उद्यम नहीं है। इसमें सहयोग के दो क्षेत्र हैं पहला- भारत अमेरिकी फिल्म उद्योग के लिए निर्माण का सस्ता आधार दे सकता है, दूसरा- भारत अमेरिका को मनोरंजन साफ्टवेयर निर्यात कर सकता है।

सहयोग के नए क्षेत्रों में फार्मास्यूटिकल व बायोटेक्नालॉजी भी है। उत्पाद पेटेंट व्यवस्था के कारण नई दवाओं के खोज में साझा प्रयास भारत के लिए लाभकारी होगा। बायोटेक्नोलॉजी क्षेत्र में भी सहयोग की अपार सम्भावनाएं हैं। अमेरिका अपनी विशेषज्ञता व निवेश तथा भारत अपनी जनशक्ति का लाभ उठा सकता है। इसके साथ ही साथ शोध व विकास का क्षेत्र भी महत्वपूर्ण है। भारत के पास वैज्ञानिकों की विशाल संख्या है परन्तु विश्व स्तर की सुविधाओं के अभाव के कारण भारत अग्रिम पंक्ति का शोध नहीं कर पाता। यदि अमेरिकी कम्पनियां अपनी शोध व विकास (R&D) सुविधा का कुछ भाग भारत स्थानान्तरित कर दे, तो यह उन्हें सस्ता पड़ेगा।

---

1 Hindustan Times, New Delhi, 17 November 2001.

भारत ने अनेक क्षेत्रों को विदेशी निवेश के लिए खोला है तथा कई क्षेत्रों में निवेश की सीमा को बढ़ाया है। जिससे यह क्षेत्र आर्थिक संबंध को तीव्र करने में सहायक होंगे। आने वाले दिनों में पर्यटन, खनन, रिफायनरी, बीमा क्षेत्र, बैंकिंग व वित्तीय क्षेत्र, निर्माण, विद्युत, दूरसंचार, विमान सेवा क्षेत्र और प्रसारण प्रमुख क्षेत्र होंगे। जैसे-जैसे भारतीय अर्थव्यवस्था विकसित होगी और दूसरी पीढ़ी के सुधारों पर क्रियान्वयन होगा, द्विपक्षीय संबंधों में और दृढ़ता आयेगी।

आज विश्व परिदृश्य बदल चुका है। अब विश्व एकध्रुवीय हो गया है। जिससे दुनिया विचारधाराओं के आधार पर नहीं बँटी है। अमेरिका ने भारत के प्रति अपने पूर्वाग्रहों को कम किया है तथा एक सकारात्मक रूख अपनाया है। भारत को इस स्थिति का पूर्ण लाभ अपने राष्ट्रीय हितो में उठाना चाहिए। भारत का अमेरिका के साथ व्यापार, उद्योग, आधारभूत ढ़ॉचा, तकनीक और निवेश में सहयोग बहुत महत्वपूर्ण है और भारत के आर्थिक पुनर्गठन के इस दौर में इससे विमुख नहीं हुआ जा सकता।

आंकड़ों से स्पष्ट है कि अमेरिका भारत के आयात, निर्यात व निवेश के क्षेत्रों में शीर्ष सहयोगी रहा है। इसके साथ ही साथ अमेरिका भारत के विशाल बाजार की अनदेखी नहीं कर सकता। भारत का मध्यम वर्ग अमेरिका की कुल जनसंख्या के लगभग बराबर है। भारत के तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था व बाजार को अमेरिकी निर्यातक व निवेशक नजरअंदाज नहीं कर सकते। विश्व बैंक की वर्ष 2002 विश्व विकास रिपोर्ट के अनुसार क्रय शक्ति क्षमता की दृष्टि से भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की चौथी बड़ी अर्थव्यवस्था है। पहले, दूसरे व तीसरे स्थान पर क्रमशः संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन व जापान है।

भारत के तीन मुख्य व्यापार सहयोगी अमेरिका, जापान व यूरोपीय संघ हैं। भारत अपने विशाल बाजार व अर्थव्यवस्था के कारण सभी के लिए महत्वपूर्ण है। अमेरिका किसी पूर्वाग्रह के कारण अन्य देशों के लिए स्थान खाली नहीं करना चाहेगा। भारत पर अमेरिकी प्रतिबंधों के दौरान अमेरिका को भारत से ज्यादा आर्थिक नुकसान उठाना पड़ा तथा भारत में व्यापार की संभावनाओं को अन्य देशों ने हथिया लिया। इस बात को अमेरिकी मीडिया व कांग्रेस सदस्यों ने भी माना।

वर्तमान में विश्व मंच पर कई आर्थिक समूह शक्तिशाली बनकर उभर रहे हैं। जो अमेरिका को आर्थिक जगत् में संभावित कडी प्रतिद्वन्दिता दे सकते हैं। अतः अमेरिका ने भी समूचे अमेरिकी क्षेत्र (क्यूबा के अतिरिक्त) में अमेरिकी स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र (FTAA) की 2005 तक गठन की सहमति व्यक्त की है।

यूरोपीय संघ तथा अब यूरो के चलन के बाद बने यूरोलैण्ड ने अमेरिका को आर्थिक जगत् में अच्छी प्रतिद्वन्दिता देने की संभावना दर्शायी है। इस संदर्भ में भारत के साथ उसके संबंध भी महत्वपूर्ण है। यूरोपीय संघ भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक साझीदार है। भारत के कुल व्यापार का 22 प्रतिशत उसके साथ होता है। 2000-01 के दौरान भारत का निर्यात उसके साथ 11 प्रतिशत बढ़ा व आयात 6 प्रतिशत कम हुआ।[1] यूरोपीय संघ के कुल आयात में भारत का अंश 1 प्रतिशत है। अतः व्यापारिक सहयोग की काफी संभावनाएं है। उदारीकरण के बाद भारत में यूरोपीय संघ के 15 बिलियन डालर के विदेशी प्रत्यक्ष निवेश का अनुमोदन हो चुका है। यूरो के चलन के बाद यूरोलैण्ड में 370 मिलियन जनसंख्या है, जो भारत के लिए सबसे बड़ा संभावित बाजार है।

भारत के लिए व्यापार के अन्य क्षेत्र भी आकर्षक है। भारत के अन्य प्रमुख व्यापार साझीदार देश जापान व जर्मनी भी एक प्रमुख आर्थिक शक्ति के रूप में उभर रहे हैं तथा भारत के साथ इनके सहयोग की पर्याप्त संभावनाएं हैं। यदि अमेरिका ने भारत के साथ आर्थिक सहयोग में शिथिलता दिखाई, तो विशाल भारतीय बाजार व व्यापार पर इन देशों की पकड़ हो जाएगी, जो अमेरिका के आर्थिक हितों के विरुद्ध होगी।

इसके साथ ही साथ भारत ने अन्य व्यापारिक क्षेत्रों में प्रवेश की नीति अपनाई है इसके तहत वह अफ्रीका, लैटिन अमेरिका में अपने लिए संभावना तलाश रहा है। एशियान में भी पूर्ण सदस्य के रूप में प्रवेश की संभावना है। यह सब भारत के व्यापार को बढ़ाने व वैकल्पिक मार्ग में सहायक होंगे। जिससे भारत की

---

1 Source : Department of Commerce, India

अमेरिका पर निर्भरता कम होगी। अतः भारत को गंभीरता से लेने का अमेरिका पर दबाव पडेगा। अमेरिका का भारत के साथ टैरिफ व गैर टैरिफ मुद्दों पर मतभेद है और वह इन्हें विश्व आर्थिक मंचों पर उठा कर भारत व अन्य विकासशील देशों पर दबाव बनाता है परन्तु इनका द्विपक्षीय व्यापार पर कोई गहरा प्रभाव नहीं पडना चाहिए क्योंकि अमेरिका को अपने आर्थिक हितो की अच्छी समझ है। वर्तमान समय में गैर टैरिफ मुद्दों के साथ-साथ राजनीतिक व सामरिक मुद्दों पर भी काफी मतभेदों के बावजूद अच्छे आर्थिक संबंध का उदाहरण अमेरिका, चीन संबंध है। इन मतभेदों के बावजूद चीन, अमेरिका का सबसे बडा व्यापारिक साझीदार बना हुआ है।

भारत ने अपने आर्थिक सुधारों द्वारा अमेरिका की बहुत सी आपत्तियों का निराकरण किया है। जो द्विपक्षीय आर्थिक संबंधों के लिए उत्प्रेरक है। भारत के लिए अमेरिकी बाजार बहुत प्रतिस्पर्द्धात्मक है जो भारतीय निर्यातकों को उनके तकनीकी कौशल बढ़ाने, आक्रामक मार्केटिंग, व उत्पाद की उच्च गुणवत्ता की माँग करता है। कुछ गैर टैरिफ बाधाओं के बावजूद अमेरिकी बाजार में भारतीय शेयरों का अंश बढ़ने की संभावना है। इसी को देखते हुए भारत ने पाँच साल की मध्यकालीन निर्यात योजना 2000-2005 शुरू की है।

अतः यह कहा जा सकता है। कि भारत व अमेरिका के आर्थिक संबंधों की प्रगाढ़ता की पूर्ण संभावना है। दोनों ही राष्ट्रों को अपने राष्ट्रीय हितों को देखते हुए सहयोग के क्षेत्रों के विकास करने की आवश्यकता है। जो भविष्य के द्विपक्षीय आर्थिक संबंध की नींव साबित होंगे। जिसमें भारत के उदारीकरण कार्यक्रम व आर्थिक कूटनीति की महत्वपूर्ण भूमिका होगी।

तृतीय अध्याय
भारत-अमेरिका संबंध :
प्रमुख राजनीतिक मुद्दे

भारत-अमेरिका संबंध : प्रमुख राजनीतिक मुद्दे

भारत की स्वतंत्रता के साथ ही भारत अमेरिका संबंध पूरे विश्व की तरह ही सोवियत कारक से प्रभावित रहे। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व राजनीतिक मंच पर उभरे दो शक्तिशाली केन्द्रों की ओर खिंचे चले जा रहे राष्ट्रों के परिदृश्य के बीच भारत ने अपने को स्थिर रखते हुए गुटनिरपेक्ष नीति के अनुपालन का निर्णय किया तथा आर्थिक, राजनीतिक व सामरिक आवश्यकताओं की भिन्नता के कारण भारत व अमेरिका के बीच संदेह व मतभेद की स्थिति बनी रही।

भारत व अमेरिका के बीच एक गंभीर मतभेद शान्ति व सुरक्षा के विचार के आकलन व सिद्धान्त पर रहा, जिसने राजनीतिक मुद्दों पर मतभेद को बढ़या। नेहरू कालीन भारत का विश्वास था कि शान्ति मुख्य सामरिक लक्ष्य है और सुरक्षा प्राकृतिक रूप से शान्ति का अनुसरण करती है, जबकि अमेरिकी विचार इससे भिन्न था। अमेरिका ने भारत के शान्ति से सुरक्षा को पाने के विचार को हठपूर्ण मानते हुए, सुरक्षा को महत्वपूर्ण लक्ष्य माना जो शान्ति स्थापित करने में सहायक है।

दो देशों के आपसी सम्बन्धों को समझने व उसके विश्लेषण में राजनीतिक पक्ष, बहुत महत्वपूर्ण व सहायक तत्व होते हैं। राजनीतिक कारकों ने भारत-अमेरिका सम्बन्धों को दिशा देने व अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर उनकी भूमिका निर्धारित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारत की स्वतंत्रता से नई शताब्दी की शुरूआत तक ऐसे अनेक मुद्दे आए, जिसने भारत व अमेरिका के बीच सहयोग व मतभेद तथा उतार व चढाव के दौर को बनाए रखा।

पूरे शीत युद्ध काल के दौरान अमेरिकी विदेश नीति का प्रमुख लक्ष्य साम्यवाद व सोवियत संघ का परिसीमन रहा। जिससे इस काल में भारत व अमेरिकी संबंधो में सोवियत कारक महत्वपूर्ण बना रहा। शीत युद्ध के अंत के बाद उभरी नई परिस्थितियों ने विश्व राजनीतिक परिदृश्य को बदल दिया जिससे कुछ नए राजनीतिक मुद्दे उभरे तथा पुराने मुद्दों ने नया रूप धारण किया। भारत-अमेरिका संबंध की भावी दिशा व वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार उसके अनुकूलन के विश्लेषण के लिए प्रमुख राजनीतिक मुद्दों का संज्ञान आवश्यक है।

(I) गुटनिरपेक्षता व उपनिवेशवादः

आधुनिक राष्ट्रों के संबंधों का विश्लेषण उनकी लालसा व हितों के सन्दर्भ में ही सुचारू रूप से संभव है। यह राष्ट्रीय हित कभी स्थिर नहीं रहते हैं। दो राष्ट्रों के संबंधों के स्वरूप की पहचान कुछ प्रमुख कारकों के आधार पर की जाती है जो उनके आपसी संवाद के स्तर के निर्धारण में सहभागी होते हैं।

संयुक्त राज्य अमेरिका के सार्वभौमिक हित हैं तथा उसके पास विदेश नीति के लक्ष्यों को पाने के लिए पर्याप्त आर्थिक, राजनीतिक व सैन्य शक्ति है। अमेरिका अपने मित्रों के साथ सैन्य गठबंधन कर अपने सार्वभौमिक विदेश नीति के लक्ष्यों को पाने का प्रयास करता है तथा अपने विशाल व सशक्त आर्थिक शक्ति द्वारा मित्रों व सहयोगियों को प्रभावित करता है। अपनी सार्वभौमिक विदेश नीति के अनुपालन में अपनी विशाल सैन्य व आर्थिक शक्ति के प्रयोग में अमेरिका ने संकोच नहीं किया है। इसका विश्व के कुछ भागों विशेषकर तृतीय विश्व के कुछ नव स्वतंत्र राष्ट्रों द्वारा विरोध हुआ। जिनमें भारत प्रमुख रहा, जो अमेरिका की सैन्य व आर्थिक शक्ति के प्रभाव में आने के प्रति सजग रहा है।

भारत के राष्ट्रवाद और अमेरिका के वैश्वीकरण में टकराव भारत अमेरिका के बीच मतभेद का प्रमुख कारण रहा है। ब्रिटेन से स्वतंत्रता के संघर्ष ने भारत की नीतियों के स्वरूप को निर्धारित किया। भारतीय नेतृत्व ने अपने स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान विश्व के अन्य भागों में चल रहे स्वतंत्रता संघर्ष का भी संज्ञान लिया तथा उसके प्रति सजग रहा। अतः स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने अन्य राष्ट्रों के स्वतंत्रता के विषय व नव स्वतंत्र राष्ट्रों के हितों के प्रति अपने सहयोग व समर्थन को हमेशा व्यक्त किया तथा उनके व स्वयं के राष्ट्रीय हित के प्रति सचेत रहा। अतः उसने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की परिस्थिति में शीत युद्ध के विवादों से अपने को अलग रखकर तथा अपनी ही जैसी स्थिति में अवस्थित देशों की संगति में, अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के हित में गुटनिरपेक्ष नीति का अनुसरण किया।

भारत में गुटनिरपेक्ष नीति के संबंध में स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले ही एक दृष्टिकोण विकसित हो रहा था। 1939 में हरिपुर में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी ने

एक प्रस्ताव पास किया। जिसके अनुसार भारत को सभी देशों के साथ मित्रवत व सहयोगात्मक संबंध बनाने व सैन्य या इस प्रकार के किसी और गठबंधन, जो विश्व को दो विरोधात्मक गुट में बॉटे व विश्व शान्ति के लिए खतरा हो, से बचने की बात की गई।[1] द्वितीय विश्व युद्व की समाप्ति के बाद स्वतंत्रता के मुहाने पर खड़े भारत की गुटनिरपेक्ष नीति के संबंध में नेहरू जी ने 7 सितम्बर 1946 को कहा कि हम यह प्रस्तावित करते है कि जहॉ तक संभव हो गुटों की शक्ति राजनीति व एक दूसरे के विरूद्ध गठजोड से दूर रहा जाए। जिसने पूर्व में विश्व युद्ध की ओर धकेला और जो फिर से विशाल स्तर के विनाश की ओर अग्रसर हो सकती है।[2]

भारत की इस नीति को अमेरिका ने शंका की दृष्टि से देखा। जबकि अमेरिका ने अपनी स्वतंत्रता से लेकर द्वितीय विश्वयुद्ध तक अलगाव की नीति को ही अपनाया था। अमेरिका की प्रारम्भिक नीति की व्याख्या करते हुए 17 सितम्बर 1776 को राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटन ने कहा था कि-

विदेशी राष्ट्रों के सम्बन्ध में हमारे आचरण का प्रमुख नियम यह है कि अपने व्यापारिक सम्बन्धों को बढ़ाते हुए हम इनसे जहॉ तक सम्भव हो, कम से कम राजनीतिक संबंध रखे।

हमारी सच्ची नीति यह है कि विदेश के किसी भी भाग से स्थायी मैत्री सन्धियों से बचें।[3]

पं० जवाहर लाल नेहरू ने इससे प्रेरणा ली और 17 मार्च 1950 को लोकसभा में कहा कि-

''150 वर्ष पहले पश्चिमी जगत विभिन्न प्रकार के साम्राज्यवादी और क्रान्तिकारी युद्धों के कारण विघटित हो रहा था। ब्रिटिश साम्राज्य से पृथक होकर स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका स्वाभाविक रूप से इन परिवर्तनों से प्रभावित हुआ, फिर भी विशेष देशों के साथ सहानुभूति होने पर भी

1 Quoted in Jasjit Singh, conflict prevention and Management: The Indian way, in jasjit Singh ed,, Asian Stragegic Review 1995-96, N. Delhi, IDSA, 1996, P-12

2 Jawaharlal Nehru, India's Foreign Policy: Selected Speeches, september 1946-April 1961, Bombay, Asia Publishing House, 1966, P-2-3

3 P.D. Kaushik, Changing contours of Non-Aligenment in Pragya the Journal of B.H.U. Vol 29 No. 2 and Vol 30. No.1, 1984, P- 10.

उसने यूरोप की अराजक स्थिति में लिप्त होने से अपने को बचाये रखाए क्योंकि उस अवस्था में उसके लिए यही स्वाभाविक था। यह उदाहरण यद्यपि आजकल की परिस्थितियों में सर्वथा उपयुक्त नहीं है, फिर भी इसका बड़ा महत्व है।.......... नवीन स्वतंत्रता और स्वाधीनता प्राप्त किए देश के लिए अनुसरण की जाने वाली यही स्वाभाविक नीति है।[1]

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद बदले हुए राष्ट्रीय हितों के परिपेक्ष्य में अमेरिका के लिए सक्रिय विदेश नीति आवश्यक थी, तब तक उसने अपने को आर्थिक व सैन्य रूप से सुदृढ कर लिया था। यह स्थिति भारत के साथ न थी उसे अपने सर्वागीण विकास के लिए सभी से सहयोग की अपेक्षा थी। इसके साथ ही साथ भारत का औपनिवेशिक दासता का अतीत उसे किसी गुट से जुड़ने में बाधा उत्पन्न करता था। पं० जवाहर लाल नेहरू जी ने भारत की राष्ट्रीय मनोभावना को विदेश नीति में व्यक्त करते हुए कहा था कि- गुटनिरपेक्षता हमारी नीतियों के एक पहलू को प्रदर्शित करती है। हमारे पास दूसरे सकारात्मक लक्ष्य भी है जैसे : उपनिवेशिक शासन से स्वतंत्रता प्राप्ति, नस्लवाद की समाप्ति, शान्ति और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग आदि, किन्तु गुट निरपेक्षता सभी देशों के साथ मित्रवत नीति का सारांश है।[2]

अमेरिका के नीति नियन्ताओं ने भारत की इस नीति को अनैतिक माना, क्योंकि अब तक उनकी विदेश नीति के लक्ष्य बदल चुके थे। उन्होंने विश्व राजनीति को प्रभावित करने की शक्ति प्राप्त कर ली थी। अतः अमेरिका के लिए अलगाव नीति को अपनाना लाभदायक न था। भारत में यह विश्वास किया गया कि अमेरिका या सोवियत गुट के साथ भारत की संलग्नता अन्तर्राष्ट्रीय तनाव को बढ़ा सकती थी। नेहरू जी ने 1949 में कहा भी था कि यदि किसी कारण से हमें एक शक्ति गुट में शामिल होना ही पड़ता है तो शायद एक दृष्टिकोण से हम कुछ भला ही करेंगे, पर मुझको इसमें कोई भी शंका नहीं लगती कि एक विशाल दृष्टिकोण से ऐसा करना न केवल भारत के लिए बल्कि विश्व शांति के लिए हानिकारक होगा। भारत की तत्कालीन परिस्थितियों, देश के आकार, भौगौलिक और सामाजिक महत्व

1 P.D. Kaushik, Changing contours of Non-Aligenment in Pragya the Journal of B.H.U. Vol 29 No. 2 and Vol 30, No.1, 1984, P-10.
2 Jawaharlal Nehru's speeches, September 1957 April 1963, Volume IV, Publications Division, 1964,, P- 407

व राजनीतिक विवादों से बचाव व स्थिरता के लिए गुटनिरपेक्ष नीति भारत का एक सुविचारित कदम था।

गुटनिरपेक्षता का सिद्धान्त भारत का प्रत्युतर था, जो उपनिवेशवाद से बाहर निकलकर शीत युद्ध के दबाव को रोकना चाहता था। यह उपनिवेशवाद के उन्मूलन के लिए, अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा के लिए और एक ऐसी सम्पूर्ण विश्व व्यवस्था के लिए एक लोकतांन्त्रिक देश की वचनबद्धता थी, जहॉ पर न कोई शोषण हो, न नस्लवाद हो और जहॉ सभी स्वाधीन हुए लोगों को एक समान अवसर मिले। भारत की इस नीति पर उस भावनात्मक और वैचारिक कारणों का प्रभाव था, जिसके अनुसार पश्चिमी गुट में अनेक देश उपनिवेशवादी शक्ति थे या रह चुके थे। जिनमें से कुछ अब भी नस्लवादी भेद-भाव का व्यवहार कर रहे थे। दूसरी ओर भारत सोवियत गुट में भी शामिल नहीं हो सकता था क्योंकि साम्यवाद की विचारधारा भारत को कभी स्वीकार्य न थी। यद्यपि भारतीय नेतृत्व समाजवाद की भावना से प्रभावित था, जो समाज के सभी वर्गो के समग्र विकास की विचारधारा थी। नेहरू ने लोकतांत्रिक समाजवाद और मिली-जुली अर्थव्यवस्था की नीति का अनुसरण किया जिसके मूल में पूँजीवादी और साम्यवादी दोनो देशों से सहायता प्राप्त करना था।

भारत के औपनिवेशिक अतीत ने भारत की गुटनिरपेक्षता के लिए स्वतंत्रता से पूर्व ही आधार बनाना शुरू कर दिया था। द्वितीय विश्व युद्ध के समय उभरे फासीवाद की उपनिवेशवाद से तुलना करते हुए नेहरू जी ने कहा था कि यदि हम पश्चिमी उपनिवेशवाद व फासीवाद का विश्लेषण करे तो हम इस नतीजे पर पहुँचते है कि यह दोनों एक ही राजनीतिक बीमारी के पूरक थे (जिसे उन्होंने 'ब्लैक रिएक्शन' नाम दिया) तथा इनका उद्देश्य था कि न केवल सोवियत संघ बल्कि हर जगह उदारवादी व सुधारवादी संस्थाओं को समाप्त कर दिया जाय या उन पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया जाय। इसी प्रकार 16 जून 1948 को 'इण्डिया लीग' और 'लंदन फेडरेशन ऑफ पीस काउन्सिल' द्वारा आयोजित 'शांति और साम्राज्य' गोष्ठी में नेहरू ने कहा कि-मैं अनुभूति करता हूँ कि आप फासीवाद और साम्राज्यवाद नामक विचारों को अलग-अलग नहीं कर सकते और यह फासीवाद वास्तव में

साम्राज्यवाद नामक व्यवस्था का ही विकसित व उग्र रूप है। अतः यदि आप फासीवाद को रोकना चाहते है तो आपको अनिवार्य रूप से साम्राज्यवाद की भी रोकथाम करनी होगी।[1]

1939 में कांग्रेस वर्किंग कमेटी द्वारा द्वितीय विश्व युद्ध के समय जारी एक कथन में कहा गया था कि यदि युद्ध साम्राज्यवादी अधिकार, उपनिवेश तथा पूर्व के हित व लाभों की यथा-स्थिति बनाए रखना चाहता है, तब भारत इसका साथ नहीं दें सकता। यदि मुद्दा लोकतंत्र व लोकतंत्र पर आधारित विश्व व्यवस्था है तब भारत इसमें इच्छुक है। ....एक स्वतंत्र लोकतांत्रिक भारत आर्थिक सहयोग व आक्रमण के विरूद्ध संयुक्त सुरक्षा पर दूसरे स्वतंत्र देशों के साथ प्रसन्नतापूर्वक सहयोग करेगा।[2] उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि स्वतंत्रता से पूर्व ही औपनिवेशिक अतीत के कारण भारत शोषण व भेदभाव के विरूद्ध था तथा विकास में सबका सहयोग चाहता था।

1944 में नेहरू जी ने विश्व की दो शक्तियों सोवियत संघ व संयुक्त राज्य अमेरिका को पहचानते हुए कहा कि भविष्य में संयुक्त राज्य अमेरिका व सोवियत संघ प्रमुख भूमिका का निर्वहन करेंगे। वे एक दूसरे से उतना ही भिन्न है जितना कोई भी दो विकसित देश हो सकते है। एक राजनीतिक लोकतंत्र की बुराइयाँ अमेरिका में प्रकट रूप में है और राजनीतिक लोकतंत्र के अभाव की बुराइयाँ सोवियत संघ में विद्यमान है। इसके साथ साथ उनमें बहुत कुछ समानता भी है।[3] जो समानताएँ उन्होंने देखी, वे थी-एक गतिशील दृष्टिकोण और विशाल स्रोत, सामाजिक खुलापन और विज्ञान व शिक्षा में विश्वास। इसके बावजूद अमेरिका के प्रति चिन्तित होने का कारण विश्व युद्ध की समाप्ति के समय तक अमेरिकी शक्ति की अति प्रबलता थी।[4]

इस प्रकार भारतीय नेतृत्व के मन में विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद के परिदृश्य उभर रहे थे। जो गुटनिरपेक्ष नीति के अनुपालन में सहायक थे। दूसरी

---

1 Jawaharlal Nehru, The Unity of India : Callected Writings, London : Lindsay Drummond. 1941, P-269

2 Dorothy Narman, Nehru- The first sixty years.

3 Jawahar Lal Nehru, Discovery of India, P-265

4 Ibid.

तरफ अमेरिका ने गुटनिरपेक्ष नीति को अविश्वास के साथ देखा। 'सेक्रेटरी ऑफ स्टेट', जॉन फास्टर डलेस द्वारा इसे 'अनैतिक नीति' का नाम दिया गया क्योंकि अमेरिकी विदेश नीति का लक्ष्य अमेरिकी प्रभुत्व को बनाए रखना था। अतः इस मुद्दे पर अमेरिका का सहयोग न करने वाला राष्ट्र, अमेरिका से एक सुदृढ़ दोस्ताना संबंध की आशा न कर सकता था। अमेरिका मुख्यतः बाजार अर्थव्यवस्था व मुक्त व्यापार का हिमायती था। यह आर्थिक नीतियॉ भारत और अमेरिका के बीच किसी अर्थपूर्ण आर्थिक व व्यापारिक गठजोड़ में बाधक थी।

शीत युद्ध में उलझे अमेरिका और गुटनिरपेक्ष नीति को अपनाए भारत के बीच किसी प्रमुख आर्थिक हित की समानता की कमी से, यह दोनों लोकतांत्रिक राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर राजनीतिक सहयोग का बहुत लाभ न ले सके। भारत की स्वतंत्रता के बाद चीन नीति, कोरिया युद्ध, इण्डोनेशिया में डच सैन्य कार्यवाही, इण्डो चीन संकट, हंगरी संकट आदि पर भारत अमेरिका के बीच मतभेद रहे। जिसका कारण दोनों राष्ट्रों द्वारा घटना के मूल्यांकन के अलग-अलग तरीके रहे। दोनों देशों के बीच राजनीतिक विभाजन के प्रमुख कारकों में से एक कारक उपनिवेशवाद उन्मूलन भी रहा।[1]

भारत गुटनिरपेक्ष नीति के कारण उपनिवेशवाद उन्मूलन मुद्दे पर अग्रणी प्रवक्ता रहा। इण्डोनेशिया में डचों द्वारा औपनिवेशिक शासन की पुनर्स्थापना व इण्डोचीन में फ्रांस की इसी तरह की कार्यवाही को अमेरिकी समर्थन ने भारत को सशंकित किया। इस अमेरिकी कदम ने भारत के साथ उसके संबंध में संशय को और उग्र किया तथा भारत व तीसरी दुनिया के देशों में अमेरिकी नीति को साम्राज्यवाद की ओर झुकाव वाली तथा एशियाई देशों के मूल्य पर पश्चिमी साम्राज्यवाद के समर्थन वाली माना गया।[2] उपनिवेशवाद उन्मूलन का यह मुद्दा भारत व अमेरिका के बीच तब और उग्र हुआ, जब भारत ने 1961 में पुर्तगाल से गोवा को मुक्त कराने के लिए सैन्य बल का प्रयोग किया। 1950 के दशक के शुरुआत में फ्रांस से भिन्न रूख रखते हुए पुर्तगाल ने अपने अधिकार वाले क्षेत्रों को

---

1 M.S. Venkataramani and B.K. Srivastava , Rousvelt, Gandhi and churchill, N. Delhi, Radiant, 1983

2 W. Norman Brown, The United States and India and Pakistan, USA: Oxford University Press, Second edition 1967, P-368-69

मुक्त करने के संबंध में हठी रवैया अपनाया। 1950 के दशक के मध्य में भारत में सत्याग्रह के आधार पर गोवा पर शान्तिपूर्ण विजय की बात हुई परन्तु नेहरू जी ने इसे न माना और पुर्तगाल द्वारा बातचीत से इंकार करने पर लिस्बन को दिल्ली में अपना दूतावास बंद करने को कहा।[1]

भारत व पुर्तगाल के बीच इस असहमति के बीच अमेरिका के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट जॉन फास्टर डलेस और पुर्तगाली विदेशमंत्री क्यून्हा (Cunha) ने दिसम्बर 1955 में एक औपचारिक वक्तव्य दिया कि भारत में पुर्तगाली अधिकार क्षेत्र पुर्तगाल का एक प्रान्त है। अमेरिका के इस रूख ने भारत व अमेरिका के बीच कडुवाहट घोली।[2] इसके बाद जब 1961 में पुर्तगाली किले से भारतीय जहाज पर आक्रमण किया गया, तब नेहरू जी ने गोवा को मुक्त कराने के लिए सेना भेजी।[3] भारत की इस कार्यवाही के दो दिन पूर्व अमेरिकी राजदूत गालब्रेथ ने यह जाना था कि अंडर सेक्रेटरी ऑफ स्टेट जॉर्ज बाल और राजनीतिक संबंध के अंडर सेक्रेटरी जॉर्ज मैकही (McGhee) ने वाशिंगटन में भारतीय राजदूत बी०के० नेहरू से सैन्य कार्यवाही टालने के लिए एक योजना प्रस्तावित की है। इसके अनुसार यदि भारत गोवा के लिए अपनी योजना को छः माह तक टाल दे तो संयुक्त राज्य अमेरिका पुर्तगाल पर स्वैच्छिक रूप से गोवा छोडने का कूटनीतिक दबाव डालेगा।[4] गालब्रेथ ने नेहरू से इस योजना को स्वीकार करने के लिए कहा, मगर रक्षा मंत्री कृष्ण मेनन के अनुसार अब तक बहुत देर हो चुकी थी चूँकि भारतीय सेना पहले ही प्रस्थान कर चुकी थी।[5]

भारत के लिए गोवा में पुर्तगाली उपस्थिति उसकी एकता व क्षेत्रीय अखण्डता के लिए अपमानजनक थी। यह उसके लिए एक औपनिवेशिक प्रश्न था। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने भी गोवा को पुर्तगाली प्रांत मानने के पुर्तगाली दावे को अस्वीकार कर दिया था परन्तु अमेरिका पुर्तगाल के 'नाटो' के साथ संबंध के कारण

---

1 W. Norman Brown, The United States and India and Pakistan, USA: Oxford University Press, Second edition 1967, P-327-28

2 Ibid.

3 Ibid P-329.

4 John Kenneth Galbraith, Ambassador's Journal, Boston : Houghton Mifflin, 1971, P-247

5 Sarvapalli Gopal, Jawaharlal Nehru : A Bigography, Vol-3 1956-1964, London : Jonathan Cape, 1984, P-198

उसका समर्थन कर रहा था। इस अमेरिकी दृष्टिकोण के कारण द्विपक्षीय सम्बन्धों को हुए नुकसान की भरपाई के लिए राष्ट्रपति कैनेडी ने नेहरू जी को पत्र लिखा कि उपनिवेशवाद के मुद्दे पर मेरी संवेदना आपके साथ है।[1]

यदि हम गुटनिरपेक्ष नीति का विश्लेषण करें तो पायेंगे कि नेहरूकालीन भारत ने इसे एक आदर्शवाद के रूप में अपनाया था। जो किसी भी गुट का सदस्य न होने, किसी द्विपक्षीय संधि में सहभागी न होने तथा सह अस्तित्व व उपनिवेशवाद विरोध के रूप में थी। इसके साथ ही साथ भारत द्वारा तीसरे विश्व के देशों का नेतृत्व करने की इच्छा भी अप्रत्यक्ष रूप से काफी प्रबल थी। गुटनिरपेक्षता एक विदेश नीति से विकसित होती हुई, 1955 के बॉडुंग सम्मेलन से 1961 के बेलग्रेड सम्मेलन में औपचारिक रूप से गुटनिरपेक्ष आंदोलन में बदल गयी।

अपने इस आदर्श को तटस्थता से अलग करते हुए नेहरू जी ने कहा था कि "जहॉ स्वाधीनता संकट में हो, न्याय खतरे में हो, आक्रमण की घटना हुई हो, वहॉ हम न तटस्थ रह सकते है और न तटस्थ रहेंगे।[2] अर्थात अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर क्रियाशीलता बनी रहेगी। सैद्धान्तिक रूप में यह कहा गया कि यह नीति व आन्दोलन गुटीय राजनीति का विरोध करता है और यह स्वयं में कोई गुट नहीं है परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में क्रियाशीलता यथार्थ के धरातल पर किसी न किसी गुट से संबंद्ध करती है चाहे वह पश्चिमी गुट हो या साम्यवादी गुट या तीसरे विश्व के गुटनिरपेक्ष नीति अपनाने वाले देश हो। इसी कारण से गुटनिरपेक्षता को अमेरिका ने एक समयातीत विचारधारा बताया, जो बहुत ही अपवादात्मक परिस्थितियों को छोड़कर एक अनैतिक और अदूरदर्शी विचारधारा है तथा गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों को सोवियत विस्तारवाद का प्रच्छन्न समर्थक माना। इसी प्रकार सोवियत संघ ने भी गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों को 'राष्ट्रीय बुर्जुआ' 'पूँजीवादी देशों के एजेन्ट' तथा 'पूँजीवादी देशों के पालतू कुत्ते' कहकर भर्त्सना की। भारत की गुटनिरपेक्षता के प्रति प्रतिबद्वता दोनों महाशक्तियों की नजर में गुट सापेक्षता थी, जो तीसरे विश्व के देशों के गुट के प्रति थी। सैद्धान्तिक रूप में ऐसे किसी गुट की

---

1 Jane S. wilson The Kennedy Administration and India, in Harold A Gould and Sumit Ganguly, edited, The Hope and the Reality, Boulder, San Francisco westview press, 1992 P.-50

2 Jawahar Lal Nehru, Independence and after : Nehru's speech 1945 to 1953, P-125

उपस्थिति से यह आन्दोलन इंकार करता था परन्तु व्यवहारिक रूप से इसकी उपस्थिति थी, जो धीरे-धीरे दबाव गुट में बदल गई।

भारत की गुटनिरपेक्ष नीति थोडी अस्पष्ट रही, जो कभी पूँजीवादी देशों तो कभी साम्यवादी देशों की तरफ झुकाव दर्शाती रही। नेहरू काल में इसके प्रति आदर्श भाव इंदिरा गाँधी के काल तक व्यावहारिक रूप ले चुका था और 1971 का भारत-सोवियत संघ मैत्री समझौता इसका उदाहरण है। यदि हम शीत युद्ध के दौरान भारत-अमेरिका संबंध को देखे तो भारत को आर्थिक व तकनीकी सहायता सबसे ज्यादा अमेरिका से ही मिली, यद्यपि बाद में भारत सैन्य उपकरणों के लिए सोवियत संघ पर निर्भर हुआ। भारत के अपने पड़ोसियों से युद्ध के समय भी गुटनिरपेक्ष आन्दोलन अपनी कोई भूमिका न निभा सका और भारत को इसमें सहायता इन महाशक्तियों से ही मिली। भारत को कश्मीर समस्या, आतंकवाद, गैट, डब्लू०टी०ओ० आदि में भी इससे अपेक्षित सहयोग न मिला। अतः गुटनिरपेक्षता भारतीय राष्ट्रीय हितों के पूर्ण संवर्द्धन में सहायक न रही यद्यपि इसके द्वारा उसने अपनी एक स्वतंत्र छवि बनाए रखी। इसके कारण ही शीत युद्ध काल तक भारत अमेरिका संबंधों में अपेक्षाकृत गर्माहट न आ सकी। अतः शीत काल के दौरान भारत न तो गुटनिरपेक्ष आन्दोलन से अपने हितों का पूर्ण क्रियान्वयन करा सका और न ही किसी गुट से सम्बद्ध हो सका।

शीत युद्ध के अंत के साथ ही विचारधाराओं के टकराव वाली स्थिति का अंत हुआ और विश्व परिदृश्य में आर्थिक घटक महत्वपूर्ण हो गया, जिससे गुटनिरपेक्षता की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिन्ह खड़ा हो गया। विचारधाराओं के टकराव के अंत के साथ ही यह आन्दोलन एक दबाव गुट के रूप में मुख्य रूप से रह गया है और भारत की इसमें भागीदारी विकसित देशों पर आर्थिक जगत में दबाव डालने के रूप में ही विशेष रूप से रह जाती है। सामरिक दृष्टिकोण से इस आन्दोलन का महत्व समाप्त होने से अब यह भारत अमेरिका संबंध में कोई प्रभावी कारक नहीं है। इसका एक कारण भारत की विदेश नीति में व्यावहारिक दृष्टिकोण की प्रमुखता बढ़ना भी है।

इस प्रकार गुटनिरपेक्षता व उपनिवेशवाद का प्रश्न भारत-अमेरिका संबंध की

दिशा तय करने में प्रमुख रहा। कुछ और भी ज्वलंत राजनीतिक मुद्दे है जिन्होंने शीत युद्ध के काल में अपनी प्रमुखता बनाए रखी और जो शीत युद्ध के उपरांत भी द्विपक्षीय संबंधों को एक नया आयाम देने में सक्षम है, जैसे-कश्मीर समस्या, पाकिस्तानी कारक, चीनी कारक, आतंकवाद, शस्त्र हस्तान्तरण व आणविक मुद्दा आदि।

(II) कश्मीर समस्या :

कश्मीर भारत की स्वतंत्रता के पूर्व से ही अपनी भौगोलिक व सामरिक स्थिति के कारण महत्वपूर्ण रहा है। भारत की स्वतंत्रता के बाद वैसे तो यह भारत व पाकिस्तान की प्रमुख समस्या है परन्तु इसने भारत-अमेरिका संबंधों पर भी गहरा प्रभाव डाला है तथा यह हाल के वर्षो में और भी ज्वलन्त रूप में सामने आयी है। डेनिस कक्स (Kux) के अनुसार शीत युद्ध, डालर कूटनीति व उपनिवेशवाद उन्मूलन, स्वतंत्र भारत व संयुक्त राज्य अमेरिका के बीच पहले व प्रमुख द्विपक्षीय मतभेद का कारण नहीं थे। पहला प्रमुख मतभेद जम्मू-कश्मीर रियासत के विवाद के ऊपर हुआ यह विवाद विभाजन की अपूर्णता के कारण था।[1]

कक्स (Kux) ने कश्मीर के प्रश्न को भारत व अमेरिका के बीच प्रथम मुख्य राजनीतिक मुद्दा कहा, जो एक हद तक सही है परन्तु कश्मीर विवाद को भारत-पाक विभाजन की अपूर्णता बताना, भारत-अमेरिका के बीच राजनीतिक समस्या का कारण रहा है। भारत ने कश्मीर समस्या को पाकिस्तानी आक्रमण व जम्मू कश्मीर में भारतीय भू-क्षेत्र के एक तिहाई भाग पर अधिकार करने को एक ऐसा कृत्य माना, जिसका विभाजन से कोई मतलब न था। संयुक्त राष्ट्र संघ में कश्मीर विवाद के उठने के बाद से अमेरिका ने भी इसके महत्व को समझते हुए रूचि लेना शुरू किया।

कश्मीर के महत्व को उपनिवेशकाल में ब्रिटेन ने भी समझा था। 1839 में महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद ब्रिटेन कश्मीर के सामरिक महत्व के पुर्नमूल्यांकन के लिए बाध्य हुआ था, क्योंकि इस क्षेत्र के उत्तर में रूसी साम्राज्य

---

1 Dennis Kux, India and the United State Estranged Democracies, 1944-1991, Washington, DC: National Defence University Press, 1992

की सीमा थी तो दक्षिण में ब्रिटिश साम्राज्य, इसके साथ ही साथ यह पूर्व में मंगोलों व पश्चिम में काकेशसवासियों के बीच भौगोलिक बफर क्षेत्र के रूप में था। लाहौर संधि व अमृतसर संधि के साथ ही यह क्षेत्र सिक्खों के हाथ से निकलकर डोगरा के हाथों में आ गया क्योंकि सिक्खों के साथ युद्ध में अंग्रेजों का साथ डोगरा नरेश गुलाब सिंह ने दिया था। इस क्षेत्र के पड़ोस में स्थित रूस में साम्यवादी शासन की स्थापना से कश्मीर में भी विदेशी षडयन्त्रों का समावेश हुआ। इस क्षेत्र में ब्रिटेन के हितों के संरक्षण के लिए रेजिडेन्ट था परन्तु वे कोई खतरा लेने के लिए तैयार न थे और उन्होंने 1935 में गिलगिट को सीधे ब्रिटिश शासन के अधीन कर लिया।[1] इस प्रकार ब्रिटेन इस क्षेत्र के महत्व को देखते हुए सदैव सर्तक रहा।

25 नवम्बर 1947 को संविधान सभा में भाषण देते हुए नेहरू जी ने भी कहा था कि हम लोग निश्चित रूप से इस निर्णय के प्रति इच्छुक है कि हमारा राष्ट्र कश्मीर को स्वीकार करेगा क्योंकि इसकी मुख्यतः तीन देशों सोवियत संघ, चीन और अफगानिस्तान के साथ भौगोलिक स्थिति भारत की सुरक्षा व अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क से संबद्ध है।[2] पाकिस्तान के पूर्व सैन्य प्रमुख ने भी पाकिस्तान को सुरक्षा आकलन करते हुए कहा कि पाकिस्तान की सुरक्षा कश्मीर पर निर्भर है। उनके अनुसार मानचित्र पर एक दृष्टि डालने से ही यह पता चलता है कि पाकिस्तान की सैन्य सुरक्षा को गंभीर खतरा होगा, यदि भारतीय बल कश्मीर के पश्चिमी सीमा पर अवस्थित हो जाए। यदि भारत को मौका मिले तो वह लाहौर व पिंडी की 180 मील लम्बी प्रमुख सड़क व रेलमार्ग पर अपने सैन्य केंन्द्र स्थापित कर सकता है। युद्ध के समय यह केंन्द्र हमारे मुख्य संचार के साधनों के लिए एक बहुत बड़ा खतरा होगे। शांति के समय भी इन केन्द्रों को स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि वे स्थायी रूप से खतरा उत्पन्न करेंगे व हमारी स्वतंत्रता एक वास्तविकता न बन पाएगी।[3]

इस प्रकार सामरिक रूप से कश्मीर भारत व पाक दोनों के बीच महत्वपूर्ण है। भारत की स्वतंत्रता के कुछ माह बाद ही अक्टूबर 1947 में पाकिस्तान के

---

1 Vijay K. Sazawal, understanding world Geopolitics and its impact on Kashmir (Article), Feb 22 1992.
2 Dr. R.C. Mishra, Security in south Asia, Cross Border Analysis, Authers press, 2000, P-301
3 Ibid P-302

कबायली व सैन्य बलों ने कश्मीर में घुसपैठ की, कश्मीर के महाराजा हरि सिंह ने भारत से सैन्य मदद मॉगी। फलतः महाराजा हरि सिंह के भारत में विलय पत्र पर हस्ताक्षर के बाद भारत ने सैन्य बल भेजा तथा युद्ध समाप्ति के बाद जनमत संग्रह की शर्त के साथ कश्मीर को भारत का अंग मान लिया। इसके पूर्व तक हरि सिंह ने भारत या पाकिस्तान में विलय का निश्चय नहीं किया था परन्तु कश्मीर पर हुए इस आक्रमण ने भारत में विलय का मार्ग प्रशस्त किया। इस समय तक ट्रूमैन प्रशासन ने इस मुद्दे से अपने को अलग रखा था। अमेरिकी स्टेट डिपार्टमेंट में नियर ईस्ट ऑफिस के डायरेक्टर लॉय हैंडर्सन ने कहा कि संयुक्त राज्य अमेरिका की वैश्विक प्रतिबद्धता खुद ही ज्यादा है और उसे भारत या पाकिस्तान के हितों को समर्थन देने से बचना चाहिए और हमें इसमें भागीदार होकर सोवियत संघ को दक्षिण एशिया के मामलों में संबद्ध होने का मार्ग नहीं खोलना चाहिए।[1]

भारत द्वारा इस विवाद को 1 जनवरी 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाया गया और पाकिस्तानी आक्रमणकारियों द्वारा अधिकृत किए गए क्षेत्र खाली करने व पाकिस्तानी सैन्य बल की वापसी की मॉग की गई। इस घटनाक्रम के बाद से अमेरिका ने इसमें रूचि लेना शुरू कर दिया। अप्रैल 1948 में आया संयुक्त राष्ट्र संघ सुरक्षा परिषद प्रस्ताव मुख्य रूप से अमेरिका व ब्रिटेन द्वारा पेश किया गया, जिसमें आक्रमण के लिए इस्लामाबाद की आलोचना नहीं की गई तथा आक्रमणकारी व इससे पीड़ित दोनों को एक ही दृष्टिकोण से देखा गया। इस पर नेहरू जी ने वाशिंगटन व लंदन पर आरोप लगाया कि वे कश्मीर मुद्दे पर संयुक्त राष्ट्र में एक गंदी भूमिका अदा कर रहे है।[2]

जैसे-जैसे शीत युद्ध में तीव्रता आती गयी अमेरिका कश्मीर विवाद में और अधिक सक्रिय होता गया। अमेरिका ने एक स्वतंत्र कश्मीर की भी हिमायत की। कुछ अमेरिकी स्रोतो के अनुसार स्टेट डिपार्टमेन्ट व सी०आई०ए० द्वारा स्वतंत्र कश्मीर के विचार को गंभीरता से सोचा गया। शिक्षाविदों व पत्रकारों को इस विचार को प्रचारित करने के लिए सहायता दी गई। इस नीति के पीछे अमेरिका की

---

1 Henderson to Lovett, January 9, 1948, report of discussions between the British delegation and US officials, January 10, 1948 Vol V, P-276-78

2 Speeches of Jawaharlal Nehru, Second Series, Vol. 5, P-188-90, 210-211

सामरिक सोच थी। अविभाजित स्वतंत्र कश्मीर की सीमाएं पॉच देशों के सम्पर्क में होती, जो सोवियत संघ, चीन, अफगानिस्तान, भारत व पाकिस्तान हैं। इससे साम्यवादी चीन व सोवियत संघ पर नजर रखने में मदद मिलती और यह संभवतः अन्य एशियाई राष्ट्रों की तरह अमेरिकी सैन्य बल का एक अड्डा होता।[1]

1953 में शेख मोहम्मद अब्दुल्ला भी कश्मीर की स्थिति पर अपना रूख बदलते हुए स्वतंत्र कश्मीर की बात करने लगे। जो अमेरिकी सोच से मेल खाती थी। अमेरिका इस क्षेत्र में अपने सामरिक हितों के सन्दर्भ में कश्मीर विवाद को एक महत्वपूर्ण अवसर के रूप में देख रहा था। इसकी पुष्टि अमेरिका के नियर ईस्टर्न एण्ड साउथ एशियन अफेयर्स के असिस्टेंट सेक्रेटरी फिलिप्स टालबोट द्वारा 23 दिसम्बर 1964 को यूनाइटेड नेशन्स एसोसिएशन ऑफ विचीटा (Wichita) मे दिये गये इस कथन से होती है कि दक्षिण एशिया उपमहाद्वीप में हमारे विशाल हितों का केवल एक पहलू कश्मीर है।[2]

कश्मीर विवाद पर अमेरिकी नीति की विवेचना शीत युद्ध काल में भारत द्वारा अमेरिका के साथ सहयोग न करने की प्रतिक्रिया के रूप में की गई। इसकी पुष्टि 1954 में अमेरिका द्वारा पाकिस्तान के साथ शस्त्र सहायता समझौते से होती है। पाकिस्तान द्वारा अमेरिकी नीतियों के प्रति स्वीकृति बढने से कश्मीर पर अमेरिकी झुकाव पाकिस्तान की ओर बढ़ता रहा। अतः सुरक्षा परिषद में कश्मीर मुद्दा उठने पर अमेरिका ने सक्रियता दिखाई। अमेरिका ने पाकिस्तानी आक्रमण को आक्रमण न मानकर भारत-पाकिस्तान का प्रश्न बना दिया। अमेरिका का पाकिस्तान को यह समर्थन भारत को रास न आया। इसके साथ ही साथ इस विवाद में संयुक्त राष्ट्रसंघ का क्षेत्र बढ़ने के साथ साथ दक्षिण एशिया में अमेरिकी हस्तक्षेप की संभावना भी बढ़ी। जो भारत के लिए चिन्ता का विषय थी।

जब सुरक्षा परिषद ने कश्मीर में जनमत संग्रह कराने के लिए प्रस्ताव पास किया, तो अमेरिका ने यह दृष्टिकोण रखा कि पुराने कारणों पर बहस की आवश्यकता नहीं है। इस विवाद को हल करने का सबसे सही मौका यही है कि

---

1 Amitabh Mattoo, Is the United States Mediating in Kashmir?, World Focus, Vol. 21, no. 6-7, June-July 2000, P-13.

2 Dr. R.C. Mishra, Security in south asia, cross Border Analysis, Authors Press, 2000, P-302

जनमत संग्रह की शर्तो पर समझौते का प्रयास किया जाय। अमेरिकी रूख यह था कि इसका कोई महत्व नहीं है कि शुरूआत में क्या हुआ तथा कश्मीर में पाकिस्तान की उपस्थिति कितनी न्याय संगत है। जब एक बार भारत ने यू०एन०सी०आई०पी० प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया तब पूर्व की घटनाएँ भूल जानी चाहिए क्योंकि यह प्रस्ताव पास होने के पूर्व की है।[1]

अमेरिका ने यू०एन०सी०आई०पी० प्रस्ताव, मैकनॉटन योजना, डिक्सन प्रस्ताव व ग्राहम मिशन का समर्थन किया परन्तु किसी पर अंतिम समझौता न हो सका। इस बीच जम्मू-कश्मीर की विधान सभा ने 6 फरवरी 1954 को भारत में कश्मीर के विलय का अनुमोदन कर दिया। संविधान सभा द्वारा जनता ने महाराजा के विलय के निर्णय का ही समर्थन किया था। अतः भारत ने 26 जनवरी 1957 को विलय को अंतिम रूप दे दिया।

जनवरी 1957 में अमेरिका ने इस पर जोर दिया कि कश्मीर में भारत द्वारा प्रायोजित संविधान सभा को राज्य के विलय का अधिकार नहीं है। इसके बाद ही सुरक्षा परिषद में एक एंग्लो इण्डियन प्रस्ताव में जनमत संग्रह का आधार तैयार करने के लिए कश्मीर के असैन्यीकरण की बात की गई। सोवियत संघ ने इसका वीटो किया तथा अन्य कई अवसरों पर भी उसने वीटों का इस्तेमाल किया।[2] जिससे भारत के लिए कोई असहज स्थिति उत्पन्न न हो पाई। इस पर अमेरिका ने इस बात पर जोर दिया कि पूर्व के संयुक्त राष्ट्र प्रस्तावों जिनमें जनमत संग्रह की बात है, वे वैध हैं और भारत पर बाध्यकारी हैं।[3]

कैनेड़ी के राष्ट्रपति काल में कश्मीर पर अमेरिकी सक्रियता में थोड़ी गिरावट आई और अमेरिका ने इस मुद्दे पर भारत-पाकिस्तान द्विपक्षीय वार्ता का समर्थन किया परन्तु 1962 में भारत पर चीनी आक्रमण के समय, भारत द्वारा सैन्य सहायता माँगने पर पाकिस्तान के दबाव में अमेरिका ने भारत पर कश्मीर मुददे पर पाकिस्तान से समझौते का दबाव डाला। इसी दबाव के परिणामस्वरूप नेहरू जी ने

---

1 Dr. R.C. Mishra, Security in South Asia, Cross Border Analysis, Authors Press, 2000, P-303
2 Ibid P-304
3 Ibid P-304

प्रथम बार कश्मीर ने भारत-पाक के बीच की युद्ध विराम रेखा को अन्तर्राष्ट्रीय सीमा मानने का दृष्टिकोण रखा।[1]

1970 के दशक के दौरान संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा कोई महत्वपूर्ण राजनीतिक गतिविधि नहीं की गई। यदि हम कश्मीर मुद्दे पर सुरक्षा परिषद की सक्रियता को देखे तो पाएगें कि यह सक्रियता मुख्यतः 1948 व 1971 के बीच थी तथा इस बीच कश्मीर पर सभी 25 विभिन्न प्रस्ताव व ड्राप्ट आ चुके थे। इसके बाद बंगलादेश संकट के दौरान अमेरिका का स्पष्ट झुकाव पाकिस्तान की तरफ था परन्तु भारत पाक के बीच हुए शिमला समझौते ने कश्मीर विवाद पर अमेरिकी दृष्टिकोण में बदलाव ला दिया। 1972 में किए गए शिमला समझौते में यह प्रतिबद्धता जाहिर की गई थी कि भारत व पाक कश्मीर सहित अन्य मुददों को द्विपक्षीय वार्ता द्वारा हल करेंगे और तीसरे पक्ष की इसमें मध्यस्थता नहीं होगी। अमेरिका ने इस स्थिति को अर्थपूर्ण ढंग से स्वीकार किया।[2]

इसके बाद दिसम्बर 1989 तक कश्मीर मुद्दा अपेक्षाकृत शान्त रहा। यदि हम शीत युद्ध के काल में कश्मीर विवाद पर अमेरिकी दृष्टिकोण का विश्लेषण करे तो इस परिणाम पर पहुँचेगें कि अमेरिका ने पाकिस्तान का समर्थन किया तथा भारतीय मत को समर्थन नहीं दिया। इस सन्दर्भ में नार्मन डी० पाल्मर ने भी कहा कि कश्मीर पर अमेरिकी रूख भारत की अपेक्षा पाकिस्तान के प्रति अधिक सहानुभूतिपूर्ण था। यह सुरक्षा परिषद में कश्मीर के प्रश्न पर अमेरिकी प्रतिनिधि द्वारा दिए गये वोटों से झलकता है।

शीत युद्ध की समाप्ति की शुरूआत के साथ ही कश्मीर विवाद में परिवर्तन स्पष्ट होने लगा। इस समय से आतंकवाद ने इस क्षेत्र में पाकिस्तान के सहयोग से पॉव पसारे। अफगान संकट के कारण पाकिस्तान अमेरिका के लिए 1979 से अफगानिस्तान में सोवियत सैन्य भागीदारी के विरूद्ध अग्रणी राष्ट्र बन गया था। अतः अफगानिस्तान में उलझे होने के कारण कश्मीर केन्द्र में न रहा परन्तु शीत

---

1 P.M. Kamath, Indo-US Relations, Dynamics of Change, P-10
2 Dennis Kux, India and the United States : Estaranged Democracies 1941-1991, Washington D.C : National Defence University Press, 1992, P-309

युद्ध की समाप्ति के दौर में अफगानिस्तान से सोवियत सैन्य वापसी ने पाकिस्तान के मन में यह गलतफहमी भर दी कि वह अफगानिस्तान में मुजाहिदीनों को दिए गए समर्थन की ही तरह कश्मीर में भी आतंकवादी गतिविधियाँ शुरू कर कश्मीर को अपने कब्जे में कर सकता है। अतः इस दृष्टिकोण के कारण उसने दिसम्बर 1989 से जम्मू-कश्मीर में आतंकवादी गतिविधियों की शुरूआत कर दी।

इस समय पाकिस्तान में बेनजीर भुट्टों द्वारा लोकतंत्र की पुनर्स्थापना हुई परन्तु इसी समय कश्मीर में पाकिस्तान द्वारा अफगान नीति के पुनः प्रयोग की शुरूआत हुई। जिसके तहत कश्मीर में भारत विरोधी व पाकिस्तान समर्थक संगठनों को मदद व प्रशिक्षण देना शामिल था। लंदन स्थित अन्तर्राष्ट्रीय सामरिक अध्ययन संस्थान के अनुसार, ''उन्होंने अफगान नीति को जनरल बेग व उनके इंटर सर्विस इंटेलिजेंस एजेन्सी (ISI) पर छोड़ दिया था, जो बहुत पहले से ही मुजाहिदीनों के लिए आधार तैयार कर रही थी। उन्होंने पाकिस्तान के आणविक शस्त्र कार्यक्रम पर जोर देने व सैन्य बजट को 50 प्रतिशत बढाने को स्वीकार कर लिया, जो कश्मीर के भारतीय भाग में अस्थिरता उत्पन्न करने से पैदा होने वाले खतरों से निपटने के सन्दर्भ में भी। बेनजीर भुट्टों ने कश्मीरी स्वतंत्रता सेनानियों का मुद्दा अपने राजनीतिक विरोधियों को शान्त करने के लिए अपने उग्र राष्ट्रवादी भाषणों द्वारा उठाया। उन्होंने आतंकवादियों को पाकिस्तानी समर्थन के मूल्यांकन का कार्य सेना को सौप दिया। जिसमें शस्त्रों की आपूर्ति, प्रशिक्षण तथा विभाजित कश्मीर में आतंकवादियों की शरण स्थली शामिल थी। कश्मीर पाकिस्तान के आंतरिक कलह का भाग न था। सैन्य अधिकारी व राजनीतिज्ञ इस उद्देश्य के प्रति सहमत थे कि भारत पर अधिकतम दबाव डाला जाय, जो एक वास्तविक युद्ध शुरू करने के लिए उसे उत्तेजित करने से कम है और जिस युद्ध में पाकिस्तान की हार निश्चित है।[1]

उपरोक्त चीजों के संज्ञान में रहने व नई परिस्थिति के उभरने पर अमेरिका ने शिमला समझौते के अन्तर्गत ही विवाद को सुलझाने पर जोर दिया। राष्ट्रपति बुश (सीनियर) ने भी कहा कि शिमला समझौते ने संयुक्त राष्ट्र प्रस्ताव, जिसमें

---

1 Strategic Survey, 1990-91, London : International Institute for Strategic Studies.

जनमत संग्रह की बात है, पर अग्रता प्राप्त कर ली है।[1] 6 मार्च 1990 को नियर ईस्ट एण्ड साउथ एशिया के असिटेंट सेक्रेटरी ऑफ स्टेट जॉन कैली ने कहा कि अमेरिका कश्मीर को विवादित क्षेत्र मानता है और भारत व पाकिस्तान को इस मुद्दे को शिमला समझौते के तहत हल करना चाहिए।[2]

इसी समय मई 1990 में भारत व पाकिस्तान के बीच तनाव बढ़ गया, तब राष्ट्रपति बुश ने अपने डिप्टी नेशनल सिक्योरिटी एडवाजर, राबर्ट गेट्स व असिटेंट सेक्रेटरी ऑफ स्टेट जॉन कैली को दक्षिण एशिया भेजा। अमेरिकी समाचार पत्रों के अनुसार गेट्स ने नई दिल्ली व इस्लामाबाद को समझाया कि कश्मीर पर युद्ध का अगला दौर आणविक संघर्ष की ओर बढ़ सकता है और उनका यह कूटनीतिक प्रयास दक्षिण एशिया मे संभावित आणविक संघर्ष को टालने में सफल रहा।[3] इसके बाद से ही भारतीय उपमहाद्वीप में आणविक खतरों की बात बार-बार उठाने का प्रचलन हो गया। जबकि अमेरिका ने पाकिस्तान के आणविक कार्यक्रम को रोकने का कोई ठोस प्रयास नहीं किया। इसका परिणाम यह रहा कि अब पाकिस्तान आणविक युद्ध के नाम पर खुले आम ब्लैकमेल कर रहा है।

इस प्रकार कश्मीर मुद्दे को आणविक मुद्दे से जोड़ने का एक नया क्रम शुरू हो गया। 1995 की शुरूआत में अमेरिकी रक्षामंत्री विलियम पैरी कहा कि भारत व पाकिस्तान के बीच धार्मिक, जातीय व क्षेत्रीय विभिन्नताएँ, 1947 के विभाजन के पूर्व से ही है। इन विभिन्नताओं के कारण ही विभाजन के बाद से तीन युद्ध हुए हैं। आज दोनों के पास नाभिकीय अस्त्र विकसित करने की क्षमता है। इस कारण भारत व पाकिस्तान के बीच चौथा युद्ध केवल एक दुर्घटना मात्र नहीं रहेगा वरन् यह विनाशकारी हो सकता है। अतः हम यहाँ की घटनाओं का बहुत ख्याल रखते हैं।[4]

इसी प्रकार यू०एस० आर्म्स कंट्रोल एण्ड डिसआर्मामेंट एजेन्सी (A.C.D.A.) की 1996 की वार्षिक रिपोर्ट में कहा गया कि भारत व पाकिस्तान के बीच चौथे युद्ध

---

1 Dr. R.C. Mishra, security is souh Asia : Cross Border Analysis, Authors press, 2000, P-307

2 Ibid

3 Washington past, may 16 1990.

4 Official Text, United State information Service, N. Delhi, February 3, 1995.

की संभावना कम है परन्तु इस क्षेत्र में होने वाले युद्ध के नाभिकीय रूप लेने की संभावना विश्व के अन्य किसी भी क्षेत्र से अधिक है। हम अभी भी विश्वास करते है कि दोनों के पास परीक्षण की हुई मिसाइलें व इन शस्त्रों को गिराने में सक्षम जहाज हैं। इसके अतिरिक्त पिछले कुछ वर्षो से भारत-पाक संबंधों में गिरावट आई है।...........भारत पाक तनाव से इसमें वृद्धि होगी, विशेषकर कश्मीर के सन्दर्भ में।[1]

यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि भारत व पाकिस्तान दोनों ने ही अपने नाभिकीय कार्यक्रमों को कश्मीर के सन्दर्भ में विकसित नहीं किया परन्तु अमेरिका ने दोनों देशों से नाभिकीय मुद्दों को सुलझाने के लिए कश्मीर मुद्दे को भी इससे जोड़ दिया। इसके परिणाम स्वरूप कारगिल के युद्ध के समय व हाल ही में कश्मीर विधानसभा संसद पर आतंकी हमले के परिणामस्वरूप तनाव बढ़ने व सीमा पर सेनाओं की तैनाती पर पाकिस्तान ने युद्ध शुरू होने पर आणविक शस्त्रों के प्रयोग की खुलेआम धमकी दी। इसी पर श्री अटल बिहारी बाजपेयी ने संयुक्त राष्ट्र संघ की आम सभा को सितम्बर 2002 से सम्बोधित करते हुए कहा कि हमारे दक्षिण एशिया क्षेत्र में पिछले कुछ महीनों से नाभिकीय ब्लैकमेल, राज्य प्रायोजित आतंकवाद के तरकस में एक नए तीर के रूप में सामने आया है।

शीत युद्ध के उपरान्त यदि हम राष्ट्रपति क्लिंटन के प्रथम कार्यकाल का विश्लेषण करे तों पाएगें कि यह भारत के लिए निराशाजनक रहा और विशेषकर कश्मीर के सन्दर्भ में अमेरिकी दृष्टिकोण ने भारत व अमेरिका के द्विपक्षीय संबंधों पर प्रभाव डाला। अमेरिका के बदले हुए रूख का पहला प्रमाण मई 1993 में जॉन मैलेट (Mallat) की नई दिल्ली यात्रा पर मिला। जब उन्होंने कश्मीर विवाद पर अधिकारिक वक्तव्य देते हुए कहा कि कश्मीर पर अमेरिकी नीति को संचालित करने वाले तीन सिद्धान्त है।[2]

- हम समझते है कि पूरा कश्मीर विवादित क्षेत्र है, जिसके अन्तर्गत नियंत्रण रेखा के दोनों तरफ का क्षेत्र है।
- यह एक मुद्दा है जिसे भारत व पाकिस्तान को कश्मीरियों, जिसमें

1 Arms control and Disarmament Agency, Annual Report 1996, Excerpt on South Asia, USIS Text Link: 415917 File date/Id, August 12, 1996.
2 Dr. R.C. Mishra, Security is south Asia; Cross Border Analysis, Authors Press, 2000, P-309.

मुस्लिम व गैर मुस्लिम दोनों शामिल है, की इच्छा से शान्तिपूर्ण ढंग से हल करना चाहिए।

➢ संयुक्त राज्य अमेरिका इसमें मदद करने को तैयार है। यदि दोनों पक्ष इसके लिए तैयार हो।

इसके द्वारा पूरे कश्मीर को विवादित मानने व अमेरिका के मध्यस्थता की बात पुनः सामने आई इसके बाद सितम्बर 1993 में संयुक्त राष्ट्र संघ की आम सभा को सम्बोधित करते हुए क्लिंटन ने अंगोला से काकेशस व कश्मीर तक बढ रही खूनी जातीय, धार्मिक हिंसा व गृह युद्ध की बात की। इस प्रकार अमेरिका ने यूगोस्लाविया, सोमालिया व पूर्व सोवियत संघ के भागों (जहॉ पर गृह युद्ध भड़का) के साथ ही कश्मीर को भी रख दिया। हाल के वर्षो में किसी भी अमेरिकी राष्ट्रपति ने किसी अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर इस प्रकार का उल्लेख नहीं किया था।

एक बार फिर कश्मीर मुद्दे पर तब उबाल आया, जब 29 अक्टूबर 1993 को दक्षिण एशिया की असिटेंट सेक्रेटरी ऑफ स्टेट रॉबिन रफेल ने कश्मीर के भारत में विलय की वैधानिक स्थिति पर प्रश्न चिन्ह लगाया। रफेल ने कहा कि हम विलय के तरीके को प्रमाणित नहीं मानते। जिसके अनुसार कश्मीर भारत का एक आंतरिक भाग है.......कश्मीर विवाद के किसी भी अंतिम समाधान में कश्मीर के लोगों से मशविरा होना चाहिए।[1] इसी दौरान 1993 के अंत में क्लिंटन ने कश्मीर में मानवाधिकार उल्लंघन की बात उठाई। जिससे भारत व अमेरिका के बीच मतभेद और गहराया।

भारत द्वारा बार-बार सीमा पार से अप्रत्यक्ष युद्ध व प्रायोजित आतंकवाद की बात की गई। इस पर रॉबिन रफेल ने कहा कि भारतीय सरकार कश्मीर की सभी समस्याओं के लिए पाकिस्तानी सरकार पर आरोप लगा देती है। लेकिन हम सोचते है कि यह मुद्दा बहुत जटिल है और कुछ हद तक यह आतंकवाद घरेलू समस्याओं के कारण है। बाहरी तत्व इस अवसर का लाभ उठा सकते है और इसे और उत्तेजित कर सकते हैं परन्तु आप ऐसा तब तक नहीं कर सकते जब तक लोग

---

1 The Time of India, October 30, 1993.

इससे खुश न हों।[1] इस प्रकार के बयानों ने कश्मीर में आतंकवाद के बढ़ने व पाकिस्तान को और उकसाने में मदद की।

यदि हम तत्कालीन राजनीतिक व सामरिक मुद्दों का विश्लेषण करें तो पाएगे कि अमेरिका की यह नीति सुविचारित थी। अमेरिका इसके द्वारा एन०पी०टी०, एम०टी०सी०आर०, गैट आदि मुद्दों पर भारत के रूख को नरम कर उसे इन पर समझौते के लिए तैयार करना चाहता था। इसके साथ ही साथ नवीन विश्व परिदृश्य में एक मात्र महाशक्ति के रूप में उभरे अमेरिका के लिए वैश्विक विवादों के सन्दर्भ में अपनी नेतृत्वकर्ता की भूमिका को प्रदर्शित करने की इच्छा भी थी।

1993 के इन घटनाक्रमों के बाद 1994 में भारत व अमेरिका ने इस विवाद पर मतभेद को कम करने का प्रयास किया तथा क्लिंटन के दूसरे कार्यकाल में इसमें स्पष्ट परिवर्तन परिलक्षित हुआ। कारगिल संघर्ष के दौरान अमेरिका का समर्थन भारत के प्रति रहा। 2000 में भारत यात्रा के दौरान क्लिंटन ने भारतीय संसद को सम्बोधित करते हुए कहा कि मुझे यह साफ कर देने दीजिए कि मै दक्षिण एशिया में कश्मीर पर मध्यस्थता के लिए नहीं आया हूँ। केवल भारत व पाकिस्तान ही अपनी समस्याओं को हल कर सकते है।[2] जनमत संग्रह पर उन्होंने कहा कि 1948 से अब तक बहुत परिवर्तन हो चुका है और बहुत सी चीजें बदल चुकी है।[3] इसके साथ ही साथ क्लिंटन ने यह भी कहा कि मैं विश्वास करता हूँ कि पाकिस्तानी सरकार के अन्दर ही ऐसे तत्व है जो कश्मीर में हिंसा में लिप्त है।[4] क्लिंटन ने पाकिस्तान में भी स्थिति साफ करते हुए कहा कि हम कश्मीर विवाद को सुलझाने के लिए न तो मध्यस्थता करेंगे, न कर सकते हैं। केवल पाकिस्तान और भारत बातचीत द्वारा इसे हल कर सकते हैं।[5]

---

1 Dr. R.C. Mishra, Security in South Asia : Cross border Analysis, Authors Press, 2000, P-310.

2 Jyoti Malhotra, In Indo-US Spring, FBI is coming to Delhi to Set up shop, Indian Express, N. Delhi, March 28, 2000.

3 The US Government, the white House, President clinton's Visit to India, "Interview of the President by Peter Jennings, ABC world News" at New Delhi, March 21, 2000

4 Ibid.

5 The US Government the white House, office of the press Secretary, (Islamabad, Pakistan), Remarks by the President in greeting to the People of Pakistan, March 25, 2000.

इस प्रकार पहली बार कश्मीर में हिंसा के लिए पाकिस्तानी सरकार को जिम्मेदार माना गया। पाकिस्तान को नियंत्रण रेखा का सम्मान करने को कहा गया, साथ ही साथ पाकिस्तान की अमेरिकी मध्यस्थता की मॉग अस्वीकार कर दी गई। भारत इस बात में प्रयत्नशील रहा कि कश्मीर मुद्दे को बढते हुए इस्लामिक विप्लव, कट्टरवाद और नार्को (Narco) आतंकवाद के परिप्रेक्ष्य में देखा जाय। शीत युद्ध की समाप्ति के काल में भी भारत का यह दृष्टिकोण अमेरिका का ध्यान आकर्षित करने में असफल रहा और भारत द्वारा आतंकवादी संगठनों पर प्रतिबंध व पाकिस्तान को आतंकवादी राष्ट्र घोषित करने की माँग को अनसुना किया गया परन्तु 11 सितम्बर 2001 को अमेरिका पर हुए आतंकवादी हमले के उपरान्त इस सन्दर्भ में भी बदलाव दिखाई दिया।

इसके पूर्व तक अमेरिका ने आतंकवाद को 'घरेलू' व 'अन्तर्राष्ट्रीय' के रूप में बॉट रखा था। 1996 की अमेरिकी स्टेट डिपार्टमेंट की रिपोर्ट में भारत, अल्जीरिया, श्रीलंका के आंतकवाद को घरेलू आतंकवाद के अन्तर्गत रखा गया था। इसमें यह भी कहा गया कि घरेलू आतंकवाद प्रायः अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद से ज्यादा व्यापक है। इसके अन्तर्राष्ट्रीयकरण का अमेरिकी हितों पर सीधा प्रभाव पडता है। जो इस रिपोर्ट का मुख्य बिन्दु था।[1] अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के अन्तर्गत एक से अधिक देशों के नागरिकों व क्षेत्र की भागीदारी को रखा गया। अन्तर्राष्ट्रीय आंतकवादी की इस मान्यता के बावजूद कश्मीर में पाकिस्तानी व अफगानी लोगों की भागीदारी को देखते हुए भी इसे घरेलू आंतकवाद के अन्तर्गत रखा गया।

अमेरिका पर आतंकवादी हमलों व कश्मीरी विधानसभा व भारतीय संसद पर हमले के उपरान्त अमेरिका ने दो कश्मीरी आतंकवादी संगठन जैश-ए-मोहम्मद व लश्करे तौयबा पर प्रतिबंध लगाया व पाकिस्तान को इनकी सम्पत्ति जब्त करने को कहा। पाकिस्तान को भेजे गए अपने कड़े संदेश में राष्ट्रपति बुश ने कहा कि ये संगठन पाकिस्तान से संचालित है इसलिए इनसे किसी तरह की हमदर्दी बर्दाश्त नहीं की जाएगी। इसके भयंकर दुष्परिणाम हो सकते हैं। मुशर्रफ को पाक के भविष्य और

1 Wireless File, USIS, May 1, 1997

कश्मीर के प्रति दुराग्रह में से एक को चुनना होगा।[1] अमेरिका समाचार पत्र 'न्यूर्याक टाइम्स' ने भी लिखा कि अफगानिस्तान की तालिबान और उग्रवादियों के खिलाफ अभियान में पाकिस्तान के अमेरिका को समर्थन देने का यह मतलब नही है कि मुशर्रफ को कश्मीर में इस्लामी कट्टरपंथियों को समर्थन देने की छूट दे दी जाय।[2]

इस दौरान आतंकवाद को एक व्यापक दायरे में समझने व उसे नष्ट करने के लिए विश्व के सभी कोनों में अभियान चलाने के भारतीय रूख के सन्दर्भ में अमेरिकी रक्षा मंत्री डोनाल्ड रम्सफील्ड ने कहा कि कश्मीर में आंतकवाद की समस्या अफगानिस्तान से भी अधिक गंभीर है। कश्मीर समेत हर कोने से आंतकवाद की जड़ों को नेस्तनाबूद करने का अभियान छेड़ा जाएगा।[3] अमेरिकी रक्षामंत्री ने अमेरिकी एजेण्डे में कश्मीर को भी शामिल बताया जो आंतकवादी घटनाओं से त्रस्त है।[4]

पाकिस्तान पर पड़ रहे अमेरिकी दबाव के बावजूद कश्मीर में बढ़ रही आतंकवादी गतिविधियों तथा भारत पर भी पाकिस्तान से बातचीत के दबाव को देखते हुए अटल बिहारी बाजपेयी ने कहा कि कश्मीर मसले पर किसी ने भी हमारा समर्थन नहीं किया है, दूसरों ने सिर्फ बंदरबांट की नीति को ही अपनाया है।[5] उन्होंने अमेरिका से भारत पर पाकिस्तान से वार्ता का दबाव न डालने को कहा क्योंकि सीमा पार आतंकवाद को समाप्त किए बगैर वार्ता का कोई अर्थ नहीं है। अमेरिका की इस नीति से अभी भी आतंकवाद उन्मूलन के सन्दर्भ में दोहरे मापदण्ड की झलक मिलती है, जो पूर्व में भी पाई जाती थी। इस क्षेत्र में अपनी एक स्थायी भूमिका के सन्दर्भ में ही अमेरिका ने नियंत्रण रेखा की निगरानी के लिए अमेरिका व यूनाइटेड किंगडम का एक संयुक्त बल स्थापित करने की बात की जो 500 आदमियों की हेलिकाप्टर से युक्त एक शक्तिशाली निगरानी बल हो।[6] इसे भारत ने ठुकरा दिया क्योंकि इससे तीसरे पक्ष के हस्तक्षेप का रास्ता साफ हो जाएगा।

---

1 Dainik Jagran, December 23, 2001
2 Ibid October 18, 2001
3 Ibid November 11, 2001
4 The Hindu, New Delhi, October 10, 2001
5 Dainik Jagran, November 8, 2001
6 The Times of India, N. Delhi, June 8, 2002

संसद पर हमले के बाद से सीमा पर बढे तनाव के मुद्देनजर भारत व पाक दोनों पर वार्ता का अमेरिकी दबाव पडता रहा है और कई बार उच्चस्तरीय दलों का भी एक दूसरे के यहाँ आवागमन होता रहा है। इस सन्दर्भ में भारत, अमेरिका को आतंकवाद से लडने, विशेषकर कश्मीर के सन्दर्भ में, दोहरी नीति अपनाने का दोषी मानता है। अगस्त 2002 में अमेरिकी विदेश मंत्री कोलिन पॉवेल ने नई दिल्ली में कश्मीर चुनाव के सन्दर्भ में जो कहा वह भारत को ग्राह्य नहीं था। पावेल ने कहा कि चुनाव प्रक्रिया में कश्मीरियों का भरोसा पैदा करने के लिए भारत राजनैतिक कैदियों को रिहा करें। उन्होंने कश्मीर चुनाव के लिए स्वतंत्र प्रेक्षकों की वकालत की, पर औपचारिक निगरानी की बात नहीं उठाई। उन्होंने कश्मीर को अन्तर्राष्ट्रीय एजेंडे पर बताया परन्तु यह भी कहा कि इसका अर्थ कश्मीर मुद्दे का अन्तर्राष्ट्रीयकरण नहीं है। पावेल ने चुनाव के बाद पाकिस्तान से कश्मीर सहित सभी मुद्दों पर वार्ता शुरू करने के लिए कहा, यह भी कहा कि सीमा पार से घुसपैठ घटी है पर खत्म नहीं हुई है।[1]

कश्मीर में सफलतापूर्वक चुनाव सम्पन्न होने पर अमेरिका ने पाकिस्तान की आपत्तियों को खारिज करते हुए कहा कि कश्मीर में हुए स्वच्छ व स्वतंत्र चुनाव कश्मीरी लोगों की इच्छा का प्रकटीकरण है।[2] यद्यपि इस चुनाव में पाकिस्तान द्वारा बाधा न डालने का अपनी ओर से भरोसा देकर अमेरिका ने यह संकेत दिया कि कश्मीर में उसकी गतिविधियों पर नजर रखी जा रही है। यद्यपि अभी तक भारत ने आतंकवाद के खिलाफ बने अन्तर्राष्ट्रीय गठजोड़ का उपयोग सीमा पार आतंकवादियों के खिलाफ कार्रवाई के लिए मुर्शरफ पर सफलतापूर्वक दबाव डलवाने में किया था। लेकिन इससे अमेरिका इस क्षेत्र में स्थायी शांति के अनौपचारिक गारंटर के रूप में स्थापित हो गया है।

यदि हम वर्तमान में इस क्षेत्र की स्थिति की विवेचना करें तो पायेंगे कि अमेरिका की अफगानिस्तान में उपस्थिति है, जो मध्य एशिया के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है। अमेरिका अफगानिस्तान में अपनी स्थिति मजबूत करने व आतंकवाद के विरूद्ध

---

1 India Today, August 14, 2002

2 The Times of India, N. Delhi, July 29, 2002

कार्यवाही के लिए पाकिस्तानी सहयोग लेने को बाध्य है। वह पाकिस्तान पर कश्मीर के मुद्दे पर भारत के पक्ष में बहुत दबाव देकर पाकिस्तान के कट्टरपंथियों को कोई मौका नहीं देना चाहता क्योंकि वह अफगानिस्तान मसले पर पहले से ही नाराज हैं। इस बात का फायदा मुर्शरफ उठा रहे हैं। हाल के चुनावों में पाकिस्तान में कट्टपंथियों की जीत से मुशर्रफ को अपने लिए अमेरिका का समर्थन लेने का एक और बहाना मिल गया है। वह कट्टरपंथियों से खतरे को उछालकर दोहरा लाभ लेंगे। अतः अमेरिका पाकिस्तान पर पर्याप्त दबाव नहीं डाल रहा, इसके साथ-साथ मध्य एशिया के महत्व को देखते हुए अमेरिका की इस क्षेत्र में दखलअन्दाजी की संभावना बढ गयी है। अमेरिका भारत-पाकिस्तान के बीच खास-तौर से जो महत्वपूर्ण भूमिका तलाश रहा है उसे अन्य एशियाई क्षेत्रों में जारी सामरिक प्रयासों के सन्दर्भ में देखना जरूरी है। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप लाल सागर से लेकर प्रशांत महासागर तक एशिया में अमेरिकी सैन्य विस्तार तीव्र गति से हुआ है।

(III) पाकिस्तान का प्रभाव :

भारत-अमेरिका संबंध में पाकिस्तान एक महत्वपूर्ण घटक है और इसका गहरा प्रभाव पड़ा है। अमेरिका की पाकिस्तान के प्रति नीति ने भारत के साथ उसके संबंध में खटास पैदा की है। भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अमेरिका ने भारत को तीसरी दुनिया में अपना प्रभाव फैलाने में सहायक के रूप में देखा परन्तु भारत द्वारा स्वतंत्र नीति के अनुपालन व अमेरिकी गुट में जाने की अनिच्छा से अमेरिका का ध्यान पाकिस्तान की ओर केन्द्रित हुआ।[1] भारत के साथ अपने शत्रुभाव के कारण पाकिस्तान ने इस अवसर को हाथों-हाथ लिया तथा इसे भारत के विरूद्ध जमकर भुनाया। भारतीय नीति में अमेरिकी विरोध के कारणों में से एक नई दिल्ली को मास्को को खुश करना नहीं था अपितु उसे पाकिस्तान को अमेरिकी समर्थन की वजह से एक खीझ थी। जबकि यह हास्यास्पद था कि पाकिस्तान को अमेरिकी समर्थन के बावजूद पाकिस्तान में अमेरिका विरोधी भावना भारत से ज्यादा थी।[2]

---

1 Escott Reid, Envoy to Nehru, New Delhi : Oxford University Press, 1981, P-104-105.

2 Ainslee Embree, Anti-Americanism in South Asia A symbolic Artifact, in Rubinstein and Smith eds. Anti-Americanism in the third world, P-144.

पाकिस्तान में भारत से ज्यादा अमेरिकी विरोधी भावना के बावजूद अमेरिका का उसको खुला समर्थन था। इस सन्दर्भ में यह महत्वपूर्ण है कि पाकिस्तान का शासक वर्ग अमेरिकी नीतियों का समर्थक था व उसे पूरा सहयोग दे रहा था। इस कार्य में एक लोकतान्त्रिक रूप से चुनी हुई सरकार की जगह सैन्य शासक व तानाशाही अमेरिकी हितों के अनुपालन में ज्यादा सहायक थी। इन्ही कारणों से विश्व में स्वतंत्र समाज व लोकतंत्र का संवाहक होने के अमेरिकी लक्ष्य को दर किनार कर अमेरिका ने पाकिस्तानी सैन्य शासन का विरोध नहीं किया। वर्तमान में भी पाकिस्तान में मुर्शरफ के रूप में चौथे सैन्य शासन को अमेरिका ने मान्यता दे रखी है और उनके गैर संवैधानिक कार्यो पर भी आपत्ति नहीं है। इस पर अमेरिकी समाचार पत्र वाशिंगटन पोस्ट ने राष्ट्रपति जॉर्ज डब्लू बुश की आलोचना की कि वे पाकिस्तान के लिए किए गए संविधान संशोधन की निंदा करने के बजाए उस पर चुप्पी साध गये।[1]

पाकिस्तान को यह अमेरिकी समर्थन भारत व अमेरिका संबंध के सहज प्रवाह में बाधक बनता है क्योंकि पाकिस्तान अपनी नीतियों को भारत के परिसीमन के सन्दर्भ में परिचालित करता है और भारत, पाकिस्तान को दिए जा रहे अमेरिकी समर्थन को इसमें सहायक पाता है। अमेरिका-पाकिस्तान सामरिक सहयोग, पाकिस्तान के प्रति अमेरिकी शस्त्र हस्तान्तरण नीति, पाकिस्तान के नाभिकीय शस्त्र क्षमता प्राप्त करने में अप्रत्यक्ष अमेरिकी सहयोग, 1950 के दशक से भारत-अमेरिका संबंध में नकारात्मक कारक रहे है।

यदि हम शीत युद्ध काल के प्रारम्भिक वर्षो पर ध्यान दें तो पाएगें कि पाकिस्तानी नेतृत्व ने अमेरिका को ध्यानाकर्षित करने का पूरा-पूरा प्रयास किया क्योंकि भारत द्वारा अमेरिकी नीतियों का समर्थन न करने से उसके लिए मौका था। वाशिंगटन में पाकिस्तानी प्रधानमंत्री लियाकत अली खान ने अपने अनेक सम्बोधनों में लोगों की इच्छा की श्रेष्ठता का सम्मान करने के कारण अमेरिका की प्रशंसा की।[2] उन्होनें अमेरिका को बार-बार आश्वासन दिया कि पाकिस्तान एशिया के लोगों

---

1 Dainik Jagran, Allahabad, August 26, 2002.
2 Khan, Liaquat Ali, Pakistan : The Heart of Asia, P-4.

के शान्तिपूर्ण विकास को अवरूद्ध करने वाली शक्तियों के विरूद्ध संघर्ष करने को प्रतिबद्ध है।[1] उनका इशारा स्पष्ट रूप से सोवियत संघ के विरूद्ध परिसीमन में अमेरिका का सहयोग करने का था। इसका अमेरिका के साथ पाकिस्तान के सैन्य सहयोग की दिशा में सकारात्मक प्रभाव पड़ा। 1949 में अमेरिका ने भारत व पाकिस्तान के बीच तनाव को देखते हुए दोनों को सैन्य सहायता से इंकार कर दिया था परन्तु 1950 में पाकिस्तान बिना किसी रूकावट के सैन्य उपकरण खरीदने में सफल रहा।[2]

अमेरिका द्वारा भारत से अपनी नीतियों के पूर्ण समर्थन की इच्छा के सन्दर्भ में ही नेहरू जी ने कहा था कि जब आप आधुनिक विश्व की समस्याओं को समझते है तो आप यह सोचने का प्रयास नहीं करते कि वह भी आपका ही प्रतिरूप है।[3] अर्थात नेहरू जी ने विश्व मंच पर समानता के आधार पर संबंधों के विकास पर जोर दिया। यह नीति अमेरिका को स्वीकार न थी। अमेरिका प्रभावी व अधीनस्थ व्यवस्था का हिमायती था तथा पाकिस्तान को अधीनस्थ व्यवस्था के अन्तर्गत रहने में आपत्ति न थी। अतः अमेरिका का झुकाव पाकिस्तान की ओर बढ़ने लगा। इसका प्रमाण 25 जनवरी 1951 को राष्ट्रपति ट्रूमैन द्वारा पारित राष्ट्रीय सुरक्षा परिषद की नीति में मिलता है, जिसमें कहा गया है कि-

पाकिस्तान में कराची, रावलपिंडी और लाहौर में स्थित वायु सेना के अड्डे सोवियत क्षेत्र के एक विशाल भाग के समीप होंगे, जिसके अर्न्तगत यूराल के पूर्व का औद्योगिक क्षेत्र भी शामिल है। यह अड्डे एशिया व पूर्व के दूसरे स्थानों के अड्डों की अपेक्षा सोवियत भू-भाग के ज्यादा करीब हैं।........ पाकिस्तान के पश्चिमी लोकतंत्र के करीबी सहयोगी के रूप में उसकी नीतियों का पालन करने की अच्छी संभावना है।[4]

सन् 1949 से ही अमेरिका पाकिस्तान की भौगोलिक स्थिति को महत्व होने

---

1 Khan, Liaquat Ali, Pakistan : The Heart of Asia, P-46.

2 Harrison, Selig, S. India-Pakishan.

3 Speaking at the National press club during his first U.S. Visit on 14 October 1949.

4 Documents of the National Security Council Cited in Venkatraman, The American Role in Pakistan 1947-58 N-Delhi, 1982, P-137.

देने लगा था। एंडर्यू राथ् के अनुसार निर्विवाद रूप से पाकिस्तान ध्यान आकृष्ट करने लायक है क्योंकि यह एशिया के केन्द्र में उस स्थान पर अवस्थित हैं जहाँ एग्लो अमेरिकन व सोवियत परिक्षेत्र सामरिक मध्य एशिया में मिलते है।[1] मार्च 1949 में ही भारत-पाक उपमहाद्वीप का महत्व और अधिक प्रकाश में आया जब ओल्फ कैरो का राउण्ड टेबिल में एक लेख आया। उन्होंने लिखा था कि वर्तमान में भारतीय उपमहाद्वीप में स्वतंत्र राज्यों के अभ्युदय से पुरानी समस्याओं को हल करने का नया उपागम उपलब्ध हुआ है। इस क्षेत्र में खाडी के कराची में सीधे खुलने से पाकिस्तान भारत के बजाए अधिक जिम्मेदारियों को सम्भालने में सफल हुआ है। इस खाड़ी क्षेत्र का महत्व विकसित राष्ट्रों द्वारा ईधन की बढती माँग के कारण बढ़ता गया है। खाड़ी क्षेत्र में स्थायित्व सभी सुनिश्चित हो सकता है। जब उस इस्लामिक झील को घेरने वाले देश उन महाशक्तियों की छाया में समझौता करके रहें, जिनका स्वार्थ इस क्षेत्र में निहित है।[2]

1951 में भारत को दृष्टि में रखते हुए कैरो ने लिखा कि भारत अब स्पष्टतः मध्य पूर्व सुरक्षा का आधार नहीं रह गया है। यह सुरक्षा परिधि के एक किनारे पर स्थित है। दूसरी ओर आकाश से देखने पर पाकिस्तान दक्षिण-पश्चिम एशिया के समूहों के बीच में दिखता है।[3] पाकिस्तान को फारस की खाड़ी की शक्ति के रूप में महत्व बढ गया। यह कहा गया कि आकाश से देखने पर क्षितिज हिन्द महासागर परिक्षेत्र के उत्तर पश्चिमी भाग को कवर करता है, जिसमें भू-क्षेत्र व समुद्र शामिल हैं परन्तु यह पश्चिम में और बढ़कर पूर्वी भूमध्यसागर तक जाता है। जिसके अन्तर्गत उत्तरी परिधि के आवश्यक भाग के रूप में टर्की, पर्सिया व अफगानिस्तान शामिल है और पाकिस्तान को शामिल किए बिना यह वृत्त अधूरा है।[4] इस प्रकार पाकिस्तान का महत्व फारस की खाडी व मध्य पूर्वी देशों के सन्दर्भ में बढ़ गया। जिसे अमेरिकी नीति निर्माताओं ने भी स्वीकार किया, जो एशिया में अपनी स्थिति सुदृढ करने के लिए सहयोगी की तलाश में थे।

---

1 Cited in Sinha J., Pakistan and the Indo-US Relathous in 30, P-112.

2 "NYS", The Round Table, Vol XXXIX, No. 154, March 1949, London, P-135-137

3 Caroe Olaf, Wells of Power, London, 1951, P-180

4 Ibid, P-179

अमेरिका ने पाकिस्तान को भारत की आपत्तियों के बावजूद सैन्य सहायता शुरू की। 1953 में राष्ट्रपति आइजनहावर द्वारा पाकिस्तान को सैन्य सहायता देने का भारत ने जोरदार विरोध किया। भारत में अमेरिकी राजदूत चेस्टर बाउल्स ने कहा कि पाकिस्तान को दिए गए हथियार भारत के विरूद्ध प्रयुक्त हो सकते हैं जिससे मध्य पूर्व व दक्षिण एशिया में अधिक अस्थिरता आएगी।[1] अमेरिका ने इस पर ध्यान नहीं दिया क्योंकि वह भारत की गुटनिरपेक्ष नीति से नाखुश था।

1953 में रिचर्ड निक्सन ने कहा कि सोवियत विस्तार को रोकने के लिए अर्धचन्द्र आकार में सैन्य गठबंधन करने की आवश्यकता है। जिसके अन्तर्गत, टर्की, ईरान, पाकिस्तान, इण्डोचीन, फार्मोसा (ताइवान) और जापान शामिल हो। अतः दक्षिण व दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों के मध्य 8 सितम्बर 1954 में 'सीटो' पर हस्ताक्षर हुए, जिसमें पाकिस्तान भी शामिल था। इसी प्रकार 1955 में बगदाद पैक्ट (बाद में सेन्टो) पर हस्ताक्षर हुए, इसमें भी पाकिस्तान की उपस्थिति थी। सीटो व सेन्टो को जोड़ने की कड़ी में पाकिस्तान की स्थिति सामरिक थी। इसने भारत को चिन्तित किया और इसका प्रभाव भारत-अमेरिका संबंध पर भी पड़ा। नेहरू जी ने 1956 में लोकसभा में कहा कि सैन्य गठबंधनों जैसे बगदाद पैक्ट व सीटो की नीति, गलत नीति है, यह खतरनाक व हानिकारक है। जो गलत प्रवृतियों को बढ़ावा देगी व सही प्रवृत्तियों के विकास को रोकेगी। जब गठबंधन ही गंदा हो तो इसका कम ही महत्व है कि इसमें शामिल देशों की मंशा पर संदेह किया जाय।[2]

इसके साथ ही साथ अमेरिका ने पाकिस्तान से 19 मई 1954 को पारस्परिक रक्षा समझौता (MDAP) किया। इस प्रकार पाकिस्तान अमेरिका की प्राथमिकता वाली सूची में शामिल हो गया। भारत ने पाकिस्तान को साम्यवाद के परिसीमन के नाम पर दी जा रही सैन्य सहायता का विरोध किया क्योंकि इन शस्त्रों का उसे साम्यवाद की जगह उसके खिलाफ प्रयोग होने का खतरा था। पाकिस्तान का अमेरिका से सैन्य आपूर्ति प्राप्त करने का मुख्य लक्ष्य भारत को सबक सिखाना था। अमेरिका भी यह जानता था कि पाकिस्तान को साम्यवाद से कोई खतरा नहीं है

---

1 National Security Council P-5409; "United State Policy Toward South Asia", 19 February, 1954.
2 Jawaharlal Nehru Speeches, 1953-57 Vol-3, May 1983, P-319.

परन्तु वह पाकिस्तान की भारत विरोधी भावना का प्रयोग कर पाकिस्तान में सैन्य आधार बनाने का इच्छुक था, जो सोवियत संघ के परिसीमन व दक्षिण एशिया में भारत के प्रभुत्व को नियंत्रित कर सके।

पाकिस्तान द्वारा अमेरिकी शस्त्रों के भारत के विरूद्ध प्रयोग की आशंका के सन्दर्भ में 24 फरवरी 1954 को राष्ट्रपति आइजनहावर ने नेहरू जी को पत्र लिखा कि हम जो कुछ पाकिस्तान को प्रस्तावित कर रहे है और वह जिसके लिए सहमत है, वह किसी भी प्रकार से भारत के विरूद्ध नहीं है और मैं सार्वजनकि रूप से यह सुनिश्चित कर रहा हूँ कि हमारी किसी भी देश को सहायता, जिसमें पाकिस्तान भी शामिल है, का गलत इस्तेमाल किया गया या एक दूसरे पर आक्रमण में इसका प्रयोग हुआ, तो मैं उस आक्रमण के विरूद्ध अपने संवैधानिक अधिकार के तहत संयुक्त राज्य के अन्दर या बाहर तुरन्त उचित कदम उठाऊँगा।[1] इसी प्रकार जॉन फास्टर डलेस ने भी कहा कि मैं सोचता हूँ कि भारत को यह विश्वास होना चाहिए कि इन शस्त्रों का भारत के विरूद्ध किसी आक्रमण में प्रयोग नहीं होगा और पाकिस्तान भी निश्चित रूप से यह जानता है यदि ऐसा हुआ तब उसके अमेरिकी सरकार के साथ अच्छे सम्बन्धों का अंत हो जाएगा। इसके साथ ही साथ संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर के सिद्धान्तों के अनुरूप अमेरिका भारत का समर्थन करेंगा यदि वह किसी सैन्य आक्रमण से पीडित हुआ।[2]

1965 के युद्ध में भारत के साथ युद्ध में पाकिस्तान ने इन शस्त्रों का खुलकर प्रयोग किया और पाकिस्तानी राष्ट्रपति अयूब खान ने कहा भी कि पाकिस्तान को अपने क्षेत्र की सुरक्षा के लिए अपने सभी शस्त्रों के प्रयोग का अधिकार है। भारत की आपत्तियों के बाद अमेरिकी पर्यवेक्षकों ने जम्मू का दौरा करने पर इस बात की पुष्टि की कि पाकिस्तान ने अमेरिकी शस्त्रों का प्रयोग किया है।[3] इसके बाद अमेरिका ने भारत व पाकिस्तान दोनों पर सैन्य सहायता का प्रतिबन्ध लगा दिया भारत को अमेरिका द्वारा आक्रांता व पीड़ित दोनों को एक ही

---

1 "Facts about Sind-Kutch Boundary". Pamphlet Issued by the Indian Embassy in washington drawing attention to use of American arms in the Rann of Kutch, May 1965

2 Ibid

3 Ved Vati Chaturshreni, Indo-US Relations, N. Delhi National Publishing House, P-236

दृष्टि से देखने पर आपत्ति थी। इसी प्रकार 1971 के युद्ध में भी पाकिस्तान द्वारा अमेरिकी शस्त्रों के भारत के खिलाफ प्रयोग को कोई मुद्दा न माना गया और अमेरिका खुलकर पाकिस्तान के साथ रहा तथा अपने नौ सैनिक बेड़े को बंगाल की खाडी में भेज दिया। इस प्रकार शीत युद्ध काल में सामरिक व सैन्य क्षेत्र में अमेरिकी नीति भारत को छलावा देने वाली रही और इसका पाकिस्तान ने राजनीतिक व सामरिक फायदा उठाया।

यदि हम कैनेडी का काल देखे तो उस समय भारत अमेरिका संबंध में पाकिस्तान कारक कुछ कमजोंर हुआ था। कैनेडी पाकिस्तान को दी जा रही विशाल सैन्य सहायता के आलोचक थे। इसके पीछे दो कारण थे, पहला कारण पाकिस्तान का चीन के साथ बढ़ रहा संबंध था तो दूसरा कैनेडी प्रशासन की एशिया नीति थी, जो पूर्व-पश्चिम के देतांत, चीन व सोवियत संघ के बीच वैचारिक विभाजन, भारत-चीन सीमा विवाद आदि से प्रभावित थी। अर्न्तमहाद्विपीय मिसाइलों व पनडुब्बियों के विकास ने सोवियत संघ की परिधि पर भू-क्षेत्रीय सैन्य आधारों के महत्व को कम कर दिया था। कैनेडी का कहना था कि वह न तो मित्रों को छोडना चाहते है न तटस्थों के लिए कोई असहज स्थिति उत्पन्न करना चाहते हैं। उनका यह भी कहना था कि तटस्थों को शत्रु नही समझना चाहिए। इस प्रकार इस समय पाकिस्तान का भारत व अमेरिका संबंध पर प्रभाव कम हुआ।

भारत पर 1962 में चीन के आक्रमण से स्थिति में स्पष्टतः परिवर्तन दिखा। भारत की माँग पर अमेरिका ने उसे सैन्य सहायता दी। इस पर पाकिस्तान ने कहा कि यह सैन्य सहायता हमारी मित्रता पर गहरा प्रभाव डालेगी तथा पाकिस्तान सैन्य गुटों की सदस्यता पर पुनर्विचार करेगा तथा यदि कोई रास्ता न बचा हो तो अपनी सुरक्षा के लिए तटस्थता की नीति अपनाएगा।[1] अमेरिका ने इस आलोचना पर इतना ध्यान न दिया परन्तु पाकिस्तान के चीन की तरफ झुकाव बढने से उसने भारत की सैन्य सहायता में कटौती कर दी और कश्मीर पर बातचीत का भी दबाव डाला।

1 International Studies Journal, Vol-3 No-4, April 1962, India and Pakistan as a factor each other foreign Policy and relations, P-367

1962 के युद्ध के बाद से चीन व पाकिस्तान के संबंध बढ़ने लगे। पाकिस्तान पर अपनी स्वतंत्रता के बाद चीन से संबंध न रखने का अमेरिकी दबाव था। इस दौरान पाकिस्तान की चीन विरोधी नीति के बावजूद चीन भारत के साथ अपने संबंधों की कडुवाहट के कारण पाकिस्तान के भू-राजनीतिक महत्व को समझता था। अतः उसने पाकिस्तान के साथ अपने संबंध को प्राथमिकता दी। 1965 के भारत-पाक युद्ध में साम्यवादी चीन पाकिस्तान के मुख्य समर्थक के रूप में सामने आया। अमेरिका पाकिस्तान की चीन के प्रति बढती मित्रता को लेकर संशकित था, तो सोवियत संघ पाकिस्तान को चीन या अमेरिका की ओर झुकने से रोकना चाहता था। अतः उसने भी पाकिस्तान को सहायता देनी शुरू कर दी तथा कश्मीर के मुद्दे पर भारत का उतना जोरदार समर्थन न किया जितना पूर्व में किया करता था। यह स्थिति भारत के लिए विषम थी क्योंकि दोनों महाशक्तियॉ पाकिस्तान को लुभाने में प्रयासरत् थी। पाकिस्तान इस स्थिति का फायदा भारत के विरूद्ध उठा रहा था। जिसका नकारात्मक प्रभाव भारत-अमेरिका पर दृष्टि गोचर हो रहा था।

1965 के बाद चीन व पाकिस्तान संबंध और बढ़े तथा निक्सन के काल में पाकिस्तान ने अमेरिका व चीन के संबंध बनाने में अहम भूमिका वहन की। इसी कारण बंगलादेश संकट के समय भारत की आपत्तियों के बावजूद अमेरिका ने पाकिस्तान की ज्यादतियों पर ध्यान नहीं दिया। इस प्रकार इस समय अमेरिका, पाकिस्तान व चीन की धुरी ने भारत के समक्ष एक कठिन समस्या पैदा कर दी। इस पर भारत ने व्यवहारिक दृष्टिकोण अपनाते हुए सोवियत संघ के साथ शान्ति मित्रता व सहयोग की संधि कर ली। इस समय भारत व अमेरिका संबंध अपने निम्नतम् स्तर पर पहुॅच गए थे।

1971 के भारत व पाक के युद्ध ने दक्षिण एशिया में भारत की शक्ति को स्थापित किया। इसे अब अमेरिका भी स्वीकारने लगा था। इस दौरान अपनाई गई अमेरिकी नीति असफल रही क्योंकि पाकिस्तान को सभी प्रकार की राजनीतिक सहयोग देकर भी, अमेरिका उसे इस क्षेत्र में एक प्रमुख शक्ति के रूप में स्थापित न कर सका। इसके बाद अमेरिका का ध्यान पाकिस्तान की ओर कम हुआ क्योंकि अमेरिका खाडी क्षेत्र व पश्चिम एशिया में अपनी उपस्थिति को मजबूत करना चाहता

था। इस क्षेत्र में सऊदी अरब के रूप में उसका पुराना सहयोगी था परन्तु वह ईरान को सोवियत संघ के प्रभाव में नहीं जाने देना चाहता था। जिससे उसकी तेल आपूर्ति निश्चित बनी रहे व इस क्षेत्र की राजनीति में उसकी सर्वोच्चता स्थापित रहे। इस कारण से पाकिस्तान इस दौरान अमेरिकी हितों के परिक्षेत्र से बाहर रहा, जिससे भारत व अमेरिका संबंध में इस कारक से कोई विशेष प्रभाव न पड़ा।

ईरान में अमेरिकी नीति असफल रहीं, वहॉ पर राजशाही को हटाकर अयातुल्ला खुमैनी ने 1979 में शासन संभाल लिया। इसके साथ- ही साथ अफगानिस्तान में भी सोवियत संघ का सैन्य हस्तक्षेप हुआ। जिससे एक बार फिर पाकिस्तान अमेरिका के लिए महत्वपूर्ण हो गया तथा शीत युद्ध के इस दूसरे दौर की शुरूआत से ही उसने इस स्थिति का जमकर फायदा उठाया। 1979 में अमेरिका व पाकिस्तान के बीच नाभिकीय अस्त्र को लेकर मतभेद थे परन्तु अफगानिस्तान के घटनाक्रम ने यह सब बदल दिया। राष्ट्रपति कार्टर ने यह कहा कि वह अफगानिस्तान में सोवियत संघ के विरूद्ध चीन व पाकिस्तान के सैन्य हस्तक्षेप को प्रभावी बनाने के लिए चीन व पाकिस्तान का सैन्यीकरण करेंगे। दिसम्बर 1979 में राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार ब्रेजनेस्की ने एक बार पुनः कहा कि अमेरिका पाकिस्तान के साथ 1959 के समझौते के प्रति प्रतिबद्ध है।[1] इसी प्रकार 14 जनवरी 1980 को राष्ट्र के नाम अपने सम्बोधन में राष्ट्रपति कार्टर ने पाकिस्तान को सहायता का वायदा किया, जिससे वह उत्तर से बढ़े खतरे से अपनी स्वतंत्रता व राष्ट्रीय सुरक्षा की रक्षा कर सके। इस प्रकार सीटो व सेन्टो द्वारा दक्षिण एशिया में लाया गया शीत युद्ध अफगान संकट से भारत के मुहाने पर आ खड़ा हुआ और इसने पाकिस्तान को अमेरिका की नीति में अग्रिम पंक्ति का राज्य बना दिया।

अफगान संकट के अतिरिक्त खाड़ी क्षेत्र की स्थिति ने भी इसमें योगदान दिया। ईरान में शाह की सत्ता समाप्त होने से खाड़ी क्षेत्र में अमेरिकी व्यूह रचना का महत्वपूर्ण स्तम्भ गिर गया था। साम्यवाद के परिसीमन में इसकी कमी को पाकिस्तान की सामरिक स्थिति पूरा कर सकती थी। पाकिस्तान ने इसके पूर्व 1950 व 1960 के दशक में ऐसा किया था और वह पुनः इस भूमिका को निभाने के लिए निर्दिष्ट किया गया।

---

1 USICA, Official Text, 1 Jan, 1980.

कार्टर प्रशासन ने पाकिस्तान पर उत्तर से पड़ रहे दबाव को सहन करने के लिए पाकिस्तानी सेना को मजबूत करने के लिए 400 मिलियन डालर की सहायता देने का निश्चय किया।[1] पाकिस्तानी सैन्य शासक जियाउलहक ने इस सहायता की तुलना मूँगफली के दाने से की।[2] उन्होंने कहा कि 400 मिलियन डालर की यह अमेरिकी सहायता पाकिस्तान को सोवियत संघ का शत्रु बना देगी। पाकिस्तान को इससे दस गुना अधिक राशि की आवश्यकता है।[3] अपनी इस मॉग के साथ ही साथ जनरल जिया ने पाकिस्तान को अग्रिम पंक्ति का राज्य कहा और उसे फारस की खाड़ी का पिछला दरवाजा कहा। उनके अनुसार जब तक पिछला दरवाजा सुरक्षित नहीं है, जब तक खाडी सुरक्षित नही है।[4]

इस प्रकार पाकिस्तान ने इस अवसर को अपने सैन्य संसाधन की कमी को पूरा करने के लिए अच्छी तरह प्रयोग किया। अमेरिका में रीगन प्रशासन के आने के बाद पाकिस्तान को दी जा रही सैन्य सहायता में और तेजी आ गयी। कार्टर प्रशासन के समय मंजूर की गई 400 मिलियन डालर की सहायता को रीगन ने बढाकर 3.2 बिलियन डालर कर दिया। इसने भारत को बहुत चिन्तित कर दिया क्योंकि अब तक मिली अमेरिकी सहायता को पाकिस्तान ने 1965 व 1971 के युद्ध में भारत के विरूद्ध ही प्रयोग किया था।

अमेरिका ने अफगानिस्तान में पाकिस्तान के सहयोग की वजह से उसके नाभिकीय कार्यक्रमों को भी अपना अप्रत्यक्ष समर्थन दे रखा था। पाकिस्तान द्वारा नाभिकीय शस्त्र तकनीक व नाभिकीय पदार्थो की तस्करी पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। 1981 में अमेरिकी विदेश मंत्री ने पाकिस्तान को आश्वासन दिया कि अमेरिका पाकिस्तान के प्रति संवेदनाएँ रखता है और उसके नाभिकीय कार्यक्रम नए संबंध में बाधक नहीं होंगे। यह नए संबंध 1970 के दशक के अंत में अफगानिस्तान पर सोवियत हस्तक्षेप से सामने आए थे।[5] इसी प्रकार पाकिस्तान के सैन्य प्रमुख जनरल असलम बेग ने लिखा है कि पाकिस्तान के नाभिकीय कार्यक्रमों की निगरानी के

---

1 Srivastava, V.K. ,The United States and Recent Development in Afghanistan, P-623
2 Washington Post, 18 January 1980
3 The Times of India, 9 March, 1980
4 Zia-Ul-Haq interview with Joseph Kraft of the Los Angelas Times, March 1981
5 K.M. Arif, Working with Zia : Pakistan's Power Politics 1977-78, Karachi : Oxford University Press, 1995, P-341

लिए इस्लामाबाद में एक अमेरिकी रिचर्ड बारलो की नियुक्ति की गई थी। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में बिना किसी भ्रम के लिखा कि पाकिस्तान ने 1987 में नाभिकीय क्षमता प्राप्त कर ली थी। इस रिपोर्ट का काफी प्रचार हुआ। अमेरिका ने इस पर ध्यान नहीं दिया और रिचर्ड के विरूद्ध ही जॉच की प्रक्रिया शुरू हो गयी। इसके पीछे सबसे महत्वपूर्ण कारण यह था कि अफगानिस्तान में सोवियत संघ के विरूद्ध संघर्ष चल रहा था। इसमें पाकिस्तान की प्रमुख भूमिका थी और अमेरिका इस समय पाकिस्तान के साथ राजनीतिक संबंध पर कोई खतरा नहीं चाहता था। इसी कारण बुश प्रशासन ने 1987 से 1989 तक लगातार तीन साल यह प्रमाणित किया कि पाकिस्तान के पास नाभिकीय क्षमता नहीं है।[1]

शीत युद्ध के अंत के बाद बदली हुई परिस्थितियों में पाकिस्तान का पहले वाला महत्व न रह गया। अतः पाकिस्तानी नाभिकीय कार्यक्रम अमेरिकी जाँच परिधि में आया, जिससे रीगन प्रशासन की ही तरह बुश प्रशासन द्वारा सीनेट को पाकिस्तान के पास नाभिकीय अस्त्र न होने का प्रमाण देने की नीति में परिवर्तन आया तथा 1990 में बुश प्रशासन ने प्रथम बार प्रेसलर कानून, जो 1985 में पारित हुआ था, के अन्तर्गत पाकिस्तान पर प्रतिबंध लगा दिया। इस प्रतिबंध के बावजूद बुश प्रशासन ने पाकिस्तान को सैन्य उपकरण बेचे तथा तीन माह तक अमेरिकी कांग्रेस को अंधकार में रखा।

बुश प्रशासन की उक्त गतिविधि से आगे बढ़ते हुए क्लिंटन प्रशासन ने प्रेसलर कानून में ही संशोधन करने का निश्चय किया तथा प्रस्तावित ब्राउन संशोधन के संबंध में कहा कि इसके अन्तर्गत पाकिस्तान को दी गई सैन्य सहायता से दक्षिण एशिया के सैन्य संतुलन पर प्रभाव न पड़ेगा। इस पर भारत ने कहा कि प्रेसलर संशोधन अमेरिका व पाकिस्तान का द्विपक्षीय मुद्दा है। इस द्विपक्षीय संबंध के सुधरने में किसी को आपत्ति नहीं है परन्तु भारतीय जनता के लिए इस समय पाकिस्तान को दी जा रही सैन्य सहायता के कारणों को समझना कठिन है, जिससे उस क्षेत्र में शस्त्र होड़ शुरू हो जाए।[2]

---

1 Chintamani Mahapatra, U.S. Approach to Nuclear Proliferation in South Asia, in Jasjit Singh, ed. Asian Strategic Review, 1992-93, N. Delhi, IDSA, 1993.
2 Indian Express, 10 August, 1996.

अक्टूबर 1995 में ब्राउन संशोधन पास हो गया तथा अमेरिका ने 368 मिलियन डालर की सैन्य सहायता को यह कह कर सही ठहराने की कोशिश की कि इससे पाकिस्तान में अमेरिकी प्रभाव बढ़ेगा और परमाणु अप्रसार के सन्दर्भ में उसको मजबूती मिलेगी। पाकिस्तान में परमाणु अप्रसार के मामले में उपरोक्त अमेरिकी दावों की परीक्षा तब हो गयी जब खुफिया एजेन्सियों ने चीन से 5000 रिंग मैगनेट पाकिस्तान को मिलने की बात कही। ब्राउन संशोधन पर जब कांग्रेस में चर्चा हो रही थी, तब उसे इस रिर्पोट के बारे में नहीं बताया गया। इस पर क्लिंटन प्रशासन ने तर्क दिया कि रिंग मैगनेट खरीद का मामला 1995 में प्रकाश में आया, जबकि पाकिस्तान ने शस्त्रों की खरीद के लिए धन कई वर्षो पूर्व ही दे दिया था।[1] इसके बाद ही 12 जून 1996 को वाशिंगटन पोस्ट में एक रिर्पोट आई कि चीन ने नाभिकीय क्षमता युक्त एम-11 मिसाइलें पाकिस्तान को दी है। इस पर अमेरिका का मत था कि अभी इस पर अमेरिका खुफिया एजेन्सी का कोई अनुमान नहीं है।

इस प्रकार पाकिस्तान ने एक तरह से अमेरिकी नाभिकीय नीति को सफलतापूर्वक परास्त किया और वह कुशलतापूर्वक जटिल अमेरिकी विदेश नीति बनने की प्रक्रिया का लाभ उठाते हुए अपनी गतिविधियों को जारी रखा। इन सब प्रक्रियाओं व घटनाओं ने भारत को चिन्तित कर रखा था क्योंकि इससे भारत व दक्षिण एशिया की सुरक्षा को खतरा था। शीत युद्ध की समाप्ति के बाद भी अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को यह समर्थन अस्वाभाविक था। इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह था कि अमेरिकी नीति निर्माताओं के बीच शीत युद्ध काल में पाकिस्तान समर्थक लोगों का बाहुल्य था और वह अब भी पाकिस्तान के प्रति संवेदना रखते थे। पाकिस्तान ने अमेरिकी व्यवस्था में शुरू से ही लॉबिंग के महत्व को पहचान लिया था और वह उनके द्वारा अपना प्रोपगण्डा कार्यक्रम चालू रखता था, जो नीति निर्माताओं को प्रभावित करने में सक्षम थे। भारत इस मामले में पीछे रहा यद्यपि अब वह भी इसके महत्व को समझ चुका है और वर्तमान में भारत की भी एक बहुत बड़ी व सक्षम लॉबी अमेरिका में मौजूद है।

---

1 Telegraph, 21 March, 1996

क्लिंटन प्रशासन के दूसरे कार्यकाल में भारत के प्रति अमेरिकी नीति में बदलाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। इस दौरान 1998 में भारत व पाकिस्तान द्वारा किए गए परमाणु परीक्षण के बाद दोनों पर अमेरिका ने प्रतिबंध लगा दिया। इसके बाद पाकिस्तान द्वारा कारगिल में अवैध घुसपैठ व संघर्ष के समय भारत को अमेरिकी समर्थन मिला। अमेरिकी दबाव व भारत की कार्यवाही से पाकिस्तान को अपने कदम खीचनें पड़े। इस संकट पर राष्ट्रपति क्लिंटन ने टिप्पणी की थी कि "जिन्होंने खून से सीमा रेखाओं को बदलने की नाकाम कोशिश की है, उन्हें यह दौर कभी माफ नहीं करेगा।"[1] पाकिस्तान पर कश्मीर में हस्तक्षेप व आंतकवाद रोकने के लिए भी दबाव बढ़ना शुरू हुआ। पाकिस्तान में कट्टरपंथी ताकतों के उभरने से उसके नाभिकीय अस्त्रों की सुरक्षा व उससे उत्पन्न खतरों के प्रति अमेरिका भी संशकित है। पाकिस्तान का वर्तमान विश्व व्यवस्था में शीत युद्ध कालीन सामरिक महत्व भी नही है। जिससे अमेरिका का भारत के प्रति झुकाव स्वाभाविक है।

अमेरिका पर हुए आतंकवादी हमले व आफगानिस्तान में जारी संघर्ष के कारण एक बार पुनः अमेरिकी नीति में बदलाव दिख रहा है। पाकिस्तान अमेरिका की आतंकवाद से लड़ने की मुहिम में एक बार फिर महत्वपूर्ण हो गया है। अफगानिस्तान के सन्दर्भ में पाकिस्तान की भूमिका है, जबकि यह सर्वविदित है कि पाकिस्तान आतंकवाद के प्रश्रयदाताओं में एक है। भारत की चिन्ता इस कारण से है कि एक तरफ तो पाकिस्तान अमेरिका को आतंकवाद के खिलाफ सहयोग की बात कर रहा है तो दूसरी ओर वह भारत में सीमा पार से आतंकवाद को प्रोत्साहन दे रहा है। भारत द्वारा अमेरिका से बार-बार उस पर दबाव डालने व उसे आतंकवादी देशों की सूची में डालने की माँग को अमेरिका अपने हित में नजरअंदाज कर दे रहा है क्योंकि इससे उसके अफगानिस्तान अभियान को धक्का लग सकता है। एक बार फिर पाकिस्तान अमेरिकी नीति में 1950, 1960, व 1970 के दशक की तरह ही महत्वपूर्ण हो गया है परन्तु इस बार एक अंतर यह होगा कि अमेरिका भारत को

---

1 India Today, 12 April 2000, P-32

अब नजरअंदाज नहीं कर सकता क्योंकि भारत का सामरिक व आर्थिक महत्व काफी ज्यादा है।

अमेरिका अब इस नीति का अनुपालन कर सकता है कि वह भारत के साथ वह अपने संबंधों को प्रगाढ़ करे तथा पाकिस्तान को भी साथ रखे क्योंकि मध्य एशिया में अमेरिकी उपस्थिति की स्थिति में अफगानिस्तान व पाकिस्तान महत्वपूर्ण है और वह इन पर अपना प्रभाव बनाए रखना चाहता है। दूसरी ओर अमेरिका के लिए भविष्य में प्रमुख चुनौतीकर्ता के रूप में उभर रहे चीन द्वारा पाकिस्तान में अपना प्रभाव बढ़ाने से रोकने के लिए अमेरिका पाकिस्तान को लुभाने का प्रयास करेगा। अभी भी मुस्लिम देशों व खाडी क्षेत्र के परिपेक्ष्य में पाकिस्तान का महत्व है। आतंकवाद के विरूद्ध अमेरिकी मुहिम में ज्यादातर ऐसे देश निशाने पर है जो मुस्लिम बाहुल्य देश हैं। अमेरिका इराक के विरूद्ध कार्यवाही करने को उद्धत है। ऐसे में वह एक प्रमुख मुस्लिम देश, पाकिस्तान, का साथ नहीं छोड़ना चाहेगा क्योंकि उसे अपनी कार्यवाही व नीतियों को मुस्लिम विरोधी सिद्ध होने से बचाना है तथा साथ ही साथ पाकिस्तान पर अपने प्रभाव से इन क्षेत्रों में अपने हितों का संर्वद्धन करना है।

उपरोक्त तथ्यों के कारण अमेरिका खुलकर भारत के पक्ष में नहीं आ रहा है। वह दोनों देशों के साथ अपने संबंध को बनाए रखना चाहता है। पाकिस्तान अमेरिका की इस मजबूरी को अच्छी तरह समझ रहा है और उसे इसका फायदा भी मिल रहा है। अमेरिकी दबाव के बावजूद पाकिस्तान भारत के विरूद्ध अपने परोक्ष युद्ध में कोई कमी नहीं ला रहा है क्योंकि शीत युद्ध काल में उसके द्वारा अपनाए गए प्रोपगण्डे व ब्लैकमेल की नीति ने कारगर काम किया था और वह इस समय भी अमेरिकी मजबूरियों को समझते हुए उसका लाभ उठाना चाहता है। यद्यपि अमेरिका भी पाकिस्तान द्वारा भारत में सीमा पार आतंकवाद फैलाने को स्वीकार कर चुका है। अमेरिकी विदेश विभाग ने कहा है कि अमेरिकी विदेश मंत्री कोलीन पावेल घुसपैठ रूकने के साक्ष्यों को गहराई से देख रहे है। राष्ट्रपति मुशर्रफ ने हाल के दिनों में विदेश मंत्री को इसका व्यक्तिगत आश्वासन दिया है। हम यह चाहते है कि नियंत्रण

रेखा के पार से यह गतिविधियॉ वास्तव में रूकनी चाहिए।[1] पाकिस्तानी राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ ने भी इसे दूसरे शब्दो में स्वीकार किया उन्होंने कहा कि वहॉ (नियंत्रण रेखा) कोई बडी गतिविधि नहीं है तथा सरकार समर्थित गतिविधियॉ भी नहीं है। चूँकि कई जगह सीमा असुरक्षित है, यह एक बहुत ही दुर्गम क्षेत्र है इसलिए कुछ लोगों द्वारा घुसपैठ की सम्भावना से इंकार नहीं किया जा सकता।[2]

इसके साथ ही साथ पहली बार पाकिस्तान ने मदरसों से आतंकवाद फैलने को भी स्वीकार किया तथा 'मदरसा पंजीकरण अध्यादेश 2002' के तहत सरकार से पंजीकरण न कराने वाले मदरसों की मान्यता समाप्त करने तथा सरकारी सहायता से वंचित करने का प्रावधान किया है। पाकिस्तानी सूचना मंत्री के अनुसार इस नियंत्रण प्रणाली को लागू करने का एक उद्देश्य इन धार्मिक स्कूलों को नियंत्रित करना है जो आतंकवाद फैलाते हैं।[3]

उपरोक्त तथ्य भारत के कथन की पुष्टि करते हैं परन्तु अमेरिकी दबाव के बावजूद पाकिस्तानी गतिविधि में कमी न आना भारत के लिए चिन्ता का विषय है। भारत व पाकिस्तान दोनों के नाभिकीय शक्ति से सम्पन्न होने तथा भारतीय संसद पर आक्रमण के बाद सीमा पर तैनात सेना व इससे बढ़े तनाव ने अमेरिका की इस क्षेत्र में भूमिका को बढ़ा दिया है, जो अमेरिकी उच्चस्तरीय दल के इस क्षेत्र में बार-बार दौरे से स्पष्ट है। ब्रूकिंस इंस्टीट्यूशन के स्टीफन कोहेन कहते है, ''दक्षिण एशिया में रचनात्मक भूमिका निभाने का यही मौका है, हमें पाकिस्तान और भारत दोनों देशों ने इस मुददे (कश्मीर) को हल करने में मध्यस्थता के लिए कहा है-पाकिस्तान की तुलना में भारत ने अप्रत्यक्ष तरीके से कहा कि अमेरिका की मध्यस्थता में पाकिस्तान के साथ बातचीत संभव है।''[4] अमेरिकी विदेश विभाग के अधिकारी इस राय से सहमत हैं, मगर वे 'मध्यस्थ' कहलाने से बचना चाहते हैं। यह तो स्पष्ट है कि अमेरिका की कोई अप्रत्यक्ष भूमिका विशेषकर कश्मीर के सन्दर्भ में भारत को स्वीकार न होगी परन्तु अमेरिका के प्रभाव से इंकार भी नहीं किया जा सकता।

---

1 The Times of India, 30 May 2002.
2 Dainik Jagran, 21 August 2002.
3 Dainik Jagran, 21 June 2002.
4 India Today, 16 January, 2002

पाकिस्तान में कट्टरवाद के उभार से अमेरिका उस पर अपना प्रभाव बनाए रखना चाहेगा क्योंकि अस्थिरता व कट्टरवाद नाभिकीय अस्त्रों के सन्दर्भ में बहुत खतरनाक है। अक्टूबर 2002 में पाकिस्तान के चुनावों में कट्टरवादियों की जीत अमेरिका को मुशर्रफ का और मजबूती से समर्थन करने को मजबूर करेगी। अमेरिका की यही सोच भी है कि मुशर्रफ ही एकतात्र ऐसे पाकिस्तानी नेता हैं जो देश की फौज और राजनीतिक प्रतिष्ठान में घर कर रहे इस्लामी आतंकवाद व कट्टरवाद का पूरी तरह सफाया कर सकते है।[1] इन्ही सब कारणों से अमेरिका ने पाकिस्तान की परमाणु विस्फोट से तंग हुई अर्थव्यवस्था व कर्ज के बोझ को कम करने के लिए आर्थिक सहायता दी है। बुश प्रशासन द्वारा पाकिस्तान को एक अरब डालर के अमेरिकी कर्ज से मुक्ति की योजना प्रस्तावित है।[2] भारत इस अमेरिकी नीति को दोहरे मापदण्ड वाली नीति मानता है।

अमेरिका के तात्कालीन हित में पाकिस्तान की भले ही अहमियत हो, उसके दूरगामी हित भारत से ही जुड़े हैं। इस तथ्य को समझतें हुए ही भारत व अमेरिका ने कहा है कि अब इनके द्विपक्षीय संबंधों पर पाकिस्तानी कारक का प्रभाव नहीं पड़ेगा।

(IV) चीन का प्रभाव :

भारत-अमेरिका संबंध में पाकिस्तानी घटक की ही तरह चीनी घटक भी बहुत महत्वपूर्ण हैं परन्तु यह पाकिस्तानी घटक से ज्यादा जटिल हैं क्योंकि पाकिस्तान की नीति भारत से सीधे टकराव वाली रहती है तथा उसकी प्रतिरक्षा की समस्या अधिकाशतः भारत के विरूद्ध प्रतिरक्षा की समस्या है। वहीं चीन भारत को परिसीमित करने के लिए अप्रत्यक्ष तरीकों का प्रयोग करता है। ट्रूमैन प्रशासन द्वारा साम्यवाद के परिसीमन की नीति में भारत के लोकतांत्रिक देश होने के कारण स्वाभाविक रूप से भागीदारी की आशा की गई परन्तु साम्यवाद के प्रति भारत का दृष्टिकोण भिन्न था। इस कारण एशिया की प्रमुख भू-राजनीतिक घटनाओं के प्रति भारत व अमेरिका में कोई सामरिक समझ न बन पाई।

---

1 India Today, 16 January, 2002
2 Dainik Jagran, 7 November 2002

स्वतंत्रता के बाद भारत सभी देशों के साथ स्वाभाविक मित्रवत् संबंध रखना चाहता था। भारत की यह सोच थी कि चीन के साथ उसकी अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर एक प्रमुख शक्ति बनने की संभावना है। इस कारण अक्टूबर 1949 में चीन में साम्यवादी क्रान्ति का भारत ने स्वागत किया। गैर साम्यवादी देशों में भारत ही पहला देश था, जिसने चीन को राजनयिक मान्यता प्रदान की। अमेरिका की नाराजगी की कीमत पर भी भारत ने कोरिया युद्ध में चीन का समर्थन किया तथा संयुक्त राष्ट्र संघ में उस प्रस्ताव का विरोध किया, जिसमें चीन को आक्रान्ता घोषित किया गया था। सितम्बर 1950 में सेनफ्रांसिस्कों में 49 राष्ट्रों के साथ होने वाली जापानी संधि में चीन के शामिल न होने से भारत भी शामिल नहीं हुआ। भारत ने अमेरिका द्वारा चीन को अर्न्तराष्ट्रीय सम्मेलनों व संस्थाओं में उचित स्थान न देने की नीति की आलोचना की। भारत ने चीन के साथ अपने संबंधों को और प्रगाढ़ता देने के उद्देश्य से 29 जून 1954 को एक 8 वर्षीय समझौता किया जिसके अन्तर्गत भारत ने तिब्बत से अपने अतिरिक्त देशीय अधिकार को चीन को सौप दिया। इस समझौते की प्रस्तावना में ही पंचशील के सिद्धान्तों की रचना की गयी थी।

तिब्बत पर चीन के साथ समझौते के सन्दर्भ में नेहरू जी ने लोकसभा में कहा था कि पिछले युद्ध के बाद से विश्व में बड़े परिवर्तन हुए है। इनमें से एक चीन का अभ्युदय है। कुछ समय के लिए यह भूल जाइए कि वह साम्यवादी या उससे मिलती जुलती नीति का अनुसरण करता है, तो यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि चीन एक महान शक्ति है।......भारत औद्योगिक रूप से चीन से ज्यादा विकसित है तथा भारत के पास ज्यादा संचार व परिवहन सुविधा है। इसमें संदेह नही कि चीन तेजी से विकसित होगा उसमें और शक्तिशाली होने की संभावना है। कुछ देर के लिए तीन बड़े देशों अमेरिका, सोवियत संघ व चीन को छोड़ दिया जाए तो विश्व में और भी देश हैं जो अपनी प्रमुखता रखते हैं। यदि आप भविष्य की ओर देखे तथा युद्ध या इसके जैसा कुछ घटित न हो तो निश्चय ही भारत विश्व का

चौथा देश होगा।[1] इस प्रकार भारत चीन के साथ एक प्रमुख शक्ति की भूमिका वहन करने को इच्छुक था।

अमेरिका साम्यवाद के परिसीमन व चीन की विस्तारवाद की नीति को समझते हुए भारत, चीन से सामरिक खतरे के सन्दर्भ में, अमेरिका से सहयोग कर सकता था परन्तु वह छलावे में रहा। भारत को चीन के विरूद्ध प्रतिरोधक के रूप में प्रयोग करने के विषय में राष्ट्रपति आइजनहावर ने कहा था कि भारत ने साम्यवाद के विरोधी के रूप में पश्चिम के साथ सहयोग की इच्छा कभी नही दिखाई, जैसा कि जापान ने किया। हम प्रतिरोधक के सन्दर्भ में बात नहीं कर सकते यदि प्रभावित देश प्रतिरोधक होने से इंकार करे।[2]

पचास के दशक में चीन के साथ भारत के सहयोग की नीति ने अमेरिका को अप्रसन्न किया। साठ के दशक में भारत-चीन संघर्ष के समय भारत ने सहायता के लिए अमेरिका से सम्पर्क किया और उसे सैन्य सहायता भी मिली जिसकी प्रशंसा हुई परन्तु इसका युद्ध के परिणाम को प्रभावित करने में कोई प्रयोग न था।[3] इस समय भारत को सहायता देने में अमेरिका ने दोमुहँपन अपनाया। एक तरफ तो वह चीन की शक्ति को सीमित करना चाहता था तो दूसरी तरफ वह भारत के शत्रु पाकिस्तान को भी अप्रसन्न नहीं करना चाहता था। अतः उसने मुख्यतः हल्के अस्त्र व शस्त्र तथा संचार उपकरण दिए जो पहाड़ी युद्ध में लाभदायक थे परन्तु जिनका पाकिस्तान के विरूद्ध प्रयोग नहीं किया जा सकता था।[4] इस सहायता के एवज में अमेरिका ने पाकिस्तानी दबाव में कश्मीर पर भारत पर समझौते का दबाव डाला। जेन०एस० विल्सन के अनुसार अमेरिका साम्यवाद के विस्तार के खतरे को पहचानता था परन्तु वह भारत के विरोधी पाकिस्तान से संबंध के कारण भारत में प्रमुख भूमिका निभाने के लिए इच्छुक न था। इसके साथ ही साथ चीनी खतरे से पूरी तरह निपटने के लिए बहुत अस्त्र-शस्त्र की आवश्यकता पडती जो अमेरिकी

---

1 Jawaharlal Nehru Speeches, 1953-1957, Vol. 3, Publication Division , Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, Third editon, May 1983, P-264.
2 Dennis Kux, India and the United State Estranged Democracies, 1941-1991 Washington DC: National Defence University Press, 1992, P-164.
3 Quoted in Chintamani Mahapatra, Indo-U.S. Relations into the 21st Century, 1998, P-65.
4 Dennis Kux, India and the United States: Estranged Democracies, 1941-1991, Washington D.C.: National Defence University Press, 1992, P-206

करदाताओं पर एक बडा भार होता।[1] इस प्रकार चीन से अपने विरोध के कारण अमेरिका ने भारत की सहायता तो की परन्तु पाकिस्तान से उसके संबंधों के कारण यह सहायता सीमित ही रही।

1962 के भारत-चीन युद्ध का एक परिणाम यह भी सामने आया कि पाकिस्तान ने भारत से अपने विरोध के कारण चीन से हाथ मिलाया और कारकोरम क्षेत्र चीन को दे दिया। अतः 1965 के भारत पाक युद्ध में चीन का सहयोग पाकिस्तान को रहा। अमेरिका ने पाक व चीन के संबंध को, चीन व सोवियत संघ के बीच पड़ी दरार के कारण सोवियत संघ के विरूद्ध चीन को अपने पक्ष में करने में भुनाया। निक्सन ने पाकिस्तान के सहयोग से चीन से अमेरिकी संबंध सुधारें और अमेरिका की सहमति से 26 अक्टूबर 1971 को चीन संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता मिली और जनवरी 1979 में अमेरिका ने चीन को मान्यता देते हुए सामान्य कूटनीतिक संबंध बना लिया। इस समय अमेरिका-चीन व पाकिस्तान की धुरी भारत के लिए परेशानी का कारण बनी।

अमेरिका ने अफगान संकट के कारण चीन व पाकिस्तान को पूरा प्रोत्साहन दिया और चीन द्वारा पाकिस्तान को नाभिकीय व मिसाइल प्रौद्यौगिकी देने के मुद्दे पर आँख बंद रखी। यह भारत के सामरिक हितों के खिलाफ था। चीन एशिया में एक शक्तिशाली सैन्य ताकत है। यद्यपि तकनीक व गुणवत्ता के मामले में इसकी अमेरिका से तुलना ठीक नहीं है परन्तु पड़ोसियों व अन्य एशियाई देशों की तुलना में उसकी सैन्य क्षमता बहुत महत्वपूर्ण है। अतः भारत को परिसीमित करने की चीन की नीति भारत के लिए चिन्ता का कारण रही है और अमेरिका व चीन के संबंध इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण हैं।

शीत युद्ध के अंत के बाद अमेरिका व चीन के संबंधों में परिवर्तन की संभावना बढ़ी तथा अमेरिका ने उसे संभावित खतरा माना। तियनानमन चौक की घटना ने भी दोनों में तनाव उत्पन्न किया परन्तु खाड़ी युद्ध में चीन के समर्थन व राष्ट्रपति क्लिंटन द्वारा चीनी बाजार को देखते हुए आर्थिक पक्ष को महत्व देते हुए

1 Jane S. Wilson, The Kennedy Administration and India, in Harold A. Gould and Sunit Ganguly ed. The Hope and the Reality, Boulder, San Francisco, Westview Press, 1992, P-56-57

चीन से टकराव की जगह व्यापक सहयोग की नीति अपनाई गई और उसे सबसे पसंदीदा देश (MFN) का दर्जा दिया गया। इस दौरान चीन द्वारा पाकिस्तान को नाभिकीय सहायता देने जैसी महत्पूर्ण घटना को महत्व नहीं दिया गया। जबकि अमेरिका परमाणु अप्रसार के प्रश्न पर भारत पर अपना शिंकजा कस रहा था। यह घटनाक्रम भारत व अमेरिकी संबंधों में खटास पैदा कर रहा था।

चीन व पकिस्तान के बीच सहयोग व उस पर अमेरिकी दृष्टिकोण भारत के लिए चिन्ता का कारण है। राष्ट्रपति क्लिंटन के ब्राउन संशोधन पर हस्ताक्षर करने के साथ ही यह रिपोर्ट प्रकाश में आई कि 1995 में चीन ने पाकिस्तान में क्वेटा स्थित शोध प्रयोगशाला को 5000 रिंग मैगनेट बेंचे हैं। अमेरिकी खुफिया एजेसियों के अनुसार यह मैगनेट पाकिस्तान की नाभिकीय शस्त्र में प्रयोग के लिए यूरिनियम संवर्द्धन क्षमता दुगनी कर सकते हैं। चीन व पाकिस्तान के बीच नाभिकीय शस्त्र की डिजाइन का हस्तांतरण अस्सी के दशक के शुरूआत से ही चल रहा था परन्तु उस समय चीन ने परमाणु अप्रसार संधि (NPT) पर हस्ताक्षर नहीं किया था। 1992 में इस संधि पर हस्ताक्षर के बाद भी चीन ने पाकिस्तान का इस क्षेत्र में सहयोग किया, जो इस संधि का खुला उल्लघंन था।

अमेरिकी विदेश मंत्रालय ने शुरू में यह माना कि यह सौदा अमेरिकी शस्त्र निर्यात नियन्त्रण एक्ट का उल्लंघन है जिसके अन्तर्गत राष्ट्रपति एक गैर नाभिकीय शक्ति वाले देश को नाभिकीय अस्त्र बनाने में मदद करने पर प्रतिबंधित कर सकते हैं।[1] इसके बाद एक्जिम बैंक से कहा गया है कि 23 मार्च 1996 तक चीन को निर्यात करने वाली अमेरिकी कंपनियों को कोई वित्तीय सहायता स्वीकार न की जाय। दूसरी ओर अमेरिकी प्रशासन इस प्रतिबंध को समाप्त करने में सहयोगी कारणों को खोज रहा था। उनका कहना था कि हम ऐसी सूचनाओं को देख रहे हैं जो चीन को इससे मुक्त करने के सहायक हो तथा इसमें भविष्य में ऐसे किसी हस्तांतरण को न करने का आश्वासन भी शामिल है।[2]

---

1 Arms control Reporter, 1996
2 Washington post, 28 February 1996

इस रिपोर्ट के प्रकाश में आने के बाद भी अमेरिका ने पाकिस्तान को ब्राउन संशोधन के तहत अस्त्र बेचें। इस पर सीनेटर प्रेसलर ने कहा कि हमारे पास अब कोई अप्रसार नीति नहीं रह गई है। इस पर सीनेटर ब्राउन का कहना था कि पाकिस्तान अमेरिका का सहयोगी है जो कई वर्षो से उसके साथ है। हमें उसका धन लौटा देना चाहिए या सामान को दे देना चाहिए। इस मुद्दे पर अमेरिकी कमजोरी पहचानते हुए चीन ने अमेरिका की इस मॉग को ठुकरा दिया कि भविष्य में ऐसे संवेदनशील तकनीक के हस्तांतरण से चीन को दूर रहना चाहिए। इसके बाद क्लिंटन प्रशासन के उच्च अधिकारियों ने रिंग मैगनेट मुद्दे पर बैठक की इसमें यह कहा गया कि इस सौदे का वित्तीय मूल्य बहुत कम था तथा अन्तर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों ने इसे प्रतिबंधित सूची में नही डाला था, जिससे चीनी नेता सौदे के समय अनभिज्ञ थे।[1] इस बैठक के बाद यह कहा गया कि विदेश विभाग के साथ हमारी आगे बातचीत नहीं हुई है........अतः हम चीन के साथ नए व्यापार पर विचार करेंगे।[2]

यह सब चीन व पाकिस्तान पर प्रतिबंध को बचाने के तर्क थे। इसके बाद 3 अप्रैल 1996 को वाशिंगठन टाइम्स ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि सी०आई०ए० के पास साक्ष्य है कि चीन ने पाकिस्तान के प्लूटोनियम संवर्द्धन संयंत्र को टेकनीशियन्स व उपकरण सप्लाई किए है। 15 अप्रैल 1996 को वाल स्ट्रीट जर्नल में भी रिपोर्ट प्रकाशित हुई परन्तु क्लिंटन प्रशासन ने कोई कार्यवाही न की। यह कहा गया कि चीनी सरकार इस सौदे से अनभिज्ञ थी और चीनी अधिकारियों ने भविष्य में ऐसा न करने व अमेरिका से निर्यात नियंत्रण नीति पर बातचीत पर सहमति जताई है। अमेरिका के आधिकारिक वक्तव्य में कहा गया है कि इसका पर्याप्त आधार नही है कि प्रतिबंध लायक गतिविधि 1994 के नाभिकीय प्रसार एक्ट की धारा 825 के अन्तर्गत की गई है।[3]

इसके बाद एक और सूचना यह आई है कि चीन ने एम-11 मिसाइल के

1 Washington post, 27 March, 1996.
2 Washington Times, 27 March, 1996.
3 Arms Control Reporter, 1996.

पुर्जे 1994 के बाद पाकिस्तान को बेंचे हैं। यह उल्लेखीनय है कि 1991 व 1993 में एम-11 मिसाइल प्रकरण में ही चीन को दंडित किया गया था। इस बात की पुष्टि के बाद चीन व पाकिस्तान पर मिसाइल टेकनोलॉजी कंट्रोल रिजीम (MTCR) के अन्तर्गत प्रतिबंध लगाया जा सकता था। इस मिसाइल से अमेरिकी सुरक्षा को कोई खतरा न था। अतः अमेरिकी उदासीनता स्वाभाविक थी परन्तु दक्षिण एशिया की सुरक्षा व शस्त्र होड के सन्दर्भ में यह ठीक न था। इस समय तक पाकिस्तान ने अपने को नाभिकीय ताकत से युक्त घोषित नहीं किया था परन्तु इसके बारे में सबको अच्छी तरह मालूम था। यह भारत की सुरक्षा के लिए एक गंभीर खतरा था तथा यह चीन की भारत के परिसीमन के नीति के तहत किया जा रहा था। इस पर अमेरिका द्वारा कार्यवाही न करना इसमें उसके अप्रत्यक्ष सहयोग को दिखाता था।

अमेरिकी नीति का विरोधाभास भारत के प्रति देखने को मिलता है जब उसने भारत के 'इसरो' व रूस के 'ग्लोकॉसमास' पर भारत-रूस क्रायोजेनिक इंजन सौदे के कारण प्रतिबंध लगाया दिया। जबकि यह सौदा भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम के लिए था। ऐसा ही विरोधाभास भारत के स्वदेशी मिसाइल कार्यक्रम के बारे में भी देखने को मिलता है।

अमेरिका द्वारा पाकिस्तान के मिसाइल कार्यक्रम में अप्रत्यक्ष सहयोग का उदाहरण अगस्त 1996 में प्रकाशित एक रिपोर्ट में मिलता है। इसके अनुसार पाकिस्तान चीन के सहयोग से एक गुप्त संयंत्र, मध्यम दूरी के मिसाइल निर्माण के लिए बना रहा था। इसका निर्माण 1995 से शुरू हुआ तथा अमेरिकी एजेंसियों को इसकी खबर थी। इसके बावजूद जुलाई 1996 में नाभिकीय अस्त्रों के निर्यात पर चीन से बात करते समय इस मुद्दे को नहीं उठाया गया। इस पर अमेरिकी विदेश मंत्रालय का कहना था कि वह एक मुद्दे को अपने संबंध को समाप्त करने की छूट नही दे सकते और वह यह भी छूट नही दे सकते कि किसी एक मुद्दे पर असहमति कूटनीतिक संबंधों की समाप्ति का कारण हो। इसके साथ ही साथ अमेरिका का यह भी मत था कि वह इस आरोप को गंभीरता से ले रहा है कि चीन, ईरान व पाकिस्तान के साथ आपत्तिजनक व्यापार में लिप्त है। अमेरिकी मत के अनुसार वह अभी पूर्ण रूप से निश्चित नहीं है कि चीन ने किसी वायदे का

उल्लंघन किया है कि नहीं, जो उसने अमेरिका या अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के किसी सदस्य से किया हो।[1] इस प्रकार अमेरिकी विदेश मंत्रालय ने अमेरिकी खुफिया एजेन्सियों के अनुमान व निष्कर्ष को आरोप कह दिया और उसे महत्वपूर्ण नहीं माना।

इसके बाद अप्रैल 1997 में यह रिपोर्ट प्रकाश में आई कि चीन अमेरिकी उपकरणों को आयुध कंपनियों में प्रयोग कर रहा है। जून 1997 में यह प्रकाश में आया कि चीन द्वारा अमेरिका से खरीदे 47 सुपर कम्प्यूटर में से ज्यादातर को सैन्य आयुध के विकास में प्रयोग किया जा रहा है। इसके बावजूद क्लिटन प्रशासन ने इन प्रमाणों को अमेरिका चीन व्यापारिक संबंध के कारण नजरअंदाज किया जबकि भारत के प्रति रूख कड़ा था।

राष्ट्रपति क्लिंटन ने जनवरी 1998 में कहा कि चीन गैर परमाणु अस्त्र सम्पन्न देशों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विस्फोटक उपकरण या पदार्थ को पाने में कोई मदद नही कर रहा है न करेगा। इसके एक माह के अंदर ही पाकिस्तान ने गौरी मिसाइल का परीक्षण किया, जिसमें चीन का हाथ संभावित था। दो अमेरिकी कंपनियों 'लारेल स्पेस एंण्ड कम्यूनिकेशन' और 'ह्यूज इलेक्ट्रानिक्स' ने चीन के अंतरिक्ष कार्यक्रम व राकेट गाइडेंस सिस्टम के लिए महत्वपूर्ण आंकड़े व सूचना उपलब्ध कराई। पेंटागन ने जाँच के बाद इसे अमेरिकी सुरक्षा के लिए खतरा बताया तथा न्याय विभाग ने इसकी अपराधिक जॉच शुरू की। इसके बावजूद क्लिंटन प्रशासन ने लारेल को दूसरे चीनी उपग्रह में मदद करने को कहा। इसके साथ ही साथ इस क्षेत्र में और कंपनियों के अनुमोदन के लिए प्रक्रिया को सरल करने के रास्ते खोजे गए तथा लाइसेंस अनुमोदन की प्राथमिक जिम्मेदारी विदेश विभाग से कामर्स विभाग को दे दी गई।[2]

अमेरिका के पास एक बार फिर अपनी खुफिया एजेंसियों की रिपोर्ट है, जिसके अनुसार चीन पाकिस्तान को नाभिकीय क्षमता युक्त लम्बी दूरी की मिसाइल निर्माण में मदद कर रहा है। चीन पाकिस्तान को स्पेशल स्टील, गाइडेंस सिस्टम् व तकीनीकी

---

1 Washington Times, 27 November, 1996

2 New York Times, 15 April, 1998

विशेषज्ञता प्रदान कर रहा है। इसके साथ-साथ चीन पर यह भी आरोप है कि उसने लॉस एलामोस राष्ट्रीय प्रयोगशाला से गुप्त नाभिकीय सूचनाएँ चुराई। इसके बावजूद राष्ट्रपति क्लिंटन का कहना था कि हम अपनी नीति को इस प्रकार नहीं बदलेंगे कि चीन विश्व मंच पर अलग-थलग पड़ जाए, जबकि चीन ने लोगों को समाज के सुधार व बेहतर भविष्य के लिए शक्ति देनी शुरू कर दी है। क्लिंटन का यह भी कहना था कि चीन की हमारे बाजार में गहरी पैठ है। विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता के साथ चीन, उसके साथ आई जिम्मेदारियों को उठाएगा। जिससे हमें चीन बाजार के और बड़े भाग में प्रवेश में आसानी होगी।[1]

इस प्रकार क्लिंटन प्रशासन में चीन के साथ नाभिकीय या अन्य सामरिक मुद्दे पर आर्थिक पक्ष ने अग्रता प्राप्त कर ली थी। जो भारत की सामरिक स्थिति व सुरक्षा परिदृश्य को देखते हुए खतरनाक थी। क्लिंटन प्रशासन के बाद आये बुश प्रशासन में स्थिति बदली और चीन को सामरिक प्रतिद्वन्दी के रूप में देखा जाने लगा है। सामरिक दृष्टिकोरण से इस पहलू का विश्लेषण अगले अध्याय में है। अमेरिकी नौ सेना के टोही विमान व चीन जेट विमान के टकराकर दुर्घटनाग्रस्त होने व ताइवान को अमेरिकी सैन्य उपकरण की आपूर्ति ने अमेरिका व चीन के संबंध में खटास पैदा की है। इसके साथ ही साथ अमेरिका पाकिस्तान पर चीनी प्रभाव को कम करने के लिए प्रयासरत है।

चीन के विरूद्ध भारत के सामरिक महत्व को देखते हुए अब भारत को अमेरिकी नीति में प्रमुखता मिलनी ही चाहिए। चीन के सन्दर्भ में परमाणु अप्रसार की अमेरिकी नीति ने ही चीन की सैन्य व आर्थिक ताकत को बढ़ाया इसके साथ ही साथ उसके पड़ोसियों की शक्ति में भी वृद्धि हुई। जिसने भारत की सुरक्षा हितों को चोट पहुँचाई है। अतः अब भारत व अमेरिका को चीनी साम्राज्यवादी राज्य व्यवस्था को देखते हुए तथा राजनीतिक व सामरिक सुरक्षा को दृष्टिगत रखते हुए आपसी समझ को विकसित करना है जिसे अब दोनों देशों में मान्यता भी मिल रही है।

---

1 CNN. Com, 7 April 1999

(V) आतंकवाद का प्रभाव :

आतंकवाद कोई नया विषय नहीं है। 20वीं शताब्दी के अंत तक इसने गंभीर रूप धारण कर लिया तथा 21 वीं शताब्दी के महत्वपूर्ण विषयों में से एक हो गया। अमेरिकी राष्ट्रपति क्लिंटन ने कहा कि 21 वीं शताब्दी की सबसे बड़ी समस्या आतंकवाद है। आतंकवाद शब्द का प्रथम बार प्रयोग फ्रांसीसी क्रान्ति (1789-1799) के समय किया गया। अन्तर्राष्ट्रीय मतभेदों के सन्दर्भ में आतंकवाद का दृष्टिकोण मध्य पूर्व में 1948 में इज़राइल के गठन के बाद से सामने आता है। वर्तमान में इस आतंकवाद का फैलाव विश्व के प्रत्येक भाग में हो चुका है। इस दौरान इसके रूप में भी व्यापक बदलाव आया है।

आतंकवाद के अन्तर्राष्ट्रीय रूप धारण करने से चिन्तित संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1972 में प्रथम बार इसको सीमित व समाप्त करने के उद्देश्य से प्रस्ताव लाया गया। शीत युद्ध के दौरान दोनों महाशक्तियों ने प्रत्यक्ष युद्ध तो नहीं किया परन्तु अपने हित साधन में विशाल धनराशि को अस्त्र-शस्त्र व सामूहिक नरसंहार के साधनों पर खर्च किया। इस काल में लक्ष्य प्राप्ति के लिए आतंक फैलाने की नीति ने राज्य प्रायोजित आतंकवादी समूहों को अस्तित्व में ला दिया। इन समूहों के साथ-साथ वर्तमान में धार्मिक कट्टरवादी समूहों के उभार ने इस आतंकवाद को नया रूप दिया है और सामूहिक नरसंहार के हथियारों के इन समूहों के पास पहुँचने से आतंकवाद के पुराने दृष्टिकोण को नया आयाम मिला है।

यह आतंकवाद 21 वीं शताब्दी में पूरे विश्व के साथ-साथ भारत-अमेरिका के बीच भी बहुत महत्वपूर्ण है। भारत तो अपने स्वतंत्रता के बाद से ही आतंकवाद से ग्रसित हो गया था। भारत में आतंकवाद में पड़ोसी देशों की भागीदारी व इसको रोकने में अपेक्षित अमेरिकी सहयोग न मिलना भारत-अमेरिका के बीच मतभेद को उभारता रहा।

भारत में आतंकवाद के दो पहलू महत्वपूर्ण है। पहला पहलू 'राजनीतिक आतंकवाद' है, जिसमें भारत के आन्तरिक मतभेद को द्वेषपूर्ण पड़ोसी देश स्वयं के संघर्षो को छिपाने व नागरिकों का ध्यान बँटाने के लिए अथवा भारत के साथ अपने

मतभेदों के कारण अपने समर्थन से प्रेरित करते रहे हैं। इसके उदाहरण है-नागाओं और मिजों को चीन की सहायता तथा पंजाब व कश्मीर के आतंकवाद में पाकिस्तान हाथ। अब पाकिस्तानी भारत के उत्तर-पूर्वी राज्यों में भी आतंकवादी गतिविधियों को प्रोत्साहन दे रहा है तथा पाकिस्तान की आई०एस०आई० संस्था बंगलादेश व नेपाल से भी इन आतंकवादी संगठनों का संचालन कर रही है। इस 'राजनीतिक आतंकवाद' का ही रूप 'अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद' भी है। दूसरा पहलू 'धार्मिक कट्टरवादी शक्तियों का आतंकवाद' है। एक 'इस्लामी अधेन्द्र' (Islamic Crescent) सऊदी अरब से इंडोनेशिया तक फैला हुआ है। जो भारत को अपने बीच का बेजोड़ राज्य समझते हैं। पाकिस्तान के 'इस्लामी बम' की घोषणा के बाद यह इस्लामी धारणा ईरान की क्रान्ति से और अधिक बढ़ गयी तथा इसे अफगानिस्तान के तालिबानी शासन से पूर्ण प्रोत्साहन मिला।

आतंकवाद में धार्मिक कट्टवाद का अंश आ जाने से अब अमेरिका भी सीधे इसकी चपेट में आ गया है। 'टेरर 2000 रिपोर्ट' के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद अमेरिकी किनारे तक पहुँच गया है और जिसका संभावित लक्ष्य अमेरिकी वित्तीय केन्द्र होंगे। अमेरिका के वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हमले के बाद यह आशंका सही साबित हुई। द्वितीय विश्व युद्ध की पर्ल हार्बर घटना के बाद यह अमेरिकी धरती पर पहला हमला था और यह अमेरिका की मुख्य भूमि पर हुआ। जबकि पर्ल हार्बर अमेरिका की मुख्य भूमि से दूर स्थित था। इस घटना के बाद विश्व मंच पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा और पहले से ही आतंकवाद से पीड़ित भारत के साथ इस मुद्दे पर अमेरिका की व्यापक सहमति की संभावना दिखी।

भारत में पंजाब राज्य में पाकिस्तान द्वारा आतंकवाद में मदद से 1980 के दशक में एक घिनौना खेल शुरू हुआ। इस दौरान अमेरिका में स्वतंत्रता के वातावरण व मानवावधिकार के नाम पर आतंकवादियों को मिले समर्थन से, जिसमें अमेरिका में पाकिस्तानी कॉकस का महत्वपूर्ण योगदान था, भारत को पंजाब के आतंकवाद को समाप्त करने में दिक्कत आ रही थी। यद्यपि बाद में सुरक्षा बलों व प्रशासन की रणनीति से 1994 तक पंजाब में आतंकवाद समाप्त हो गया था उल्लेखनीय है पंजाब के आतंकवाद का जनसमर्थन भी समाप्त हो गया था जिसके कारण भी आतंकवादी हतोत्साहित हुए थे।

पाकिस्तान ने भारत के साथ अपने परोक्ष युद्ध को जारी रखते हुए 1989 में कश्मीर में आतंकवाद की शुरूआत कर दी। कश्मीर में आम लोगों का नरसंहार, मुम्बई बमकांड, कांधार विमान अपहरण, कालू चक नरसंहार, विभिन्न मदिरों में हुए हमले व संसद पर हमला आदि भारत में बढ रहे आतंकवाद के कुछ उदाहरण है।

शुरू में अमेरिका ने कश्मीर की घटनाओं को आतंकवाद की श्रेणी में नही रखा तथा इसे घरेलू व आतंरिक समस्या कहा। इस सोच के पीछे अमेरिका की पूर्व में कश्मीर नीति व आतंकवाद के सन्दर्भ में उसकी नीति रही। अपनी आतंकवाद विरोधी नीति के अन्तर्गत अमेरिका ने अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद व घरेलू आतंवाद नामक विभाजन कर रखा था और उसने कश्मीर को दूसरी श्रेणी में रखा तथा अपने हितों पर चोट पहुँचाने वाली घटनाओं को अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की श्रेणी में रखा। अमेरिका ने इस आतंकवाद की समाप्ति के लिए सभी प्रकार के अधिकारों, जिसमें उसके पोषक राज्य पर आक्रमण भी शामिल था, को अपने पास सुरक्षित रखा।

1970 के दशक के अंत से 1990 के दशक के मध्य तक अमेरिका की आतंकवाद विरोधी प्राथमिक नीति यह थी कि उस शासन को लक्ष्य बनाया जाए जो आतंकवादी संगठनों को सहायता देते हो या जिनकी भूमि का आतंकवादी प्रयोग करते हो। इसके लिए अमेरिका आर्थिक प्रतिबंध, सैन्य बल का प्रयोग, कूटनीतिक प्रयोग आदि का इस्तेमाल करता था। इस नीति के नकारात्मक पहलू को 1996 के मध्य में अमेरिका ने जाना और उसने किसी शासन को लक्ष्य करने के बाजाए आतंकवादी संगठन और व्यक्तिगत आतंकवादियों को भी लक्ष्य बनाया तथा विदेशी आतंकवादी समूह के पहचान की शुरूआत की। यह नीति 'अल कायदा' नामक आतंकवांदी संगठन के विरूद्ध उसकी कार्यवाही में देखी जा सकती है।

राज्य प्रायोजित आतंकवाद के सन्दर्भ में अमेरिकी नीति को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है-

1. अमेरिकी नागरिकों व हितों को विश्व के किसी भी कोने में खतरा पैदा करने वाले राज्य प्रायोजित आतंकवाद के लिए कूटनीति दबाव व

आर्थिक तथा सैन्य दण्डात्मक कार्यवाही करना। इस प्रकार के देशों को धूर्तराज्य (Rogue State) का नाम दिया गया।

2. अमेरिका के सहयोगी दूसरे देशों में धूर्त राज्यों द्वारा प्रायोजित आतंकवाद के विरूद्ध कूटनीतिक दबाव और दण्डात्मक आर्थिक कार्यवाही।

3. जो देश धूर्त राज्य की श्रेणी में नहीं है और वह अमेरिका के सहयोगी देश के नागरिकों व उसके हितों के विरूद्ध आतंकवाद प्रायोजित कर रहे हैं तो उन पर कूटनीतिक दबाव डालना।

समय-समय पर अमेरिका ने उत्तरी कोरिया, ईरान, इराक, सीरिया, सूडान, लीबिया, और क्यूबा को पहली दो श्रेणियों में रखा और पाकिस्तान को तीसरी श्रेणी में। जनवरी 1993 में राष्ट्रपति क्लिंटन ने पाकिस्तान और सूडान को राज्य प्रायोजित आतंकवाद के संदेह में 'निगरानी सूची' में रखा, परन्तु छः माह बाद ही पाकिस्तान का आतंकवाद विरोध में सहयोग मानते हुए उसे इस सूची में से हटा दिया। जबकि भारत पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद से त्रस्त था यह अमेरिकी नीति भारत के पक्ष में न थी।

अमेरिकी प्रशासन अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के विरूद्ध, कांग्रेस द्वारा 22 दिसम्बर 1987 के विदेशी संबंध से संबद्ध अमेरिकी कोड के टाइटिल 22 के सेक्शन 2656(F) तथा 1979 के एक्सपोर्ट एडमिनिस्ट्रेशन एक्ट के सेक्शन 6(i) और टाइटिल 50 के अपेंडिक्स के सेक्शन 2405 (i), जो अमेरिकी कोड के युद्ध व राष्ट्रीय सुरक्षा से संबद्ध है, के अन्तर्गत कार्यवाही करता रहा है।[1] अमेरिका के यह कानून आतंकवाद को अमेरिकी हितों के सन्दर्भ में देखते रहे हैं, जो भारत के साथ इस मुद्दे पर अमेरिका से मतभेद का कारण रहे।

सेक्शन 2405 (i) और 1979 के एक्ट में यह आवश्यक है कि विदेश मंत्री किसी देश के बारे में यह निश्चित करें कि वह देश बार-बार अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद को प्रोत्साहन दे रहा है। इसके बाद उस देश को राज्य प्रायोजित आतंकवाद की

---

1 Source : South Asia Analysis Group

श्रेणी में रख दिया जाता है। सेक्शन 2656 (F) 'अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद' को परिभाषित करता है। इस आतंकवाद के अन्तर्गत एक से अधिक देशों के नागरिक व उनकी भूमि की भागीदारी रहती है। ऐसे राज्य जो 'घरेलू आतंकवादी समूह', जिनकी गतिविधियॉ एक देश की सीमा के अंदर रहती हैं, को समर्थन करते हैं, अमेरिकी कानून के अन्तर्गत नहीं आते जब तक उनकी गतिविधियॉ विदेशी नागरिकों विशेषकर अमेरिकी नागरिकों या हितों के विरूद्ध न हो।

'इमीग्रेशन एण्ड नेशनेलिटी एक्ट' का सेक्शन 219, जो 1996 के 'एंटीटेरेरिज्म एण्ड इफेक्टिव डेथ पेनाल्टी एक्ट' द्वारा संशोधित कर दिया गया, अमेरिकी विदेशी मंत्री को यह अधिकार देता है कि वह गैर अमेरिकी आतंकवादी समूह की गतिविधियों का प्रत्येक वर्ष पुनरावलोकन करें और अमेरिकी नागरिकों व हितों को खतरा पैदा करने वाले संगठनों को विदेशी आतंकवादी समूह (FTO) में रखे। इस श्रेणी में आने वाले संगठनों को दी जाने किसी भी सहायता को गैर कानूनी माना जाता है तथा इस संगठन के सदस्यों को वीजा न देना तथा अमेरिका से निकालना शामिल है। अमेरिकी वित्तीय संस्थाएं ऐसे संगठनों के वित्त रोक देती है। अमेरिका ने 11 सितम्बर 2001 की घटना के वाद प्रतिबंधित संगठनों के वित्त आदि पर एक्सक्यूटिव आर्डर (EO) 13224 के अन्तर्गत कार्यवाही की।

इमीग्रेशन एण्ड नेशनेलिटी एक्ट का सेक्शन 219, जो 1996 के ऐंटीटेरेरिज्म एण्ड इफेक्टिव डेथ पेनाल्टी एक्ट द्वारा संशोधित कर दिया गया, अमेरिकी विदेश मंत्री को यह अधिकार देता है कि वह गैर अमेरिकी आतंकवादी समूह की गतिविधियों का प्रत्येक वर्ष पुनरावलोकन करें और अमेरिकी नागरिकों व हितों को खतरा पैदा करने वाले संगठनों को विदेशी आतंकवादी समूह (FTO) में रखे। इस श्रेणी में आने वाले संगठनों को दी जाने किसी भी सहायता को गैर कानूनी माना जाता है तथा इस संगठन के सदस्यों को वीजा न देना तथा अमेरिका से निकालना शामिल है। अमेरिकी वित्तीय संस्थाएं ऐसे संगठनों के वित्त रोक देती है।

इस प्रकार अमेरिकी कानूनों का उद्‌देश्य अमेरिकी नागरिकों व हितों की सुरक्षा करना है। 1979 व 1987 के कानून राज्यों के विरूद्ध व 1996 का कानून आतंकवादी सगठनों के विरूद्ध कार्यवाही करते हैं। भारत ने अपने यहाँ आतंकवाद

में पाकिस्तानी भागीदारी के सबूत दिए और उसे आतंकवादी राष्ट्र घोषित करने की मॉग की, परन्तु अमेरिका ने ऐसा नहीं किया। 1990 के प्रेसलर संशोधन व 1998 के ग्लेन संशोधन द्वारा पाकिस्तान पर अनेक प्रतिबंध थे। इनका असर केवल द्विपक्षीय आर्थिक व व्यापारिक सहायता पर पडा, सामान्य व्यापारिक संबंध अमेरिका व पाकिस्तान के बीच बने रहे। यदि पाकिस्तान को आतंकवादी राष्ट्र घोषित कर दिया जाता तो पाकिस्तान पर और दबाव पड़ता जो भारत के हित में होता परन्तु ऐसा न हुआ। भारत में जम्मू कश्मीर विधान सभा व भारतीय संसद पर हमले के बाद भारत ने पुनः दबाव बनाया परन्तु अमेरिका पर 11 सितम्बर 2001 को हुए हमले व उसके उपरांत अफगानिस्तान में अमेरिकी प्रत्युत्तर के लिए पाकिस्तानी सहयोग के कारण अमेरिका ने उस पर से सारे प्रतिबंध हटा लिए तथा यह कहा कि पाकिस्तान को आतंकवादी सूची में नहीं रखा जाएगा।[1] क्योकि वह आतंकवाद विरोधी मुहिम में उसका सहयोगी है। इस नीति को भारत आतंकवाद के विरूद्ध दोमुँही नीति मानता है।

यदि हम शीत युद्ध के उपरान्त अमेरिका की आतंकवाद के विरूद्ध नीति व कार्यवाही का विश्लेषण करें तो भारत के सन्दर्भ में निम्न तथ्य प्रकाश में आते हैं-

1992 : 1991 तक अमेरिकी प्रशासन ने केवल सिक्ख संगठनों को ही आतंकवादी संगठन माना, कश्मीरी संगठनों को आतंकवादी संगठन नहीं माना। कश्मीर में इज़रायली पर्यटकों पर हमले के बाद ज्यूश लॉबी का दबाव पड़ा कि इन्हें भी आतंकवादी माना जाए। 'द एनुअल पैटर्न ऑफ ग्लोबल टेरोरिज्म रिपोर्ट' में पहली बार पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद पर भारतीय आरोप को जगह मिली।

1993 : अमेरिका ने पाकिस्तान को आतंकवादी राष्ट्र के सन्दर्भ में 'निगरानी सूची' में रखा। जो मुख्यतः ले० जनरल जावेद नासिर से नाराजगी के कारण था, उनको इस पद से हटाने के बाद अमेरिका ने पाकिस्तान को इस सूची में हटा दिया।

---

1 TheTimes of India, 19 July, 2002

1995 : पॉच विदेशीयों, जिनमें दो अमेरिकी भी थे, के अपहरण के बाद अमेरिका ने हरकत उल अंसार की गतिविधियों पर नजर रखनी शुरू की।

1997 : यह सबूत सामने आने पर कि हरकत अल अंसार कराची में अमेरिकी नागरिकों की हत्या में शामिल था, अमेरिका ने उसे 1996 के कानून के तहत विदेशी आतंकवादी संगठन के तहत प्रतिबंधित किया। इससे इस संगठन ने अपना नाम बदलकर हरकत उल मुजाहिदीन रख लिया, जिसके संबंध ओसामा बिन लादेन के संगठन से पाए गए। अमेरिकी दबाव के बावजूद पाकिस्तान ने कोई कार्यवाही न की।

1998: अमेरिकी विदेश विभाग ने 'द एनुअल पैटर्न ऑफ ग्लोबल टेरोरिज्म रिपोर्ट' में दो सूची प्रकाशित की पहली के अन्तर्गत 1996 के कानून के तहत प्रतिबंधित संगठन थे व दूसरी के तहत पिछले वर्ष में क्रियाशील संगठन थे जिनके विरूद्ध पर्याप्त सबूत न था। पहली सूची में हरकत उल मुजाहिद्दीन व अल कायदा थे दूसरी सूची में सिख आतंकवादी संगठन व तामिलनाडु का अल उम्माह संगठन था।

1999 : पहली बार अमेरिका ने कश्मीरी संगठनों द्वारा आम लोगों की हत्या को आतंकवादी घटना माना।

2000 : इस वर्ष की अमेरिकी रिपोर्ट में पाकिस्तान के सबंध में पहले की अपेक्षा ज्यादा सबूत दिए गए परन्तु यह भारत में कार्यरत आतंकवादी समूह से ज्यादा पाकिस्तान के तालिबान से गठजोड़ के बारे में थे। सिख संगठनों को दूसरी सूची से हटा दिया गया उनकी जगह जैश-ए-मोहम्मद व लश्करे तौयबा को रखा गया।

2001 : भारत में सीमा पार आतंकवाद स्वीकार करते हुए पाकिस्तान पर दबाव बढाया। जैश-ए-मोहम्मद व लश्करे तौयबा को पहली सूची में डाला गया अर्थात उन्हें विदेशी आतंकवादी संगठन के रूप में प्रतिबंधित किया गया।[1]

---

1 Source : South Asia Analysis Group.

इस प्रकार पाकिस्तान व भारत में सक्रिय आतंकवादी संगठन अमेरिकी कानून व नीतियों की कमियों का पूर्ण लाभ उठाते हुए भारत में सक्रिय है और अमेरिका उन पर कड़ी कार्यवाही नहीं कर रहा है। यह भारत में अमेरिकी नागरिकों व हितों पर हमला करने से बचकर अमेरिकी प्रकोप से बचे रह रहे हैं। यद्यपि 2000 की रिपोर्ट में पाकिस्तान का तालिबान से गठजोड़ प्रकाश में आया है और अमेरिका पर हमले में शामिल अलकायदा संगठन के पाकिस्तान में क्रियाशील होने के सबूत हैं। पाकिस्तान इस मामले में आरोपी आतंकवादियों को पकड़वा कर अमेरिका के हवाले कर दे रहा है तथा उसने अफगानिस्तान में कार्यवाही के लिए अपनी भूमि के प्रयोग की अनुमति अमेरिकी बलों को दे रखी है। जिससे वह आतंकवाद विरोधी मुहिम में अमेरिका का सहयोग करता दिख रहा है परन्तु भारत में वह अपनी पुरानी मुहिम चलाए हुए है।

आतंकवाद पर अमेरिकी कांग्रेस की 'ब्लू रिबन कमीशन' पर टिप्पणी करते हुए शीहान ने कहा कि आतंकवाद के विरोध में पाकिस्तान का सहयोग मिला-जुला रहा है। पाकिस्तान द्वारा की गई गिरफ्तारी व उनको अमेरिका को सौपना महत्वपूर्ण सहयोग है परन्तु इसके साथ ही पाकिस्तान अपने क्षेत्र में आतंकवादियों के स्वतंत्र रूप से घूमने व रहने को भी सहन करता है।[1]

अमेरिका द्वारा जैश-ए-मोहम्मद व लश्करे तौयब को प्रतिबंधित करने के बाद पाकिस्तान पर भी दबाव पड़ा तो उसने उनके कार्यालयों को पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में स्थानान्तरित करवा दिया तथा दिखावे के लिए कार्यवाही की और उन्हें यह हिदायत दी की भारत में आतंकवादी गतिविधियों में कोई विदशी संगठन के शामिल होने की बात न आए। इसे कश्मीरी संगठनों द्वारा ही प्रायोजित दिखाया जाए तथा अमेरिकी नागरिकों पर हमले से बचा जाए। जिससे अमेरिकी कानूनों का लाभ उठाया जा सकता है।

आज के समय आतंकवाद का केन्द्र मध्य पूर्व से स्थानांतरित होकर दक्षिण एशिया हो गया है। पाकिस्तान की राजनीतिक व आर्थिक स्थिति, कट्टरवाद के

---

1 Terrorism Issue : Pakistan has mixed record Says US, Dawn, 18 June, 2000.

उभार व भारत के विरूद्ध उसके शत्रुभाव ने उसे आतंकवाद की उर्वरा भूमि बना दिया है। इस समय आतंकवादियों द्वारा सामूहिक नरसंहार के साधनों जैसे-रासायनिक, जैविक, रेडियोलॉजिकल व नाभिकीय अस्त्रों की प्राप्ति का प्रयास चिन्ता का कारण है। यह संगठन अब राज्यों द्वारा सहायता पर बहुत निर्भर नहीं रह गए हैं, उन्होंने अपने अन्तर्राष्ट्रीय नेटवर्क व वित्तीय स्रोत विकसित कर लिए हैं। यह वित्तीय स्रोत अवैध व्यापार, नशीले पदार्थो की तस्करी, निजी सहायता आदि हैं।

अब आतंकवाद का चेहरा और भयावह होता जा रहा है जो अमेरिका पर 11 सितम्बर 2001 के हमले, भारत में संसद पर हमला व मंदिरों पर हमला, मास्कों में चेचेन आतंकवादियों का हमला, बाली में विदेशियों पर हमले से साफ है। अतः इसे अब घरेलू आतंकवाद और अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद में परिभाषित नहीं किया जा सकता । इसके लिए एक समान नीति की आवश्यकता है।

ऐसा नही है कि अमेरिकी हितों पर पहली बार 2001 में हमला हुआ। इसके पूर्व भी हमला हुआ है तथा इसके विरूद्ध पहली बार अमेरिकी ने सक्रिय सुरक्षात्मक अधिकार का प्रयोग 14 अप्रैल 1986 को किया, जब लीबिया पर उसने आक्रमण किया। 1993 में वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर बम से हमला, केन्या व तंजानियाँ में अमेरिकी दूतावासों पर हमला, यमन में अमेरिकी नौसैनिक अड्डे पर हमला, अमेरिका के विरूद्ध बढ़ रहे आतंकवाद का प्रतीक है परन्तु 11 सितम्बर 2001 की घटना ने सारा परिदृश्य बदल दिया है। अब अमेरिका आतंकवाद के विरूद्ध ज्यादा गंभीर व संवेदनशील है तथा इसको वैश्विक परिपेक्ष्य में देखना उसकी मजबूरी बन गयी है।

भारत तो आतंकवाद के विरोध में हमेशा से ही रहा है और इस सन्दर्भ में हुए विभिन्न सम्मेलनों व मंचों पर उसका समर्थन रहा है। भारत ने 11 सितम्बर की घटना के बाद संयुक्त राष्ट्र के प्रस्ताव 1368, 1373 व 1377 का पूर्ण समर्थन किया। जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद को रोकने व समाप्त करने के लिए सदस्य देशों द्वारा कदम उठाने की बात है। भारत व अमेरिका के बीच जनवरी 2000 से ही इस पर आपसी समझ विकसित होने लगी थी, जब दोनों देशों ने आतंकवाद की समाप्ति के लिए भारत-अमेरिका संयुक्त कार्यदल की स्थापना की थी।

उपरोक्त संयुक्त कार्यदल की पांचवीं बैठक 12 जुलाई 2002 को हुई और इसमें आतंकवाद की समाप्ति के लिए सूचनाओं के आदान-प्रदान, खुफिया तंत्र व जांच में सहयोग को मजूबत करना, साइबर सुरक्षा फोरम की स्थापना आतंकवादियों के वित्त आदि पर वार्ता तथा सैनिक सहयोग आदि पर सहमति बनी जो एक सकारात्मक कदम है। अमेरिका ने कई अवसरों पर कहा है अफगानिस्तान में जारी आतंकवाद विरोधी कार्यवाही का स्वरूप वैश्विक है और कश्मीर का आतंकवाद भी इस अमेरिका को आतंकवाद विरोधी अभियान में शामिल है परन्तु दबाव के बावजूद पाकिस्तान की हरकतों में कमी न आना भारत के लिए चिन्ता का विषय बना है।

अमेरिका आतंकवाद के सफाये में पाकिस्तान के सहयोग को जरूरत से ज्यादा महत्व दे रहा है और उसकी इस मामले में दोमुँही चाल को नजरअंदाज कर वही गल्ती कर रहा है जो उसने 1980 के दशक में अफगानिस्तान में सोवियत प्रभाव को समाप्त करने के लिए जेहादी गुटों को हथियार व धन देकर की थी। आज वही गुट अमेरिका, भारत व इज़रायल को अपना शत्रु मान उनके हितों पर चोट कर रह हैं। आतंकवाद के वर्तमान स्वरूप को अब क्षेत्रीय आधार पर अलग-अलग नहीं देखा जा सकता है। अतः अब अमेरिकी नीति निर्माताओं को यह समझना होगा कि भारत में फैला आतंकवाद अमेरिकी हितों के लिए उतना ही खतरनाक है, जितना अमेरिकी धरती पर बढ़ रहा आतंकवाद।

(VI) आणविक मुद्दे का प्रभाव :

भारत व अमेरिका के बीच आणविक मुद्दे पर शुरू से ही मतभेद रहे हैं। अमेरिका की अप्रसार नीति को भारत ने अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा व सामरिक दृष्टिकोण से प्रासंगिक नहीं माना। उसका आरोप रहा है कि यह नीति एक तरफ तो क्षैतिज प्रसार को बढ़ावा देती है तो दूसरी तरफ अपने हितों के सन्दर्भ में गैर आणविक देशों में भी प्रसार के सन्दर्भ में ऑख बंद किए रहती है। जिसका लाभ भारत के पड़ोसियों ने उठाया है।

भारत शुरू से ही निरस्त्रीकरण का समर्थक रहा है। उसने 1954 में ही परमाणु परीक्षण पर पूर्ण प्रतिबंध लगाने की माँग की थी। इस प्रकार की माँग करने

वाला भारत पहला देश था। भारत आणविक प्रश्न को निरस्त्रीकरण के व्यापक दायरे में देखता है तथा नीतिगत तौर वह निरस्त्रीकरण व अस्त्र नियन्त्रण के प्रति प्रतिबद्ध है। भारत ने अमेरिका द्वारा परमाणु अस्त्रों के पूर्ण उन्मूलन के प्रति सकारात्मक रूख न रखने तथा अपने चारों तरफ बिगड़ रहे सुरक्षा वातावरण के सन्दर्भ में आणविक प्रश्न पर यथार्थवादी दृष्टिकोण रखा, जो अमेरिका द्वारा नापसन्द किया जाता रहा है।

भारत द्वारा अपने चारों तरफ बिगड़ रहे सुरक्षा वातावरण के प्रति चिंता स्वाभाविक थी उसका पाकिस्तान व चीन के शत्रुतापूर्ण व्यवहार के प्रति सजग रहना आवश्यक था। अतः अमेरिका का यह आकलन था कि भारत भी परमाणु शस्त्र सम्पन्न होना चाहेगा। अमेरिका ने 'परमाणु अप्रसार' की नीति जारी रखने की नीति अपनाई, जो भारत पर व्यापक दबाव डालती रही। यद्यपि सोवियत संघ के अफगानिस्तान में हस्तक्षेप के कारण अमेरिका पाकिस्तान के आणविक शक्ति प्राप्त करने के गंभीर प्रयास के प्रति उदासीन रहा।

उल्लेखनीय है कि भारत ने सन् 1971 में सोवियत मैत्री संधि पर हस्ताक्षर कर दिए थे परन्तु वह अपनी सुरक्षा को लेकर निश्चित् न हो सका था। सन् 1974 में भारत ने परमाणु परीक्षण सम्पन्न कर लिया किन्तु भारत ने कभी भी सरकारी तौर पर यह स्वीकार नहीं किया कि उसका परमाणु परीक्षण, परमाणु शस्त्र बनाने के लिए था बल्कि वह यह कहता रहा कि भारत का उद्देश्य परमाणु ऊर्जा का शान्तिपूर्ण कार्यो में प्रयोग के लिए था। भारत परमाणु अप्रसार नीति का समर्थन भी करता रहा तथा विश्व समुदाय से यह मांग करता रहा कि परमाणु अप्रसार संधि (सन 1968) की शर्तो में सुधार कर उसे और अधिक सार्वभौमिक बनाया जाए।

भारत ने 1968 में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में प्रस्तुत 'परमाणु प्रसार नियन्त्रण प्रारूप संधि' का विरोध करते हुए कहा कि यह प्रारूप सन्धि निरस्त्रीकरण पर संयुक्त राष्ट्र संघ प्रस्ताव के सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं है। विश्व की सुरक्षा को केवल परमाणुविहीन राज्यों में परमाणु अस्त्रों के सम्भावित प्रसार से ही खतरा नही है वरन् वर्तमान परमाणु राष्ट्रों के पास परमाणु अस्त्रों के बने रहने से भी उतना ही खतरा है। भारत ने परमाणु अस्त्रों के पूर्ण उन्मूलन की बात की। इस भेदभाव की

नीति का विरोध भारत आज तक करता आ रहा है।

भारत को पाकिस्तान की तरफ से खतरे, चीन के साथ सन् 1962 के युद्ध में हार व सन् 1964 में चीन के परमाणु परीक्षण के उपरान्त भारत मे भी परमाणु शक्ति प्राप्त करने की बहस छिडी। इन परिस्थितियों में भारत ने एक ओर अमेरिका व सोवियत संघ से पृथक-पृथक सुरक्षा गांरटी मांगी तो दूसरी ओर भारत ने एस०एन०ई०पी० (Subterranean Nuclear Explosion Project) की सन् 1965 में शुरूआत की जो कि सन् 1974 के पोखरण परमाणु विस्फोट का पूर्वगामी और अभिन्न अंग था। फलतः भारत ने सन् 1970 में प्रभावी हुई परमाणु अप्रसार संधि (NPT) पर व्यवहारिक रूख अपनाते हुए हस्ताक्षर करने से मना कर दिया। तकनीकी दृष्टि से दो अन्य तथ्य भी उल्लेखनीय है। पहला यह कि भारत ने 40 मेगावाट शक्ति का स्वनियंत्रित प्लांट साइरस की स्थापना की तथा इसके ठीक बाद ट्राम्बे में सन् 1964 में प्यूटोनियम पुर्नपरिष्करण प्लांट लगाया। इन उद्यमों का फल यह था कि अब भारत परमाणु विस्फोट में उपयोग होने वाले परिष्कृत प्लूटोनियम का निर्माण करने में सफल हो गया था। दूसरा यह कि 'पूर्णिमा रिसर्च रिएक्टर' ने सन 1972 में ही पोखरण परीक्षण से संबंधित महत्वपूर्ण सूचनाएँ उपलब्ध करा दी थी।

भारत के पड़ोस में पाकिस्तान व चीन के साथ अमेरिका की सामरिक साझेदारी ने भारत को सन 1974 के परमाणु परीक्षण के लिए प्रेरित किया। यद्यपि भारत की परमाणु क्षमता पर कोई संदेह न था किन्तु पोखरण परीक्षण के बाद, अमेरिका ने कठोर प्रतिक्रिया की तथा उन्हें मूल रूप से भारत के इस तर्क पर हैरानी थी कि परीक्षण 'शांतिपूर्ण उद्देश्यों' के लिए किया गया था। अमेरिका में भारत समर्थक डेमोक्रेट्स ने आरोप लगाया कि भारत ने 'परमाणु बैरियर' को तोड़ा है जो कि निदंनीय कृत्य था। फलतः अमेरिका में भारत की नकारात्मक छवि बनी।

पोखरण प्रथम के पूर्व ही भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी ने संसद में वक्तव्य देकर राष्ट्र को यह सूचना दी थी कि उन्होंने परमाणु ऊर्जा आयोग से भारत को आर्थिक लाभ के लिए वातावरण को क्षतिग्रस्त किए बगैर शांतिपूर्ण परमाणु विस्फोट की संभावना का पता लगाने के लिए कहा था। इसके बावजूद अमेरिका व उसके मित्रों ने इस परीक्षण को अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों की अवमानना

बताया तथा भारत पर निम्न कार्यवाही की।

(क) राजस्थान के परमाणु ऊर्जा भट्ठी को प्राप्त होने वाली सहायता, कनाडा द्वारा बंद कर दी गई।

(ख) राजस्थान की भट्ठियों को प्राप्त सोवियत भारी पानी का विरोध होने लगा।

(ग) कलपक्कम् के संयंत्र को फ्रांस द्वारा मिलने वाली सहायता रोक दी गई।

(घ) स्थापित समझौते को तोड़ते हुए अमेरिका ने तारापुर परमाणु ऊर्जा संयंत्र को मिलने वाली संवर्धित यूरेनियम की आपूर्ति कम कर दी।

भारत के इस परमाणु कार्यक्रम ने अमेरिका से मतभेद बढ़ा दिए और इस कार्यक्रम ने बहुराष्ट्रीय व राष्ट्रीय निर्यात नियंत्रण को गति दी तथा गुप्त रूप से 'लंदन क्लब' की भी स्थापना की गई जो कि परमाणु अप्रसार को नया रूप दे सके। अमेरिका ने सन् 1978 में 'परमाणु प्रसार अधिनियम' पारित किया। अब संवेदनशील परमाणु तकनीक एवं साजों सामान अमेरिका उन्हीं देशों को हस्तांरित कर सकता था जो यथोचित रूप से तकनीक को सुरक्षित रख सके। अमेरिका का मत था कि भारत अप्रसार नीति के शिकंजे में आ जाएगा। अब अमेरिका परमाणु तकनीक निर्यात के बदले में भारत से सम्पूर्ण परमाणु कार्यक्रम के शांतिपूर्ण होने की गारंटी चाहता था, जो कि भारत को स्वीकार्य न था। अतः अमेरिका ने तारापुर परमाणु संयंत्र को दी जाने वाली यूरेनियम ईधन की आपूर्ति पूर्णरूप से ठप्प कर दी। इस बीच अमेरिकी प्रशासन ने भारत के साथ-साथ पाकिस्तान पर भी उसके नाभिकीय कार्यक्रम को बंद करने का दबाव बनाए रखा।

उल्लेखनीय है कि सन् 1979 में अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप के प्रतिकार स्वरूप अमेरिका ने विद्रोही मुजाहिदीनों को शस्त्र देकर सोवियत सेना को परास्त करने का कार्यक्रम बनाया जो कि पाकिस्तान की मदद के बिना संभव नहीं था। अतः सन् 1980 के समय से पाकिस्तान द्वारा परमाणु हथियार प्राप्त करने के गंभीर प्रयास के प्रति अमेरिका उदासीन रहा और अपनी परमाणु अप्रसार नीति का

प्रयोग पाकिस्तान की लगाम कसने के लिए नहीं किया। यद्यपि 1983 की शुरूआत में ही अमेरिकी खुफिया एजेंसियों ने यह निष्कर्ष निकाल लिया था कि पाकिस्तान ने चीन की सहायता से नाभिकीय प्रतिरोध क्षमता प्राप्त कर ली है।[1] यही नही प्रेसलर संशोधन के प्रवर्तन में होने के कारण अमेरिका के राष्ट्रपति ने सीनेट को सन् 1987 से 1989 तक इस आशय का प्रमाण पत्र भी दिया कि पाकिस्तान एक गैर आणविक राष्ट्र है।

इसी बीच पाकिस्तान अमेरिका से पूर्व के कुछ अन्य प्रतिबंध हटवाने में सफल रहा जैसे-साइमिंगटन संशोधन सन् 1981, सन् 1987, एवं सन् 1988, ग्लेन संशोधन सन् 1982, एवं सोलार्ज संशोधन सन् 1988 । यह अमेरिकी सहायता को ऐसे देश के लिए रोकते थे जो नाभिकीय शस्त्र कार्यक्रम के लिए संवेदनशील नाभिकीय तकनीक का आयात करता था।[2] अतः पाकिस्तान को परमाणु अस्त्र बनाने के लिए बनाने के लिए इससे पर्याप्त मौका मिला।

इस दौरान भारत ने परमाणु शस्त्र का उपयोग कर सकने वाले युद्धक विमान प्राप्त करने की योजना पर कार्य करना आरंभ किया था। भारत के पास जगुआर, मिग-23 बी०एन० एवं मिग-27 जैसे विमान उपलब्ध थे जो कि आवश्यकता पड़ने पर मामूली परिवर्तन के साथ परमाणु शस्त्र ढोने में समर्थ हो सकते थे। एकीकृत मिसाइल तकनीक का विकास भी भारत ने सन् 1983 में ही आरंभ कर दिया। इन मिसाइलों में मुख्य थे पृथ्वी व अग्नि। इन मिसाइलों का महत्वपूर्ण परीक्षण भारत ने जारी रखा। पृथ्वी मिसाइल की तैनाती हो चुकी है और अग्नि मिसाइल के कई संस्करणों का परीक्षण हो चुका है। भारत की मिसाइल तकनीक के प्रत्युत्तर में पाकिस्तान ने चीन से एम-11 मिसाइल प्राप्त किया। पाकिस्तान ने होड़ बनाए रखी और हत्फ-III जो कि चीन की एम-9 मिसाइल से मेल खाती थी एवं गौरी या हत्फ-V मिसाइल का भी परीक्षण किया। पाकिस्तान द्वारा परीक्षण की गई गजनवी मिसाइल में उत्तरी कोरिया का हाथ माना गया। पाकिस्तान, चीन व उत्तरी कोरिया के प्रति अमेरिका रूख ने भारत की सुरक्षा की खतरे में डाल रखा

1 U.S. Department of State, Bureau of Oceans and International Environmental and Scientific Affairs, Pakistan Nuclear Program Secret report, 14 March 1983.
2 Mitchell Reiss, The Illusion of influence, The RUSI Journal, Summer 1991.

था। जो कि उसकी अप्रसार नीति का दोहरापन प्रदर्शित करती थी। अभी यह रिपोर्ट प्रकाश में आई है कि पाकिस्तान ने उत्तरी कोरिया से मिसाइल तकनीक का हस्तान्तरण कर उसे नाभिकीय तकनीक दी है।[1]

अमेरिका को भारत के मिसाइल कार्यक्रम से दक्षिण एशिया की सुरक्षा पर संदेह होने लगा क्योंकि परमाणु शस्त्र से सम्पन्न कर देने पर ये शस्त्र अति भयावह रूप ले सकते थे। अपने इसी संदेह के कारण अमेरिका ने भारत को प्रतिरक्षा प्रणालियों का हस्तांतरण नहीं किया। भारत के मिसाइल व राकेट कार्यक्रम के कारण एम०टी०सी०आर० (1987) को अस्तित्व में लाने में तेजी आई इसके तहत मिसाइल प्रसार को रोकने का प्रावधान किया गया। भारत ने एक आयात-निर्यात लाइसेंस प्रणाली भी शुरू की जो कि अमेरिका को इस बात के लिए संतुष्ट करने के लिए थी कि प्रतिरक्षा प्रणालियों की तकनीक को तीसरा पक्ष नहीं पाएगा। किन्तु इसका कोई महत्वपूर्ण प्रभाव दृष्टिगोचित नहीं हुआ। परिणामस्वरूप भारत द्वारा मांगा गया सुपर कम्प्यूटर-क्रे एक्स एम०पी०-24 अमेरिका ने इस आधार पर मना कर दिया कि उसका उपयोग परमाणु विस्फोटक बनाने के लिए हो सकता था। सी०ए०वी०सी०टी०एस० तकनीक (Combined Acceleration Vibration Climatic test system) का निर्यात लाइसेंस भी इस आधार पर रद्द कर दिया गया कि इसका उपयोग परमाणु मिसाइल बनाने में हो सकता था। अमेरिका ने विशेष रूप से सन् 1989 में भारत को प्रतिरक्षा तकनीक बेचने में उदासीनता का प्रदर्शन किया और दूसरे देशों के ऊपर भी दबाव डालकर ऐसी तकनीकों के हस्ताक्षर को रूकवा दिया। इसका सबसे बड़ा व अच्छा उदाहरण भारत व रूस के बीच क्रायोजेनिक इंजन समझौता है।

दक्षिण एशिया की सुरक्षा पर विशेष रूप से भारत-पाक संबंध पर अमेरिका को गंभीर खतरा तब दिखा जब भारतीय युद्धाभ्यास ब्रास टैक्स (1987) एवं कश्मीर में आंतरिक अशांति प्रारम्भ हुई।[2] अमेरिका की यह चिंता सी०आई०ए० रिपोर्ट में इस विचार से और भी अधिक परिलक्षित होती है, जिसमें संभावित परमाणु परीक्षण की दृष्टि से दक्षिण एशिया को संदेह के घेरे में प्रथम स्थान पर रखा गया था।

---

1 The Times of India, 19 October, 2002.

2 Kanti Bajpai, Brasstacks and Beyond Perception and Management of crisis in south Asia, New Delhi, Manohar, 1996

अमेरिका में यह विश्वास घर का गया था कि यदि अगले पॉच वर्षो में परमाणु परीक्षण कहीं संभव था तो वह दक्षिण एशिया था। भारत व पाकिस्तान चाहें तो आवेश की स्थिति में परमाणु अस्त्र का लगभग प्रयोग करने की स्थिति में है तथा दोनों ही बैलिस्टिक मिसाइल क्षमता की ओर बढ़ रहे है। जिसका उपयोग परमाणु अस्त्रों के लिए हो सकता था। दोनों देश पूर्व में भी युद्ध कर चुके थे और कश्मीर दोनों के बीच एक बडी समस्या खड़ी कर सकता था।[1]

दक्षिण एशिया में परमाणु अप्रसार की नीति के विषय में अमेरिका का विचार पहले उसे नियंत्रित करने का फिर, धीरे-धीरे कम करने का और अंततः इन महाविनाशक हथियारों एवं इनके प्रक्षेपण वाहनों को नष्ट करने का था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अमेरिका ने सर्वप्रथम भारत व पाक पर यह दबाव डाला कि प्रथम तैनाती का निर्णय न लें (No first deployment) । इसके उपरांत दूसरा महत्वपूर्ण कदम था कि दोनों देश परमाणु अस्त्र में प्रयोग होने वाले विस्फोटक का उत्पादन न करें जिससे कि फिसाइल मैटीरियल कट ऑफ ट्रीटी (FMCT) का पालन हो सके। अमेरिका ने इसके बाद जो तीसरी नीति अपनाई उसके अनुसार भारत व पाकिस्तान को यह कहा गया कि सी०टी०बी०टी० से पहले कोई परीक्षण न करें।

भारत पर यह दबाव डाला गया कि भारत अमेरिका, रूस, चीन एवं पाकिस्तान से मिसाइल दौड़ रोकने के लिए बातचीत करें। इसी कारण भारत अमेरिका प्रायोजित दो संयुक्त राष्ट्र प्रस्तावों में शामिल भी हुआ। पहला प्रस्ताव सितम्बर 1993 में आया जिसमें, सैनिक उद्देश्यों के लिए विखंडनीय सामग्री के उत्पादन को कम करने पर जोर दिया गया था एवं दूसरे प्रस्ताव के अन्तर्गत व्यापक परमाणु परीक्षण निषेध संधि (CTBT) के लिए वार्ता आरम्भ करने का प्रावधान था।

भारत ने भले ही एफ०एम०सी०टी० एवं सी०टी०बी०टी० के अमेरिका समर्थित प्रस्ताव पर अपना रूख अनुकूल रखा किन्तु यदि वह इन दोनों के क्रियान्वयन के लिए हस्ताक्षर कर देता तो एफ०एम०सी०टी० के कारण उसके शस्त्र सामग्री के

---

1 Robert L. Gallucci, Non Proliferation and National Secruity, Arms control Today, April 1994, P- 14.

विकास पर रोक लग जाती और उसका पूरा परमाणु कार्यक्रम एक तरह से अन्तर्राष्ट्रीय दबाव के कारण रूक जाता। सी०टी०बी०टी० पर भी हस्ताक्षर कर देने से उसका परमाणु विकल्प भी उपलब्ध क्षमता तक ही सीमित रह जाता। इसके अलावा परमाणु शस्त्रों के प्रयोग में आने वाले युद्धक विमानों व मिसाइलों में भी परमाणु तकनीक का आवश्यक परिष्कार रूक जाता।[1]

फलतः भारत एफ०एम०सी०टी० को नजरंदाज करता रहा जबकि सी०टी०बी०टी० का उसने विरोध आरंभ कर दिया। अमेरिका ने अपनी अप्रसार नीति को मनवाने के लिए भारत के आतंरिक मामलों व विश्व व्यापार संगठन से संबंधित मुद्दों पर दबाव डालना शुरू किया। कश्मीर समस्या को परमाणु युद्ध से जोड़ा जाने लगा। इस कारण से आणविक मुद्दा भारत-अमरिका के द्विपक्षीय संबंध के लिए किरकिरी बन गया। एन०पी०टी० को भी अनिश्चित काल के लिए बढ़ा दिया गया और उस पर भी हस्ताक्षर के लिए भारत पर दबाव बढ़ा। भारत का यह मत था कि यह संधि परमाणु हथियारों के पहले से ही उपलब्ध भंडार को नष्ट करने के लिए किसी समयबद्ध कार्यक्रम का विवरण नहीं देती।

सी०टी०बी०टी० पर हस्ताक्षर का भारत पर प्रत्यक्ष दबाव था जिस पर हस्ताक्षर करके भारत अपने राष्ट्रीय संप्रभुता से समझौता नहीं करना चाहता था। सी०टी०बी०टी० के क्रियान्वयन के लिए यह आवश्यक था कि हस्ताक्षरकर्ता देश इसे अपने-अपने यहाँ अभिपुष्ट करवाएँ। उल्लेखनीय है कि सी०टी०बी०टी० पर हस्ताक्षर के बावजूद भी अमेरिका सीनेट में इसकी पुष्टि नहीं करा सका क्योंकि उसे कम्पूटर सिम्युलेशन डिवाइस द्वारा किए गए नाभिकीय परीक्षण पर भरोसा न था। दूसरा कारण यह था कि 'कॉक्स रिपोर्ट' से यह जानकारी मिली थी कि चीन ने न्यूट्रान बम तकनीकी की जानकारी चोरी छिपे अमेरिका से प्राप्त कर ली है। जिससे अमेरिका अपनी प्रतिरक्षा के प्रति संतुष्ट नहीं हो पा रहा है।

भारत शीत युद्ध की समाप्ति के बाद परमाणु हथियारों के महत्व को नए सिरे से समझ रहा था। विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जब सोवियत संघ का विघटन

---

1 These arguments are elaborated in P.R. Chari Indo-Pak Nuclear Stand off : Role of the united States, New Delhi: Manohar 1995. Especially refer the chapter- "The limits of Nuclear Ambiguity."

हो चुका था और 'डालर कूटनीति', 'अप्रसार नीति' आदि हावी हो चुकी थी। क्लिंटन प्रशासन द्वारा चीन के एन०पी०टी० नियमों व एम०टी०सी०आर० के उल्लंघन को नजरदांज किया जा रहा था, जिसके परिणामस्वरूप वह पाकिस्तान को नाभिकीय व मिसाइल तकनीक दे रहा था। एक तरफ भारत पर परमाणु अप्रसार संधि का दबाव पड़ रहा था तो दूसरी तरफ चीन के साथ आर्थिक संबंधों को महत्व दिया जा रहा था। एन०पी०टी० को अनिश्चित काल तक बढ़ाने व सी०टी०बी०टी० पर वार्ता के बाद भी फ्रांस व चीन द्वारा परीक्षण किए गए। इसी कारण भारत ने एक अस्पष्ट नीति का पालन किया जिसमें परमाणु विकल्प को खुला रखा गया, सी०टी०बी०टी० का विरोध किया गया तथा सार्वभौम निरस्त्रीकरण की नीति का समर्थन किया गया।

चीन और पाकिस्तान के संयुक्त खतरे के सामने और खास तौर पर सोवियत विघटन के कारण भारत को अपनी सुरक्षा के प्रति स्वावलम्बी होना आवश्यक हो गया। इस समय भारत पर एक ओर दबाव यह था कि सी०टी०बी०टी० पर हस्ताक्षर करने की अंतिम सीमा पास आ रही थी। अतः इसने भारत को विवश किया कि वह अपने परमाणु विकल्प का प्रयोग करें। फलतः मई 1998 में भारत ने कुल पाँच परीक्षण किए। इस पर दुनिया भर से प्रतिक्रिया आई जिनमें से अधिकतर ने भारत के परमाणु परीक्षण को अनुचित माना। अमेरिका ने इसे 'खतरनाक बेवकूफी' की संज्ञा दी।

परीक्षण के एक दिन बाद भारत के प्रधान मंत्री ने अमेरिकी राष्ट्रपति को लिखा कि-मैं भारत के सुरक्षा वातावरण में गिरावट से चिंतित हूँ, विशेषकर पिछले कुछ वर्षो से नाभिकीय वातावरण के सन्दर्भ में। हमारी सीमा पर एक प्रत्यक्ष नाभिकीय शक्ति सम्पन्न राष्ट्र है, जिसने 1962 में भारत के विरूद्ध सशस्त्र आक्रमण किया था। यद्यपि हमारे संबंध पिछले दशकों में उससे सुधरे हैं परन्तु सीमा विवाद के कारण अविश्वास का वातावरण बना रहता है। इस अविश्वास को बढ़ाने में उसके द्वारा दूसरे पड़ोसी को नाभिकीय शक्ति सम्पन्न करने में सहायता सहायक है। इन पड़ोसियों के कारण हम पिछले 50 वर्षो में तीन आक्रमण झेल चुके हैं।[1]

---

1 New York Times, 13 May, 1998, P-12

पाकिस्तान ने भारत के परीक्षण के जवाब में परमाणु परीक्षण सम्पन्न किया, जिससे स्थिति साफ हो गयी कि पाकिस्तान पहले से ही परमाणु शक्ति के रूप में भारत के लिए अत्यंत खतरनाक हो गया था। चीन द्वारा सन् 1964 में ही परमाणु विकल्प अपना लिया गया था, पाकिस्तान के विषय में सन् 1990 में ही बुश प्रशासन ने यह प्रमाण-पत्र देने से इंकार कर दिया था कि पाकिस्तान के पास परमाणु अस्त्र नहीं है। अतः इस सन्दर्भ में भारत ने अपने परमाणु परीक्षण और उसके उपरांत न्यूक्लियर डॉक्ट्रिन लाकर विश्व समुदाय एवं अमेरिका को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर दिया कि भारत का परमाणु विकल्प घोषित हो चुका है।

इसके पूर्व सन् 1997-98 में भारतीय रक्षा मंत्रालय ने अपनी रिपोर्ट[1] में लिखा था कि चीन द्वारा पाक को दी जा रही नाभिकीय तकनीक, हथियार व मिसाइलें सीधे भारत की सुरक्षा से संबंधित है.........। अमेरिका के विदेश विभाग ने भी सन् 1995 में माना है कि भारत व पाकिस्तान की राजशक्तियाँ पारस्परिक खतरे को ध्यान में रखकर महाविनाशक हथियारों और बैलिस्टिक हथियारों की दौड़ जारी रखें हुए हैं। पाकिस्तान परमाणु अस्त्र को अंतिम प्रतिरोध की दृष्टि से देखता है........... जबकि भारत पाकिस्तान की ओर से प्रत्यक्ष खतरे को देख रहा है। सत्यता यह है कि भारत, चीन व पाकिस्तान के संयुक्त खतरे से चिंतित है।[2]

उल्लेखनीय है कि जेम्स वूस्ले, जो कि सी०आई०ए० के पूर्व निदेशक रहे हैं, ने अमेरिकी सीनेट में बयान दिया था कि बीजिंग एक परमाणु शक्ति पाकिस्तान को महत्वपूर्ण क्षेत्रीय मित्र मानता है जो कि भारत की बढ़ती सैन्य शक्ति को संतुलित करने के मार्ग में एक उपयोगी साधन है.......संभव है कि बीजिंग ने सन् 1992 में एन०पी०टी० में आने के पूर्व, इस्लामाबाद को परमाणु शस्त्र सम्बन्धी महत्वपूर्ण सहायता दी थी, जिसमें प्रशिक्षण एवं औजार भी शामिल है।[3] चीन ने 1992 के बाद भी पाकिस्तान व ईरान को मिसाइल तकनीक का हस्तांतरण किया है यद्यपि एम०टी०सी०आर० श्रेणी की मिसाइल भले ही न दिया हो।[4]

---

1 Government of India, Ministry of Defence Annual Report, 1997-98, P-2-3

2 Tension between India & Pakistan Remains U.S. concern, USIS official Text, 7 Dec., 1995.

3 Hearing before the committee on Governmental Affair, United States senate, 103rd Congress, First Session, 24 February 1994, Witnesses : R. James Woosley

4 Einhorn Statement on Nuclear Co-operation with China, USIS Official Text, 5 Feb-1998 P-2.

यदि हम शीत युद्ध के बाद की अमेरिकी नीति का विश्लेषण करें तो पाएगे कि अमेरिका ने अप्रसार नीति को राजनीतिक मुद्दा बनाकर अपना हित साधन करना चाहा। क्लिंटन प्रशासन ने एन०पी०टी० व सी०टी०बी०टी० पर हस्ताक्षर के लिए भारत व पाकिस्तान के प्रति प्रलोभन व दंड की नीति को अपनाया। पाकिस्तान को इस पर हस्ताक्षर के बदले एफ-16 विमान की सप्लाई और प्रतिबंध में छूट का लालच दिया गया तो भारत को उसके एल०सी०ए० प्रोजेक्ट के लिए उच्च एवीयोनिक्स तकनीक, मल्टी फाइटर समझौतों के अन्तर्गत कोटे में छूट, संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में स्थायी सदस्यता व सैन्य उपकरण व तकनीक का लालच दिया गया। एक खरतरनाक कदम उठाते हुए राष्ट्रपति क्लिंटन ने चीन को दक्षिण एशिया में मध्यस्थता करने का प्रस्ताव रखा।[1] इस प्रकार अमेरिका ने भारत के साथ अलग व चीन व पाकिस्तान के साथ अलग नीति अपनाई।

इसी प्रकार भारत को एम०टी०सी०आर० कानून के तहत दंडित किया गया तो अमेरिका ने खुद इसका उल्लंघन कर इजराइल को मिसाइल तकनीक का हस्तांतरण किया तथा चीन व पाकिस्तान के बारे में भी कोई कार्यवाही नही की। यह सब नीतियाँ अमेरिका की अप्रसार नीति की खामियाँ ही बताती हैं और इससे नुकसान देर सबेर अमेरिका को भी होगा। अमेरिका ने ईरान-इराक युद्ध व शीत युद्ध के समय इराक को प्रोत्साहन दिया। अब वही इराक उसके लिए खतरा बना है तथा अब उसके साथ अपना हित न होने के कारण अमेरिका उसकी शक्तियों को नष्ट करना चाह रहा है, जो की एक समय उसके द्वारा ही नजरअंदाज की गई थी। चीन की गतिविधियों की अनदेखी ने पाकिस्तान को शक्ति सम्पन्न कर दिया तथा पाकिस्तान की अनदेखी ने उत्तरी कोरिया को परमाणु शस्त्र सम्पन्न कर दिया है।

अतः अब अमेरिका को भारत की सामरिक जरूरतों की यथार्थता को समझना होगा तथा अपनी नीति पर पुर्नविचार करना होगा जिसने अप्रसार की जगह प्रसार को ही बढ़ावा दिया है। भारत व अमेरिका के बीच सी०टी०बी०टी० पर गतिरोध अभी भी जारी है। भारत के परमाणु शस्त्र कार्यक्रम को रोकने में विफल अमेरिका ने आतंकवाद

---

1 Pravin Sheth, Post Pokhran Nuclear Politics, N. Delhi, rawat Publication, 1999, P-112

के विरूद्ध भारत को एक सहयोगी माना है तथा नए बुश प्रशासन ने 2001 में भारत पर से आर्थिक प्रतिबंधों को समाप्त कर दिया है। सी०टी०बी०टी० पर अमेरिका ने स्ट्रोव टालबोट व भारत के जसवंत सिंह के बीच गई दौर की बातचीत का निष्कर्ष इतना तो रहा ही है कि अमेरिका ने भारत के रूख को और अधिक सूक्ष्म दृष्टि से समझा है। विश्लेषकों का मत है कि सी०टी०बी०टी० के अभिपुष्टीकरण में स्वयं विफल अमेरिका संभवतः इस तथ्य को स्वीकार कर चुका है कि भारत पर सी०टी०बी०टी० का दबाव डालने के बजाए एन०एम०डी० पर भारत का समर्थन प्राप्त कर लिया जाय। बुश प्रशासन द्वारा अपनाई गई आक्रामक सुरक्षा नीति के कारण परमाणु अप्रसार पर वार्ता भले ही जारी रहे, अमेरिका सिद्धान्त रूप में भारत के 'न्यूनतम परमाणु प्रतिरोध' को स्वीकार कर चुका है। इस सन्दर्भ में न्यूनतम् का अर्थ भारत को ही निर्धारित करना है न कि अमेरिका को।

सार्वभौमिक अप्रसार नीति के अंतर्गत इस समय अमेरिका को सी०टी०बी०टी०, स्र्टाट-III (रूस के साथ) बी०टी०डब्लू०सी०, एफ०एम०टी०सी० पर कार्य करना है। जिसमें स्टार्ट-II व स्टार्ट-III रूस से जुड़े है। अन्य मुद्दों पर अमेरिका को भारत का महत्वपूर्ण सहयोग चाहिए। जो कि भारत की सुरक्षा आवश्यकताओं को समझते हुए, बिना भेदभाव की नीति अपनाने से ही संभव हैं।

भारत के परमाणु शस्त्रों व कार्यक्रम पर अमेरिका में यह माना जाता है कि भारत अपनी परमाणु महत्वाकांक्षा चीन को खतरा बनाकर न्यायोचित ठहराना चाहता है, किन्तु विश्लेषण करने पर पता चलता है कि भारत चीन से मुख्यतः 1962 के युद्ध, 1964 के परमाणु परीक्षण एवं 1965 का भारत पाक युद्ध जिसमें चीन ने पाक का साथ दिया तथा पाक को भारत के विरूद्ध परिसीमन के लिए इस्तेमाल करने से परेशान हुआ। तभी भारत ने चीन को दृष्टिकोण में रखकर स्नेप-1965, पूर्णिमा सयंत्र-1972, पोखरण-I -1974 मिसाइल कार्यक्रम- 1983 शुरू किया और अंततः भारत ने सन् 1998 के पोखरण-II का परीक्षण कर अपने को परमाणु शक्ति घोषित कर दिया।

अतः परमाणु शक्ति सम्पन्न भारत व अमेरिका के बीच परमाणु अप्रसार का मुद्दा आगे आने वाले समय में उतना उत्तेजित नहीं करेगा क्योंकि स्वयं अमेरिका

अपने एन०एम०डी० कार्यक्रम को चालू रखने में प्रयासरत है और उसने ए०बी०एम० संधि से अलग होने का नोटिस भी रूस को दिया है तथा उसकी सीनेट सी०टी०बी०टी० को अस्वीकार कर चुकी है। इस कारण अमेरिका द्वारा आक्रामक सुरक्षा नीति को अपनाने व नए बुश प्रशासन द्वारा चीन को अपना प्रतिद्वन्दी मानने के कारण उसकी विदेश नीति में बदलाव स्पष्ट है, जो भारत पर परमाणु विकल्प को समाप्त करने का नैतिक दबाव नहीं बना सकती। आज आवश्यकता है कि अमेरिका सहित सभी परमाणु शक्ति सम्पन्न देश अपने परमाणु शस्त्रों में गुणात्मक सुधार बंद करे और समयबद्ध कार्यक्रम द्वारा अपने परमाणु भंडार को समाप्त करे तभी भारत पर नैतिक दबाव डाला जा सकता है अन्यथा समय-समय पर यह मुद्दा उठकर भारत-अमेरिका द्विपक्षीय संबंधों को प्रभावित करता रहेगा क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर राष्ट्रीय हित सदैव स्थिर नहीं रहते हैं।

चतुर्थ अध्याय
भारत-अमेरिका : रक्षा व सामरिक संबंध

भारत अमेरिका : रक्षा व सामरिक संबंध

भारत-अमेरिका संबंध में रक्षा, सामरिक व तकनीकी पहलू को प्रभावित करने वाले कारण शीत युद्ध व उसके उपरान्त अलग-अलग रहे और इसने द्विपक्षीय संबंध पर गहरा प्रभाव डाला। शीत युद्ध के उपरान्त बनी परिस्थितियों ने दोनों देशों की सामरिक आवश्यकताओं में सहयोग के दायरे को बढ़ाया है।

(I) रक्षा व सैन्य प्रकरण : सहयोग व मतभेद

कोई सहयोग या साझेदारी, पारस्परिक हितों को पूर्ण रूप से समझे बिना भी अस्तित्व में रह सकती है, यदि आपसी विश्वास कायम रहे, विभिन्न मुद्दों पर आदरपूर्वक एक दूसरे को सुना जाए और खतरों से बचा जाए, परन्तु भारत-अमेरिका के बीच इसका अभाव रहा, जो उनके बीच रक्षा व सामरिक सहयोग के क्षेत्र को सीमित कर देता था। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिका के सार्वभौमिक एजेंडे, में भारत की सुरक्षा के बजाय उसके पड़ोसियों की सुरक्षा पर अधिक ध्यान दिया गया, जिसके कारण अमेरिका के सार्वभौमिक, अन्तर्राष्ट्रीय और क्षेत्रीय मुद्दों के दृष्टिकोण पर भारत की असन्तुष्टि जारी रही।

भारत ने किसी सैन्य गुट या गठबंधन में शामिल न होने की नीति बना रखी थी। अतः नाटो (N.A.T.O.), सीटो (S.E.A.T.O.) व सेंटो (C.E.N.T.O.) के गठन के राजनीतिक व सामरिक प्रभाव से भारत चिंतित हुआ। प्रारम्भ में नेहरू जी ने नाटो को एक सुरक्षात्मक संगठन समझा परन्तु जल्दी ही उन्होंने यह महसूस किया कि यह भारत के राष्ट्रीय हितों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव डाल सकता है। सितम्बरं 1954 में, नेहरू जी ने कहा कि नाटो का गठन कुछ वर्षो पूर्व हुआ है। जब मैनें इसे पहली बार परखा तो यह कुछ देशों का संयुक्त सुरक्षा के लिए सुरक्षा संगठन लगा। उस समय यह मुझे तात्कालीन घटनाओं से भयभीत कुछ देशों का सुरक्षा के लिए न्यायोचित कदम लगा परन्तु नाटो के विकास को देखने पर यह लगा कि सर्वप्रथम इसका भौगोलिक विकास हुआ। जो भूमध्य क्षेत्र में फैला। अफ्रीका के तटों, पूर्वी अफ्रीका व दूर के ऐसे देशों तक इसका विकास हुआ जिनका अटलांटिक

समुदाय से कोई संबंध न था। नाटों के प्रस्तावों ने धीरे-धीरे संगठन के क्षेत्र व प्रभाव को बढ़ाया। जब यह संगठन अस्तित्व में आया था तो यह सुरक्षा के लिए था परन्तु हमने यह पाया कि यह उपनिवेशवादी शक्तियों को संरक्षित करता है। यह मुझे स्पष्ट नहीं है कि औपनिवेशिक शक्तियों, जो नाटो की सदस्य थीं, के अधिकार के संरक्षण का प्रश्न नाटो की सुरक्षा से कैसे संबधित है।.....पुर्तगाल ने हाल ही में यह सन्दर्भ दिया है कि नाटो के व्यापक क्षेत्रों में गोवा भी शामिल है।[1]

इसी प्रकार सीटो व सेंटो के बारे में भी संदेह था। इसके सन्दर्भ में भी नेहरू जी ने लोकसभा में कहा था कि........यहॉ पर कोई भी यह सोच नहीं सकता कि पाकिस्तान इस गठबंधन में इसलिए शामिल होगा क्योंकि उसे सोवियत संघ से तात्कालिक या दूर से कोई खतरा है। पाकिस्तानी समाचार पत्र और पाकिस्तान के जिम्मेदार व्यक्तियों ने बयान दिया है और यह साफ किया है कि वह इस गठबंधन में भारत के कारण शामिल हुए है। .....वे भारत से शत्रुता के कारण बगदाद पैक्ट (बाद में सेंटो) व सीटो में शामिल हुए हैं।[2]

इन सब गठबंधनों में अमेरिका की भूमिका, कश्मीर पर अमेरिका का दृष्टिकोण, पाकिस्तान को अमेरिकी सहयोग व विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक व सामरिक मुद्दों पर भारत व अमेरिका के बीच वैचारिक मतभेद ने द्विपक्षीय सामरिक व सैन्य सहयोग का कोई ठोस आधार तैयार नहीं होने दिया।

1947 तक दक्षिण एशिया का क्षेत्र अमेरिका के लिए बहुत महत्व का न था। अमेरिका ने अक्टूबर 1947 में भारत के सैन्य सहायता के अनुरोध को अस्वीकार कर दिया[3] क्योंकि वह यूरोपीय पुनर्निर्माण में एवं शीत युद्ध में फॅसा हुआ था। अमेरिका की नीति में दक्षिण एशिया का महत्व कोरिया संकट के बाद बढ़ा। भारत की गुटनिरपेक्ष नीति व अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर घटी घटनाओं पर भारत के रूख ने भारत व अमेरिका के बीच सैन्य सहयोग को सीमित रखा। 1950 के दशक की

---

1 Jawaharlal Nehru speeches, 1953-1957, Vol. 3, Publication Division, Ministry of information and broadcasting, Government of India, Third Edition, May 1983, P-268-69.

2 Ibid, P-319-20.

3 Stephen P. Cohen, U.S.- Pakistani Security Relations, in united states - Pakistan relations, Leo E. Rose and Noor A. Husain (Eds.), Berkley : Institute of East Asian Studies, 1985, P-17.

शुरूआत में अमेरिकी नीति निर्माता यह सोचते थे कि यदि दक्षिण एशिया साम्यवादी परिक्षेत्र में आ गया तब सोवियत परिक्षेत्र में करीब 1,300,000,000 होगे तथा हम करीब 900,000,000 तक घट जाएगे।[1] इस भय के कारण अमेरिका ने भारत से सहयोग का प्रयास किया परन्तु वह उसे अपने गुट में लाने में सफल न रहा। इसका फायदा पाकिस्तान को मिला और उसने अमेरिका से सैन्य सहायता प्राप्त की तथा उसके साथ सैन्य गठबंधन में भी भागीदार हुआ।

अब अमेरिका पाकिस्तान की कीमत पर भारत से सहयोग को तैयार न था। इसके कई उदाहरण हैं, जब अमेरिका ने भारत को सैन्य सहायता देना अस्वीकार कर दिया क्योंकि इससे पाकिस्तान की सुरक्षा को खतरा होता तथा उसके नाराज होने का डर था। मई 1960 में भारतीय रक्षा मंत्री कृष्ण मेनन ने हवा से हवा मे मार करने वाली साइडविंडर मिसाइल की माँग की, जो अमेरिका पाकिस्तान को देने का वादा कर चुका था। पाकिस्तान के नाराज होने के भय से अमेरिका ने भारत को इसके लिए ब्रिटेन से सम्पर्क करने को कहा।[2]

भारत व अमेरिका के बीच सैन्य सहयोग का एक संक्षिप्त काल 1962 के भारत व चीन के संघर्ष के दौरान आया। अमेरिका ने भारत को सैन्य सहायता उपलब्ध कराई क्योंकि भारत चीन के विरूद्ध परिसीमन के साधन के रूप में कार्य कर सकता था। भारत को यह अमेरिकी सहायता हल्के अस्त्र-शस्त्र व संचार साधनों से अधिक न थी, जो कि विशेष रूप से पहाड़ी युद्ध के सन्दर्भ में ही कारगर थी। यह सहायता पाकिस्तान को ध्यान में रखते हुए दी गई थी। 29 अक्टूबर 1962 को नेहरू जी द्वारा अमेरिकी राजदूत गालब्रेथ को लिखे गए पत्र में सैन्य सहायता का अनुरोध किया गया और अमेरिका से यह कहा गया था कि वह इस सहायता के बदले में सैन्य गठबंधन में शामिल होने पर जोर न दे।[3] इस प्रकार भारत अमेरिकी सहायता के सन्दर्भ में सशंकित था।

---

1 Hearings, 82nd Congress, Ist Session, US House of Representatives, Committee on Appropriations, sub-committee on mutual security Appropriations, Mutual security Programme Appropriations for 1952, P- 634.

2 Dinesh Kumar, Defense in Indo-US Relations, Occasional Paper, IDSA, New Delhi, Shirl Avtar Printing, 1997, P-17.

3 Ibid, P-18

भारत व अमेरिका के बीच एफ0 -104 स्टारफाइटर विमान को लेकर भी मतभेद रहे। अमेरिका ने इस विमान को पाकिस्तान को दे दिया था परन्तु उसने इसे भारत को देने से मना कर दिया। इसके लिए अनेक कारण दिए गए, उनमें से प्रमुख यही था कि अमेरिका भारत को उन्नत तकनीक देकर पाकिस्तान को नाराज नहीं करना चाहता था। इस प्रकार 1962 के युद्ध के बाद दूरगामी सैन्य सहयोग की स्थिति को पाकिस्तान की तरफ के झुकाव ने समाप्त कर दिया। भारत में अमेरिकी रक्षा सहयोग के प्रमुख ने कहा भी कि अमेरिका ने भारत के पश्चिमी हार्डवेयर खरीदने के प्रयास को फलीभूत नहीं होने दिया। भारत-चीन युद्ध के बाद अमेरिका ने भारत को एफ०-104 युद्धक विमान देने से इंकार कर दिया। वास्तव में भारत को किसी प्रकार के आक्रामक सैन्य आयुध की बिक्री को अमेरिका ने पाकिस्तान की सुरक्षा के प्रभावित होने के आधार पर अस्वीकार कर दिया।[1] अमेरिकी दृष्टिकोण ने यह संकेत दिया कि चीन को परिसीमित करने की अमेरिकी इच्छा पाकिस्तानी कारक के कारण कारगर नहीं है और यह भारत व अमेरिका के सैन्य सहयोग में मुख्य बाधा में से एक रही।

पाकिस्तान को साम्यवाद को रोकने के नाम पर दी गई सैन्य सहायता का भारत के विरूद्ध ही प्रयोग हुआ और यह उस अमेरिकी आश्वासन के खिलाफ था जिसमें इसका प्रयोग भारत के विरूद्ध न होने की बात कही गयी थी। 1965 के युद्ध के समय अमेरिका द्वारा भारत व पाकिस्तान दोनों की सैन्य सहायता रोक दी गई थी। इस समय पाकिस्तान से अमेरिका के थोड़ा अलगाव का कारण यह था कि अमेरिका में उन्नत सैन्य तकनीकी विकास के कारण अब उसे पाकिस्तान की आवश्यकता उतनी नहीं थी। अतः पाकिस्तान का पूर्व का सामरिक मूल्य कम हुआ था। पाकिस्तान के चीन के साथ संबंध बढ़ाने को अमेरिका ने संदेह से देखा तथा अमेरिका भी इस समय वियतनाम में उलझा हुआ था।

---

1 Lt. Col. John A. Caputo (USAF),The Indo-Soviet Relationship and how it affects U.S. Military Assistance to India, Paper submitted to the National war College, National\ Defence University, washington D.C., 19 February 1987.

इस समय पाकिस्तान के प्रति अमेरिका के स्थिर भाव का भारत को कोई फायदा न हुआ। भारत व अमेरिका के सैन्य संबंध 1965 से मार्च 1973 तक स्थिर ही रहे और इस बीच कई घटनाक्रमों ने इसमें बाधा उत्पन्न की। भारत द्वारा नाभिकीय अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर से इंकार व सोवियत संघ से मैत्री के कारण अमेरिका की नाराजगी भारत के प्रति बढ़ी। भारत द्वारा अपनी सुरक्षा को देखते हुए यह कदम उठाए गए थे क्योंकि इस समय बनी अमेरिका चीन व पाकिस्तान के त्रिकोण ने भारत की सुरक्षा को खतरे में डाल दिया था। 1971 के भारत-पाकिस्तान संघर्ष के दौरान यह संकट प्रत्यक्ष रूप से दिखा था।

नाभिकीय अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर से मना करने तथा सोवियत संघ के साथ सहयोग व मैत्री की संधि ने भारत को अमेरिकी तकनीक के निर्यात में बाधा उत्पन्न की क्योकि अमेरिका को यह डर था कि भारत से यह तकनीक सोवियत संघ तक पहुँच सकती है, जो उसके सामरिक हितों के अनुरूप न होगा। इसके साथ ही साथ अमेरिका को यह भी आशंका थी कि भारत को दी जा सकने वाली तकनीक यदि दोहरे प्रयोग वाली हुई तो भारत उसे अपने नाभिकीय कार्यक्रम में प्रयोग कर सकता है।

.मार्च 1973 को भारत ने 91 मिलियन डालर के संचार उपकरणों को खरीदा, जो 1962 के युद्ध के बाद हिमालय में स्थापित रडार सिस्टम की पूर्णता के लिए था। 24 फरवरी 1975 को फोर्ड एडमिनिस्ट्रेशन ने एक नई नीति की घोषणा की जिसके अनुसार नकद भुगतान पर अलग-अलग प्रकरण के आधार पर शस्त्र के अनुरोध पर विचार करना था। इसमें शस्त्र के प्रकार, उसकी संहारक क्षमता, संवेदनशीलता तथा कीमत के आधार पर बेचने में कोई नियन्त्रण नहीं लगाया गया।[1] इस नीति ने 1971 के सैन्य सहयोग पर रोक को तोड़ा, जो दिसम्बर 1979 में अफगानिस्तान में सोवियत संघ के हस्तक्षेप तक जारी रही। अमेरिका द्वारा अपना रूख नर्म करने पर भी आँकड़े, भारत व अमेरिका के पारस्परिक सहयोग को उच्च स्तर पर प्रदर्शित नहीं करते थे। 1976 से 1980 के बीच भारत ने अपने 2.8

1 Staphen P. Cohen, U.S. Weapons in South Asia: A Policy Analysis, pacific Affairs, Vol. 49, No. 1, Spring 1976 P-62.

बिलियन डालर के सैन्य खरीद में से केवल 50 मिलियन डालर की खरीद अमेरिका से की।[1]

भारत ने 1977 में डी.पी.एस.ए. युद्धक विमान (SAAB-Viggen Deep Penetration Strike Aircraft) की खरीद की पहल की, वास्तव में यह विमान स्वीडन निर्मित था, जिसमें अमेरिकी इंजन और एवियोनिक्स की अमेरिकी डिजाइन थी। अतः इसको किसी तीसरे देश को देने में अमेरिकी सहमति आवश्यक थी। अमेरिका ने दक्षिण एशिया में सैन्य संतुलन बिगड़ने व शस्त्र दौड शुरू होने का हवाला देते हुए इस सौदे को नहीं होने दिया। इसमें भी पाकिस्तानी कारक महत्वपूर्ण रहा।

भारत को दी जाने वाली सैन्य सहायता में लगने वाले समय व प्रक्रिया का भी द्विपक्षीय सैन्य सहयोग पर विपरीत प्रभाव पड़ा। यह प्रक्रिया साधारण चीजों के सन्दर्भ में भी अपनायी जाती थी। 1979 में भारत द्वारा 200 की संख्या में कम वजन के 155mm होवित्जर (howitzer), 60 की संख्या में टो लान्चर और करीब 4000 की संख्या में मिसाइल के खरीद की इच्छा व्यक्त की गई, यह खरीद भारत व अमेरिका के बीच अब तक की सबसे बडी खरीद होती। 1980 में भारत ने 0.50 कैलीबर की ब्राउर्नीग हैवी मशीनगन की भी बात की परन्तु भारत के लिए अपनायी जाने वाली प्रक्रिया व इसमें लगने वाले समय से तंग आकर भारत ने उस सौदे को रद्द कर दिया। भारत के सन्दर्भ में अमेरिका ने खाद्य व आर्थिक सहायता को सैन्य बिक्री से जोड़ रखा था तथा वह कश्मीर आदि संवेदनशील मुद्दों को भी इससे जोड़ता था। इसने भारत में यह अवधारणा फैलाई की अमेरिका भारत की कमजोरियों का फायदा उठा रहा है।

अमेरिका पर पाकिस्तानी प्रभाव के कारण भारत की सुरक्षा के लिए बढ़ रहे खतरों से निपटने के लिए भारत ने सोवियत संघ से अपने सैन्य सहयोग को बढ़ाया। यह सहयोग 1950 के दशक के मध्य में मिग-21 की खरीद से ही शुरू हो गया परन्तु इसमें और प्रगाढ़ता व तेजी 1962 के बाद, भारत के सैन्य

---

1 Palmer, The United States and India, P-190.

आधुनिकीकरण में अमेरिका द्वारा सहयोग न करने के बाद आयी।[1] भारत व सोवियत संघ की इस मैत्री ने भारत व अमेरिका के द्विपक्षीय संबंधों में कडुवाहट घोली और यह भारत को अमेरिका द्वारा उच्च तकनीक प्रदान करने में बाधक भी बनी।[2] भारत ने सोवियत संघ से शस्त्र प्रणाली की खरीद को जैसे-जैसे बढ़ाया, वैसे-वैसे ही अमेरिका व पश्चिमी देशों ने इससे बेहतर या बराबर के शस्त्र व तकनीक भारत को देने में कोताही की, इससे भारत सैन्य सहयोग के क्षेत्र में सोवियत संघ के और पास होता गया। सैन्य क्षेत्र में भारत का सोवियत संघ से सहयोग बढने का एक और कारण यह रहा कि सोवियत संघ ने अन्य किसी प्रकार की सहायता को सैन्य सहायता से नहीं जोड़ा और कोई शर्त नहीं लगाई।

अफगान संकट की वजह से अमेरिका ने पाकिस्तान को सैन्य सहायता एक बार फिर बढ़ा दी। इस समय रीगन प्रशासन ने शस्त्र हस्तांतरण नीति को ढ़ीला किया परन्तु इस ढील का लाभ उन्हीं देशों को था जिनके साथ अमेरिका के साझा सुरक्षा हित, गठबंधन या सहयोगात्मक संबंध थे।[3]

रीगन द्वारा शस्त्र निर्यात में अपनाई गई नीति में भारत सही ढंग से नहीं बैठता था परन्तु अक्टूबर 1981 में राष्ट्रपति रीगन व प्रधानमंत्री श्रीमति इंदिरा गांधी की मैक्सिको में बैठक के बाद दोनो देशों में सहयोग की आशा बढ़ी। उसके उपरान्त भारत ने एफ०-5G विमान की खरीद का प्रस्ताव अमेरिका के सामने रखा। भारत के लिए इस विमान का महत्व इस कारण से था कि उसे अपने लाइट कामबैट एयरक्राफ्ट (LCA) के लिए इस विमान के उपकरण की आवश्यकता थी। इस बार भी अमेरिका की हिचकिचाहट सामने आई और सैन्य सहयोग को गति न मिल सकी। भारत के साथ सैन्य सहयोग में यह बाधा बहुत महत्वूपर्ण रही कि भारत शस्त्र खरीद के साथ-साथ तकनीक के हस्तांतरण व उसके साझा निर्माण की भी बात करता था, जो अमेरिका को मंजूर नहीं होता था। इस सन्दर्भ में कोकम (Committee for multilateral controls) महत्वपूर्ण था, जो किसी भी सामरिक

1 Mark Tully and Zareer Masani, From Raj to Rajiv : 40 years of Indian Independence, London, BBC Books, 1988, P-42.

2 Caputo, The Indo-Soviet Relationship, P-1 - 2.

3 James L. Buckley, Arms Transfers and the National Interest, Department of State Bulletin, July 1981, P-52.

तकनीक की बिक्री पर रोक लगता था जिसका पूर्वी ब्लाक के पास जाने का खतरा हो। अतः भारत की तकनीक हस्तांतरण की मांग को स्वीकृति नहीं मिलती थी।

1982 में प्रधानमंत्री इंदिरा गॉधी की अमेरिका यात्रा ने विज्ञान व तकनीकी सहयोग के क्षेत्र में पहल की, इसकी वजह से बहुत वर्षो में पहली बार उच्च तकनीक के हस्तांतरण की संभावना दिखी जिसमें सैन्य तकनीक भी थी। इस पर भारत व अमेरिका में गंभीर चर्चा हुई।[1] इस समय भारत व अमेरिका के बीच सैन्य संबंधों में सकारात्मक रूझान के कई कारण रहे। इनका विश्लेषण करने पर यह पता चलता है कि भारतीय पक्ष की यह इच्छा थी कि सैन्य आपूर्ति के स्रोतों की सोवियत संघ पर निर्भरता कम की जाए। अब भारत को सोवियत संघ से पूर्व की तरह व्यापार शर्तो में सुविधाएं नहीं प्राप्त हो रही थी तथा यह महसूस किया जा रहा था कि सोवियत शस्त्र टिकाऊ व उपयोगी थे परन्तु वे पश्चिमी शस्त्रों की तरह कारगर न थे। अफगान संकट के बाद दक्षिण एशिया में एफ०-16 विमान, फाल्कन व हारपून मिसाइल व नई तकनीकों का आगमन हुआ, इसके विरूद्ध कारगर हथियार पश्चिम से ही मिल सकते थे। इसके साथ-साथ अमेरिकी पक्ष यह था कि भारत को शस्त्र बिक्री बढ़ाकर भारत पर सोवियत प्रभाव को कम किया जाए।

इस सैन्य सहयोग को बढ़ाने के लिए भारत व अमेरिका ने 1984 में तकनीक हस्तांतरण के लिए मेमोरेण्डम ऑफ एण्डरस्टैडिग (MOU) पर हस्ताक्षर किया जो रीगन प्रशासन द्वारा नेशनल सिक्योरिटी डिसिज़न डारेक्टिव 147 (NSDD-147) के तहत भारत व अमेरिका के संबंध को करीब लाने का प्रयास था। इसमें अमेरिका की भारत के शस्त्र प्राप्त करने की रणनीति को समर्थन देने की इच्छा इस आश्वासन पर निर्भर थी कि भारत से यह तकनीक दूसरे के पास नहीं जाएगी और इसका प्रयोग पूर्व में सहमति लिए हुए क्षेत्रों में ही होगा।

भारत ने कुछ समय से स्वदेशी शस्त्र उत्पादन की आवश्यकता पर जोर दिया था। अतः उसने हमेशा उच्च तकनीक के शस्त्रों को घरेलू स्तर पर उत्पादन

---

1 Inder Malhotra, Indira Gandhi : A Personal and Political Biography, London, Sydney, etc : Hodder and Stoughton, 1980, P-264.

का लाइसेंस प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की।[1] MOU पर हस्ताक्षर से भारत को इसमें कुछ सफलता मिली।

भारत मेमो आफ अन्डरस्टैंडिंग (M.O.U.) की निम्न बातों पर सहमत हुआ-

- भारत को आयातित सैन्य उपकरणों या इसके पार्टस को भारत आने से पहले दूसरी जगह नहीं भेजा जाएगा।
- यदि कहा गया तो उन सामानों को अपने अधिकार में होने का प्रमाण देना होगा।
- भारत की इम्पोर्ट सर्टिफिकेट इश्यूइंग अर्थोरिटी (ICIA) के लिखित अनुमोदन के बिना उन सामानों को पुनः निर्यात नहीं किया जाएगा।
- आई०सी०आइ०ए० के लिखित अनुमोदन के बिना एम०ओ०यू० में निर्दिष्ट सामानों को भारत के अंदर भी स्थानान्तरित नहीं किया जाएगा।[2]

एम०ओ०यू० पर हस्ताक्षर के बाद यह पाया गया कि इसमें उच्च तकनीकी उत्पादों के लिए कोई प्रावधान नहीं था, जैसे : कम्प्यूटर, जिसका संभावित अंतिम प्रयोग नाभिकीय कार्यक्रम में था। इसके लिए अलग से कमोडिटी कंट्रोल एग्रीमेंट करना पड़ा और इस पर निम्न सहमति बनी।

- भारत के नाभिकीय कार्यक्रम के असुरक्षित क्षेत्रों व सुविधाओं में अमेरिकी तकनीक का प्रयोग नहीं होगा।
- भारतीय नाभिकीय सुविधाएं जो आंशिक रूप से सुरक्षित है, अमेरिकी उच्च तकनीक का प्रयोग नहीं कर सकतीं।
- असुरक्षित व आंशिक सुरक्षित सुविधाओं में दोहरे प्रयोग में आने वाली तकनीक पर समझौता अलग-अलग मामले के आधार पर होगा, यदि इसका प्रत्यक्ष प्रयोग नाभिकीय शस्त्र के पदार्थो के लिए न हो।[3]

---

1. Raju G.C. Thomas , Indian Security Policy, Princeton : Princeton University Press, 1986, P-246-74.
2. Government of India, Ministry of External Affairs, New Delhi, Import Certificate Procedures Under the Indo-US MOU On Technology Transfer „P-2.
3. Satu P. Limaye, U.S.- Indian Relations. westview Press, 1993, P-205.

अमेरिका में एम०ओ०यू० के अन्तर्गत आने वाली चीजों व उसके लक्ष्य की व्याख्या में विवाद रहा। यह विवाद मुख्यतः दोहरे प्रयोग में आने वाली तकनीक व सैन्य तकनीक के संबंध में था। अतः दोनों देशों में अपेक्षित सहयोग में गति नहीं आई। भारत ने 1985 में उच्च तकनीक की सुरक्षा के लिए एम०ओ०यू० पर हस्ताक्षर कर दिए परन्तु उसने जनरल सिक्योंरिटी ऑफ मिलिट्री इनफोरमेशन एग्रीमेंट (GSOMIA) पर हस्ताक्षर से इंकार किया क्योंकि भारत के अनुसार एम०ओ०यू० में पर्याप्त चीजें शामिल है और कोई अतिरिक्त समझौता राष्ट्रीय संप्रभुता में हस्तक्षेप है। भारत के दृष्टिकोण में जनरल सिक्योंरिटी ऑफ मिलिट्री इनफोरमेशन एग्रीमेंट (GSOMIA) भारत में उच्च तकनीक में पहुँचने में देरी करने की अमेरिकी नीति थी।[1] इसके बावजूद सैन्य संबंध बढ़े, जिसका अभाव इसके पूर्व में था। अमेरिका ने भारतीय नौ सैनिक जहाजों को उन्नत करने के लिए एल.एम.-250 गैस टरबाइन की बिक्री की। इसके बाद एक महत्वपूर्ण सैन्य तकनीक की बिक्री हुई, यह टैंकों के लिए रात्रि में देख सकने वाले उपकरण थे, जिसे 1980 में पेंटागन ने देने से इंकार कर दिया था। 1980 के दशक के मध्य में न केवल नाइट विजन तकनीक बल्कि इस उपकरण के सह उत्पादन के लिए भारत को मंजूरी दी गई।[2] 1980 के दशक में सैन्य सहयोग के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण घटना, भारत के एल.सी.ए. (Light Combal Airocraft) प्रोजेक्ट में अमेरिकी सहयोग था। अमेरिका ने एल.सी.ए. के लिए जी.ई.एफ.-404 इंजन की अनुमति दी, बाद में इसमें भारत का स्वदेश निर्मित इंजन कावेरी लगना था।

भारत व अमेरिका के बीच इस समय के संबंध में लिंडस्टार्म (Lindstrom) रिपोर्ट का भी योगदान है। इस रिपोर्ट में उन क्षेत्रों की पहचान की गई जिसमें अमेरिका भारत के साथ सहयोग का इच्छुक था। इसने अमेरिका के सहयोग की सीमा का भी परीक्षण किया। इस रिपोर्ट ने विशेषतः तीन क्षेत्र, एल.सी.ए. प्रोजेक्ट, भारत का राष्ट्रीय मिसाइल टेस्ट रेंज एव एंटी आर्मर तथा मेन बैटिल टैंक विकास की घोषणा की जिसमें सैन्य सहयोग पूर्व से ही चल रहा था। इसमें मिशन एरिया

---

1 Lt. Col. John A. Caputo (USAF), "The Indo-Soviet Relationship and How it Affects U.S. Military Assitance to India," February 1987, P-21.

2 India Today, 15 July 1985.

एप्रोच की बात की गई, जिसके तहत अमेरिका उन्हीं क्षेत्रों में सहयोग करता जिससे कोई क्षेत्रीय समस्या न उत्पन्न हो। सैन्य सहयोग में मिशन एरिया एप्रोच उन क्षेत्रों में सहयोग बढाता जहॉ पर भारत व सोवियत संघ में सहयोग न था। इस रिपोर्ट में महत्वपूर्ण प्रोजेक्ट की पहचान की गई तथा सैन्य सहयोग को द्विपक्षीय संबंधों के अन्य पहलुओं, विशेषतः राजनीतिक मुद्दो से अलग रखने की बात कही गई।

1988 में भारत व अमेरिकी वायु सेना में एल.सी.ए. प्रोजेक्ट के लिए लेटर ऑफ आफर एंड एग्रीमेंट (LOA) पर हस्ताक्षर किए गए। पिछले बीस वर्षो में पहली बार भारत ने 'यू.एस. फॉरेन मिलिट्री सेल्स प्रोग्राम' (FMS) के तहत सहायता प्राप्त की। यह नीति अभी तक भारत व अमेरिका के बीच सहयोग की पुरानी नीति से अलग थी क्योंकि अभी तक सरकार व सरकारों के बीच आपसी सहयोग व समझौते होते थे।

यदि हम शीत युद्ध के अंत के पूर्व की स्थिति का आकलन करें तो पाएगे कि भारत व अमेरिका के बीच सैन्य सहयोग के क्षेत्र में पाकिस्तान एक प्रमुख बाधा के रूप में रहा, इसके साथ-साथ भारत द्वारा सोवियत संघ से सहयोग प्राप्त करने व नाभिकीय अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर न करने से अमेरिका भारत को उच्च तकनीक देने से बचता था क्योंकि इसके सोवियत संघ के पास चले जाने तथा भारत द्वारा अपने नाभिकीय कार्यक्रमों में इसे प्रयोग करने का खतरा था परन्तु 1980 के दशक में भारत व अमेरिका के बीच सहयोग बढ़ा यद्यपि इस दौरान अफगान संकट जारी था और पाकिस्तान एक बार फिर अमेरिका के लिए सामरिक रूप से महत्वपूर्ण हो गया था तथा अमेरिका से भरपूर सैन्य व आर्थिक सहयोग प्राप्त कर रहा था।

1980 के दशक में भारत व अमेरिका के सैन्य संबंध में सकारात्मक लक्षण दिखे परन्तु अभी भी कुछ ऐसी बुनियादी चीजें थी जो इनके संबंधों को सहज नहीं होने देती थी। इसमें प्रमुख था दोनों देशों के बीच सैन्य सहयोग पर दृष्टिकोण में अंतर। भारत का दृष्टिकोण पाँच स्तरीय पिरामिड के आकार का था, जिसमें तकनीक हस्तांतरण उसका आधार था, इसके बाद संयुक्त विकास करना, संयुक्त

उत्पादन, हथियारों की खरीद व इसके ऊपर मिलिट्री स्तर पर सहयोग। अमेरिकी दृष्टिकोण इसका उल्टा था।[1] इस संबंध में पेंटागन ने भी कहा कि भारत चेस खेल रहा है .और अमेरिका चेकर्स। हम लोग एक बोर्ड पर नहीं है। अतः इसके लिए विश्वासवर्धक कदमों C.B.M.s (Confidence Building Measures.) की आवश्यकता थी। शीत युद्ध के अंत के बाद बदली हुई परिस्थितियों में इस दिशा में काम किया गया। इस समय पाकिस्तानी कारक व सोवियत संघ कारक समाप्त हो चुके है तथा सामरिक व सैन्य समीकरण बदले है। इस कारण से भारत व अमेरिका सैन्य सहयोग के क्षेत्र में स्वाभाविक रूप से पास आए परन्तु आपसी शंका व विरोधाभास को दूर करना आवश्यक था।

इस दिशा में 1991 का किकलाइटर प्रपोजल (Kicklighter Proposal) महत्वपूर्ण रहा। इसमें निम्न चीजें सम्मिलित थी-

- भारत व अमेरिका के सैन्य प्रमुख एक दूसरे के यहाँ का दौरा करेगें।
- भारत अमेरिकी सामरिक सिम्पोजियम में दोनो देशों की सेनाओं की भागीदारी जारी रखना। जो भारत-अमेरिका के सुरक्षा संबंध की वर्तमान स्थिति तथा भविष्य की संभावनाओं पर वार्त्ता का मंच उपलब्ध करती है।
- भारतीय व अमेरिकी सेना के लिए 'एक्सक्यूटिव स्टियरिंग काउंसिल' की स्थापना हो जो लक्ष्य व उद्देश्यों की समीक्षा व उसे पुनः परिभाषित करें, जिससे भविष्य में सामरिक योजना में दोनो सेनाओं में अधिक सहयोग व विचार-विमर्श हो सके।
- वरिष्ठ अधिकारियों व स्टाफ की एक दूसरे के यहाँ यात्रा, जिससे समान उद्देश्य के लिए सूचनाओं व दृष्टिकोणों का आदान-प्रदान हो सके।
- कमाण्डर्स, लीडर्स व स्टाफ आफिशियल की व्यक्तिगत् ट्रेनिंग की व्यवस्था हो।
- एक दूसरे के साथ कार्य करने की क्षमता को बढ़ाने के लिए रीज़नल कांफ्रेंस में पारस्परिक सहभागिता पर जोर दिया जाय।

---

[1] Sidhu, Enhancing Indo-US Strategic Relations P-50.

भारत व अमेरिका ने इस दिशा में आगे बढ़ते हुए धीरे-धीरे कदम उठाए, जो 1990 के दशक व नई शताब्दी में भारत अमेरिका के बीच सैन्य सहयोग के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। जनवरी 1992 में एक आर्मी एक्सक्यूटिव स्टिरिंग ग्रुप (ESG) की स्थापना की गई और मार्च 1992 व अगस्त 1993 में क्रमशः नौसेना व वायुसेना को इसमें शामिल किया गया। इसकी वजह से दोनों देशों की सेनाओं के मध्य अभ्यास का एक नियमित क्रम शुरू हुआ। फरवरी 1992 में पहली बार भारतीय व अमेरिकी सेना व वायु सेना ने संयुक्त अभ्यास किया। 2002 में भी दोनों देशों की सेनाओं ने गर्मी में आगरा में तथा अक्टूबर में पहली बार अमेरिका की धरती पर अलास्का में सैन्य अभ्यास किया। अमेरिकी धरती पर किए गए अभ्यास का नाम 'जेरोनिमों थ्रस्ट' दिया गया।[1] इसी प्रकार दोनो देशों की नौसेना ने भी सितम्बर 2002 में भारत के कोच्ची में अब तक का अपना सबसे बड़ा अभ्यास किया।

भारत व अमेरिका के बीच सैन्य सहयोग की एक महत्वूपर्ण घटना तब हुई, जब जनवरी 1995 में, 'एग्रीड मिनट्स ऑन डिफेंस रिलेशन बिटविन दी यूनाइटेड स्टेट्स एंड एण्डिया' (Agreed Minutes on Defense Relations Between the United States and India) पर हस्ताक्षर किया गया। इस सैन्य सहयोग के तहत एक दूसरे की सेवाओं व असैनिक स्तर पर सहयोग के साथ-साथ सैन्य उत्पादन व अनुसंधान में सहयोग की बात है।

आपसी सहयोग व वार्ता को और गति प्रदान करने के लिए तीन विभिन्न ग्रुपों की भी स्थापना की गई : डिफेंस पॉलिसी ग्रुप (DPG), ज्वाइंट टेकनिकल ग्रुप (JTG) और प्वाइंट स्टियरिंग कमेटी (JSC) । डी०पी०जी० ने सैन्य सहयोग के मुद्दों के साथ-साथ संवेदनशील मुद्दों सी.टी.बी.टी. व कश्मीर को भी देखा। जे. एस.सी. ने संयुक्त अभ्यास के साथ-साथ व्यक्तिगत् वार्ता और सूचनाओं के आदान-प्रदान से अपने को संबद्ध रखा। दूसरी तरफ जे.टी.जी में डिफेंस टेनोक्रेटस है और सैन्य अनुसंधान से संबद्धित मुद्दों पर वार्ता होती है।

---

1 The Times of India, New Delhi, 10 October 2002.

भारत व अमेरिकी डिफेंस पालिसी ग्रुप की बैठक 1998 में भारत द्वारा परमाणु विस्फोट के बाद बंद हो गयी थी जो दिसम्बर 2001 से पुनः शुरू हो गयी है। शीत युद्ध के अंत के उपरांत तथा अमेरिका पर हुए आतंकवादी हमले के बाद अमेरिका की सामरिक जरूरतें बदली हैं। इस परिप्रेक्ष्य में एशिया में एक दूसरे के सामरिक हितों को देखते हुए तथा इस समय तेजी से उभरे आतंकवाद से निपटने के लिए भारत व अमेरिका के बीच सैन्य संबंधों को और प्रगाढ करने की जरूरत है तथा विभिन्न स्तरों पर चल रही वार्ताओं से इस दिशा में आगे बढ़ने के संकेत मिल रहे है किन्तु अभी भी अमेरिका पाकिस्तान व चीन के प्रति कोई निश्चित नीति नहीं अपना पा रहा है, जिससे एशिया में अपने सामरिक हितों को देखते हुए भारत के साथ सैन्य सहयोग व संबंध को अपेक्षित गति नहीं मिल रही हैं।

यद्यपि भारत व अमेरिका ने विभिन्न स्तरों पर पारस्परिक सम्पर्क को बनाए रखने की शुरूआत कर दी है। जिससे एक दूसरे को समझने का अच्छा अवसर मिला है तथा सहयोग के नए क्षेत्रों को चुनने व उनके विकास में मदद मिल रही हैं। भारत अमेरिकी डिफेंस टेक्नोलाजी कोआपरेशन ने तीन मिशन एरिया की पहचान की है, जो इस प्रकार है-वायुयान तकनीक, तीसरी पीढ़ी का एंटी टैंक सिस्टम तथा परीक्षण स्थल का मशीनीकरण व मानव शक्ति का प्रशिक्षण। भारत व अमेरिका ने अब सेनाओं के तीनों अंगों में सहयोग की नीति अपनाई है।

भारत पर परमाणु विस्फोट के बाद लगे प्रतिबंधों के समाप्त होने से इनके बीच फिर सैन्य सहयोग शुरू हुआ है। रक्षा प्रतिबन्धों के तीन साल बाद अमेरिका ने कहा कि उसने भारत के रडार, हल्के लड़ाकू विमानों के उपकरण और अन्य सैनिक साजो समान खरीदने के सात प्रस्तावों को मंजूरी दे दी है तथा भारत व अमेरिका ने रक्षा आपूर्ति संबंधों को बरकरार रखने के लिए 'रक्षा सहयोग समूह' गठित करने पर सहमति जतायी है।[1] इसके साथ ही साथ भारत ने 2001 में जनरल सिक्योरिटी ऑफ मिलेट्री इन्फॉरमेशन एग्रीमेन्ट (GSOMIA) पर हस्ताक्षर कर मतभेद कम किया है।

---

1 Dainik Jagran, 5 December 2001.

इन संबंधों को आगे बढ़ाते हुए बुश प्रशासन ने भारत को 146 मिलियन डालर मूल्य के आठ AN/TPQ-37 फायर फाइंडर वेपन लोकेटिंग रडार सिस्टम बेचने का निर्णय किया है। इसके साथ ही साथ अमेरिका ने 2002 में भारत को 7 मिलियन डालर की सैन्य सहायता को बढाकर 2003 के बजट में 75 मिलियन डालर करने का निश्चय किया है।[1] अब अमेरिका को भारत द्वारा इजराइल से सैन्य उपकरणों की खरीद पर की जा रही आपत्ति में कमी आई है।

अमेरिका ने अब भारत के साथ तकनीक हस्तांतरण व सैन्य उपकरणों के बिक्री की दिशा में सकारात्मक कदम उठाया है परन्तु अमेरिका कुछ क्षेत्रों में भारत को परिसीमित करने की अघोषित नीति चलाता रहा है और नए बुश प्रशासन द्वारा अपनाई जा रही आक्रामक विदेश नीति के अन्तर्गत भी कुछ मुद्दों पर असहयोग के स्वर उभरे हैं। यद्यपि अब भारत की सामरिक स्थिति का आकलन करते हुए अमेरिका इसे अपने हित में उतने आक्रामक ढंग से नहीं उठाएगा जिस प्रकार वह पूर्व में उठाता रहा है।

1974 के परमाणु परीक्षण व 1980 के दशक में मिसाइल विकास कार्यक्रम के कारण भारत इंटरनेशनल कंट्रोल रिज़ीम का एक लक्षित देश रहा है। इसके तहत एन.पी.टी., सी.टी.बी.टी., जैगर कमेटी, लंदन क्लब या न्यूक्लियर सप्लायर्स ग्रुप (NSG), एम.टी.सी.आर. और आस्ट्रेलिया ग्रुप आते है। इनके तहत भारत पर समय-समय पर दबाव डाला जाता रहा है तथा इनका इस्तेमाल भविष्य में भी किया जा सकता है।

वर्तमान समय में नाभिकीय मुद्दे पर थोड़ी शिथिलता है। अमेरिकी सीनेट ने स्वयं सी.टी.बी.टी का अनुमोदन नहीं किया है। वह स्वयं एन.एम.डी. के मुद्दे पर गंभीर है तथा उसे अपनाने के प्रति प्रतिबद्ध है। एन.एम.डी. के कारण राष्ट्रपति बुश ने कहा कि हम अपनी नाभिकीय शक्ति के चरित्र अर्थात् उसके आकार को बदल सकते है और बदलेगे, जिससे यह लगे कि शीत युद्ध का अंत हो चुका है। उनका कहना है कि हम निश्चय ही शस्त्र नियंत्रण को एक तरफ नहीं रख रहे है। हमारा विश्वास है कि अप्रसार नीति एक महत्वपूर्ण सफलता है और उस सफलता को हमे संरक्षित रखना चाहिए तथा उसे शक्ति प्रदान करनी चाहिए।[2] भारत के प्रधानमंत्री

---

1 The Times of India, 27 February 2002.

2 C. Uday Bhaskar, Bush Outlines New US Nuclear Policy, Strategic Analysis, Vol. XXV, No. 3, June 2001.

का कहना है कि हम यह विश्वास करते हैं कि एक विश्वसनीय-न्यूनतम परमाणु प्रतिरोध क्षमता हमारी प्राथमिक सुरक्षा छतरी है, जो हमें अपने लोगों को देकर उन्हे अनुग्रहीत करना है। इसके साथ ही साथ हम इस बात के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ है कि एक सार्वभौम एवं भेद-भाव विहीन नाभिकीय निरस्त्रीकरण होना चाहिए।[1]

भारत ने अमेरिका के राष्ट्रीय मिसाइल विकास कार्यक्रम (NMD) पर सकारात्मक प्रतिक्रिया देते हुए अपने न्यूनतम परमाणु प्रतिरोध क्षमता बनाए रखने की बात की। 1998 के परमाणु परीक्षण के उपरान्त भारत नाभिकीय शस्त्र युक्त राज्य (SNW-State with Nuclear weapons) के रूप में उभरा जो नाभिकीय शस्त्र वाले राज्य (NWS) व गैर नाभिकीय शस्त्र वाले राज्य (NON-NWS) से अलग तीसरी श्रेणी है। भारत व अमेरिका के बीच वार्ताओं के विभिन्न दौरों के बाद अमेरिका भारत की वर्तमान नाभिकीय क्षमता पर सहमत होता दिख रहा है। भारत का अप्रसार के संबंध में भी अच्छा रिकार्ड है, उसने दूसरे किसी देश को नाभिकीय शस्त्र के सम्बन्ध में सहायता नहीं उपलब्ध करायी है। अतः भारत द्वारा नाभिकीय अप्रसार के संबंध मे अमेरिका संतुष्ट हो सकता हैं। भारत की नाभिकीय शक्ति की आवश्यकता मुख्य रूप से चीन के कारण अपरिहार्य है। भारत की इस सामरिक आवश्यकता को समझने की आवश्यकता है।

अतः अमेरिका द्वारा नाभिकीय मुद्दों को राजनीतिक रूप से प्रयोग करने की पूर्व नीति में बदलाव की संभावना है। यह मुद्दा सैन्य सहयोग व तकनीक हस्तांतरण में भी मुख्य बाधा बनता रहा है। नए परिवेश में भारत व अमेरिका के बीच अप्रसार के मुद्दे पर वार्ताओं का दौर अभी चलने की सम्भावना है, परन्तु द्विपक्षीय संबंधों में बाधा के रूप में इसके पूर्व की तरह आने की आशंका कम है।

भारत के 1974 के परमाणु परीक्षण का प्रभाव जैसे यू0एस0 एक्सपोर्ट कंट्रोल पॉलिसी पर पडा। उसी प्रकार भारत के अंतरिक्ष व मिसाइल कार्यक्रम ने अमेरिका के अंतरिक्ष और मिसाइल तकनीक नियंत्रण पर प्रभाव डाला तथा उसे क्रियाशील करने में प्रेरक का काम किया। इन सब का परिणाम एम.टी.सी.आर. के रूप में सामने आया। एम.टी.सी.आर. की उत्पत्ति सात प्रमुख औद्योगिक राज्यों (G-7) की चार वर्षो की गुप्त वार्ता का प्रतिफल थी।[2] इसकी औपचारिक घोषणा 1987 में हुई

---

1 C. Uday Bhaskar, Bush Outlines New US Nuclear Policy, Strategic Analysis, Vol. XXV, No. 3, June 2001. P-337.

2 Uzi Rubin, "How Much Does Missile Proliferation matter?" Orbis, Winter 1991, P.-31

और इसने भारत अमेरिका के सैन्य संबंध व तकनीक हस्तांतरण में बाधा उत्पन्न की।

एम.टी.सी.आर. अमेरिका के प्रक्षेपास्त्र अप्रसार व्यवस्था का मुख्य स्तम्भ है। जो इस शंका पर आधारित है कि तीसरे विश्व के देशों को अंतरिक्ष व मिसाइल तकनीक के मिलने से यह अमेरिका के आर्थिक व सैन्य हितों को नुकसान पहुँचा सकते है। अतः इस प्रकार तकनीक के प्रसार को रोका जाए तथा उस पर नियंत्रण स्थापित किया जाए। एम.टी.सी.आर. नियंत्रण के तहत दो प्रकार की श्रेणी निर्धारित की गई, जिसके अन्तर्गत आने पर अमेरिका व पश्चिमी देश प्रतिबन्ध लगा सकते है। इन श्रेणियों के अन्तर्गत निम्न चीजें है-

तालिका 4.1

एम.टी.सी.आर. कन्ट्रोल्स

Categary - I	Category -II
Complete rocket and unmanned air vahicle systems capable of delivering a Payload of at least 500 kilograms to a minimum range of 300 kilometers Rocket Systems : Ballistic missiles space-launch vehicles sounding rockets Air - Vehicle Systems : Cruise missiles Target drones Reconnaissance drones Complete subsystems for delivery vehicles: Individual Rocket stages Re-entry Vehicles Solid-or liquid-fuel rocket engines Guidance sets Thrust vector controls Warhead safing arming, fusing and firing mechanisms Specially- designed production Facilities and equapment for rocket systems and subsystems.	Propulsion components propellants Propellant production technology and equipment Missile structural composition Production technology and equipment Pyrolytic deposition/ densification technologyand equipment Structural materials Flight instruments and intertial navigation technology Flight control systems Avionics equipment Launch and ground support technology and equipment Missile- related computer Analog-to-Digital converters Test facilities and equipment Reduced observables technology, materials and devices Nuclear effects Protection technology software for missile computers.

Source : Department of State, Missile Technology Control Rgime, Equipment and Technolgy annex of the fact Sheet, 16 April 1987

एम.टी.सी.आर. की उपरोक्त सारणी 1987 में इसकी औपचारिक घोषणा के समय की है। इसमें 1993 में संशोधन किया गया, जो 5 जुलाई 1994 से प्रभावी है। भारत इसके प्रमुख लक्ष्यों में से एक रहा है। एम.टी.सी.आर. के तहत पहला सार्वजनिक कार्य कोन्डोर-II बैलिस्टिक मिसाइल कार्यक्रम को स्थगित करना था। अर्जेन्टीना के इस कार्यक्रम के स्थगन के बाद भारत के मिसाइल कार्यक्रम पर दबाव बढ गया। इसके विपरीत इज़राइल इस दबाव से मुक्त था क्योंकि उसका अमेरिका से महत्वपूर्ण सामरिक गढ़जोड़ था। अतः उसने प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष ढंग से अमेरिका फ्रांस व पश्चिमी देशों से नाभिकीय व मिसाइल तकनीक प्राप्त की थी।[1] अमेरिका ने चीन व पाकिस्तान के सन्दर्भ में भी एम.टी.सी.आर. के तहत कार्यवाही नहीं की, जबकि भारत के असैनिक अंतरिक्ष कार्यक्रम व बैलेस्टिक मिसाइल कार्यक्रम पर इसका असर पड़ा।

एम.टी.सी.आर. के कारण अमेरिका ने भारत को उच्च तकनीक के निर्यात पर प्रतिबंध लगाया तथा दूसरे देशों पर भी इसके लिए दबाव डाला। इससे भारत के विभिन्न सुरक्षा व अंतरिक्ष कार्यक्रमों के पूर्ण होने में देरी हुई परन्तु इसका एक लाभ यह रहा कि भारत ने उन तकनीकों का स्वदेश में ही निर्माण शुरू किया। इस प्रकार क़े प्रतिबन्ध से अमेरिका अपने सामरिक व आर्थिक हितों की पूर्ति करता है। अमेरिका के राष्ट्रीय विज्ञानशाला के मूल्यांकन के अनुसार 1985 में उच्च तकनीक के निर्यात पर नियन्त्रण से अमेरिकी अर्थव्यवस्था को 9 बिलियन डालर का नुकसान हुआ, जो उस साल के सुरक्षा खर्च का मात्र 3% था। यह उस खर्च से कम है जो इस प्रकार के तकनीकों के फैलाव के बाद अमेरिका के दूरगामी हितों के संरक्षण में व्यय होता। इसके साथ ही साथ भारत व अन्य देशों में अंतरिक्ष कार्यक्रमों, विशेषकर राकेटों के विकास की सफलता से वैश्विक उपग्रह प्रक्षेपण बाजार पर से अमेरिका व पश्चिमी देशों का प्रभुत्व समाप्त होने लगेगा। अतः अमेरिका का यह

1 Joel Brinkley, U.S. Stood by As Israel Enlarged Nuclear Arsenal, Book Says, International Herald Tribune, 21 October 1991.

आर्थिक हित, भारत सहित अन्य विकासशील देशों में इस प्रकार की तकनीक के फैलाव को रोकता है।

भारत ने अपने सुरक्षा वातावरण को देखते हुए ही मिसाइल विकास कार्यक्रम बनाया। चीन द्वारा मिसाइलों के सतत् विकास व तिब्बत में भारत को ध्यान में रखकर की गई उनकी तैनाती व इसके रेंज में सम्पूर्ण भारत का आना उसकी सुरक्षा के लिए खतरा है। अतः भारत द्वारा अपने अंतरिक्ष व मिसाइल कार्यक्रमों का विकास उसकी आवश्यकता है। एम.टी.सी.आर. पर कोई अन्तर्राष्ट्रीय वैधानिक बाध्यता नहीं है, इसके पीछे कोई अन्तर्राष्ट्रीय संधि या संयुक्त राष्ट्र संघ का कोई प्रस्ताव भी नहीं है। अतः चीन के सन्दर्भ में अमेरिका व भारत के सामरिक हित में जुड़ाव के कारण इस पर अमेरिका के जोर न देने की आशा की जाती है परन्तु चीन द्वारा भारत को परिसीमित करने के लिए पाकिस्तान को तकनीक निर्यात व दक्षिण एशिया में शस्त्र दौड़ को बढावा देकर नाभिकीय व मिसाइल अप्रसार के लिए अमेरिका पर दबाव बनाए रखा जा सकता है कि वह भारत मिसाइल व नाभिकीय कार्यक्रम को आगे न बढाने का दबाव बढ़ाये। इसके साथ ही साथ भारत द्वारा अंतरिक्ष क्षेत्र में आत्मनिर्भर होने व अपनी इस क्षमता का व्यावसायिक प्रयोग करने पर अमेरिका अपने आर्थिक हितों को नुकसान होने की आशंका में एम.टी.सी. आर. पर जोर देता रहेगा।

इस प्रकार शीत युद्ध के अंत के बाद भारत व अमेरिका के बीच सैन्य सहयोग की एक नई दिशा बनी है। इसके साथ ही साथ मतभेद के भी बिन्दु है परन्तु यह तभी तक है जब तक भारत अमेरिका के हितों के सांचे में नहीं बैठता है।

(II) पारस्परिक सामरिक परिस्थितियां व आवश्यकताएँ :

अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर किसी देश की प्राथमिकताओं के बदलने पर उसके सामरिक हितो में भी बदलाव आता है। जिससे उसके सहयोगियों व दूसरे देशों के साथ संबंध में भी बदलाव अपेक्षित रहता है। इसका प्रभाव हम भारत व अमेरिका के

संबंधों में भी देख सकते है। शीत युद्ध के उपरान्त नई विश्व व्यवस्था में अमेरिका का प्रभुत्व स्थापित हुआ जिससे पूरे विश्व की सामरिक स्थिति पर इसका प्रभाव पडा तथा कुछ क्षेत्रों विशेषकर एशिया में सामरिक स्थिति में परिवर्तन का प्रभाव भारत-अमेरिका के सैन्य सहयोग के साथ-साथ अन्य पहलुओं पर भी पडा।

भारत-अमेरिका के संबंध अन्तर्राष्ट्रीय संबंध में महत्वपूर्ण कुछ प्रश्नों से भी संचालित होते रहे। इन प्रश्नों का उत्तर शीत युद्ध के काल व उसके उपरान्त बदला है। यह प्रश्न कुछ इस प्रकार से है। कैसे अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था संगठित हो? कौन वैश्विक सुरक्षा के बारे में निर्णय ले सकता है? सैन्य शक्ति की क्या उचित भूमिका है? कौन अन्तर्राष्ट्रीय कानून को निर्धारित करेगा? और संयुक्त राष्ट्र की क्या भूमिका होनी चाहिए?

उपरोक्त मुद्दे शीत युद्ध के काल में शक्ति के दो केन्द्रों के सन्दर्भ में देखे व समझे जाते रहे। शीत युद्ध के उपरान्त शक्ति समीकरण में बदलाव आया तथा विश्व एकध्रुवीय हुआ परन्तु इसके साथ ही साथ दूसरी शक्तियों के उभार ने भविष्य में अमेरिका की प्रभुता के लिए चुनौती देने की संभावना पैदा कर दी है। अतः एक फिर उन मुद्दों के जवाब में परिवर्तन संभावित है। इसका प्रभाव भारत-अमेरिका के सामरिक हितों पर पडना है।

शीत युद्ध काल के समय अमेरिका व भारत के सामरिक हितों का सामंजस्य न हो सका। सोवियत संघ के विघटन तक अमेरिका व यूरोप आर्थिक, राजनीतिक, सैन्य और सांस्कृतिक रूप से एक दूसरे से बँधे थे। पाकिस्तान और चीन अमेरिका के करीबी भू-राजनीतिक सहयोगी थे तो दूसरी तरफ भारत का अमेरिका व यूरोप से करीबी आर्थिक व शैक्षणिक संबंध था, उसके राजनीतिक गठजोड़ व सैन्य सहयोग सोवियत संघ के साथ ज्यादा प्रभावी थे। शीत युद्ध के बाद इसमें परिवर्तन आया।

भारत के सामरिक हित अपने पड़ोसियों, मुख्य रूप से चीन व पाकिस्तान,

मध्य एशिया, हिन्द महासागर, नशीले पदार्थो की तस्करी, आतंकवाद व क्षेत्रीय मुद्दों आदि से जुडे है। अमेरिका भी ज्यादातर मुद्दों से अपने सामरिक हितों को जुडा पाता है। अतः भारत व अमेरिका के बीच सहयोग की आशा बनती है। अमेरिका के पूर्व राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार ब्रेजेंस्की (Brzezinski) ने कहा कि भारत अमेरिका की सार्वभौम नीति में पॉच मुख्य भू-सामरिक मोहरों में से एक है। उनके अनुसार भारत दक्षिण एशिया का सबसे शक्तिशाली राष्ट्र है तथा उसकी भू-सामरिक स्थिति की भूमिका न केवल उसके पड़ोसियों बल्कि हिन्द महासागर के सन्दर्भ में भी है। इसी प्रकार अमेरिकी विदेश मंत्री का भी मत है कि भारत में यह क्षमता है कि वह विशाल हिन्द महासागर व उसकी परिधि के क्षेत्रों में सुरक्षा वातावरण बनाए रखने में मदद कर सकें।

अतः भारत व अमेरिका के सामरिक सहयोग की दिशा का विश्लेषण करने के लिए दोनो देशों के लिए समान खतरों व क्षेत्रों पर दृष्टिपात करने के साथ-साथ भारत व अमेरिका की वर्तमान नीति पर प्रकाश डालना आवश्यक है। इस सन्दर्भ में दोनों देशों के लिए महत्वपूर्ण चीनी कारक (China Factor) पर सर्वप्रथम विचार करना आवश्यक है।

चीन की समग्र राष्ट्रीय शक्ति में विकास, जिसमें सैन्य क्षमता भी शामिल है, का एशिया और विश्व पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ेगा। चीन जनसंख्या के मामले में न केवल विश्व का सबसे बड़ा राष्ट्र है अपितु भारत को छोडकर सभी अन्य राष्ट्रों से कई गुना बड़ा है। इसकी अर्थव्यवस्था विश्व में सबसे तेजी से बढ़ने वाली अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। चीन की शक्ति में सैन्य तत्व का महत्वपूर्ण स्थान है, अतः भारत के साथ-साथ अमेरिका भी इससे चिन्तित हो गया है।

शीत युद्ध के अंत के बाद 1990 के दशक की शुरूआत में अमेरिकी अर्थ व्यवस्था पर संकट आया व अमेरिकी सैन्य बल में गिरावट आई, तभी 1978 के बाद पहली बार चीन ने अपने सैन्य खर्च में महत्वपूर्ण बढ़ोत्तरी की। इससे अमेरिका की सेना की वैश्विक उपस्थिति की क्षमता, (विशेषकर पूर्वी एशिया में) पर बहस छिड़

गयी। चीन अपनी क्षमता के अनुपात में आदर चाहता है। अगले कुछ दशकों में चीन के महाशक्ति बनने व अमेरिकी विदेश नीति के मुख्य चुनौतीकर्ता होने की संभावना ने अमेरिका को चीन के प्रति सजग कर दिया है। अधिकतर सैन्य विश्लेषकों का आकलन है कि सैन्य व औद्योगिक शक्तिगृह के रूप में चीन के उभार का एशिया प्रशान्त क्षेत्र के अन्य देशों पर बहुदिशात्मक प्रभाव पडेगा। इसके साथ ही साथ दक्षिण एशिया, अमेरिका व अन्य पश्चिमी राष्ट्र भी इससे अछूते नहीं रहेगें।[1]

.1997 में अमेरिका के रक्षा विश्वविद्यालय (Defence Univesity) द्वारा प्रकाशित एक सामरिक आकलन में कहा गया कि एक दशक के अंदर चीन एक शक्ति हो सकता है जो पूर्वी एशिया के क्षेत्र में अमेरिका के समतुल्य हो। यदि चीन की राष्ट्रीय शक्ति का इसी तरह दशकों तक विकास होता गया तो वह आज की अपेक्षा ज्यादा दृढ़ता से इस क्षेत्र में समानान्तर भूमिका वहन करेगा। एक अधिक क्षमता युक्त व दृढ़ प्रतिज्ञ चीन अपनी संप्रभुता व राष्ट्रीय एकीकरण के प्रश्न जैसे ताइवान या दक्षिणी चीन सागर, के प्रति ज्याद हठी रवैया अपनाएगा। इन परिस्थितियों में चीन या ताइपे तथा अमेरिका का गलत आंकलन संघर्ष को जन्म देगा। .

चीन ने अपनी कुल क्षमता से अधिक अंतर्राष्ट्रीय भूमिका का वहन शुरू कर दिया है। चीन की एशिया से एकमात्र सुरक्षा परिषद की स्थायी सदस्यता, नाभिकीय राष्ट्र (P-5) का दर्जा, तेजी से बढ़ती अर्थ व्यवस्था उसके विशाल बाजार का आकर्षण, और उसका आकार व महत्वपूर्ण भूराजनीतिक स्थिति ने, चीन को सामरिक महत्व व अन्य महत्वपूर्ण शक्तियों पर प्रभाव की स्थिति प्रदान की है। इसका प्रभाव हम भारत के सन्दर्भ में शीत काल में व उसके उपरांत अमेरिका के क्लिंटन प्रशासन के समय देख सकते है, जब अमेरिका ने चीन की गतिविधियों पर कोई आपत्ति नहीं की।

---

1 David Shambaugh, Containment or Engagement of China? Calculating Beijing's Responses, International Security, Vol 21, No. 2 1996, P-180-209.

चीन की बढ़ती सैन्य क्षमता, मुख्यतः नाभिकीय व मिसाइल एकत्रीकरण, एशिया में उसके पड़ोसियों के लिए प्रत्यक्ष सैन्य खतरा है। ऐसे देशों में मुख्यतः वे है जिनके साथ चीन का संप्रभुता का विवाद है, जातिगत असुरक्षा व तनाव भू-राजनीतिक विवाद और जिनसे चीन राजनीतिक खतरा महसूस करता है।[1] इस सन्दर्भ में यह महत्वपूर्ण है अन्तर्राष्ट्रीय सामरिक अध्ययन समुदाय पूर्वी एशिया पर ही ध्यान केन्द्रित करता है और एशिया विशेषकर दक्षिण एशिया के व्यापक दायरे में चीन के खतरे को उतना महत्व नहीं देता है।

पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना (PRC) के गठन (1949) से ही चीन ने सैन्य शक्ति को चीन के सामरिक अनिर्भरता के लिए गांरटी माना। माओ के समय से ही चीनी नेतृत्व ने यह बार-बार कहा है कि वह चीन को एक महाशक्ति के रूप में नहीं चाहते परन्तु चीन को प्रथम पंक्ति की शक्ति में जल्दी से जल्दी शामिल हो जाना चाहिए।[2]

शीत युद्ध के उपरांत चीन ने अपनी नीति को इस प्रकार निर्धारित करने का प्रयास किया है कि उसकी सैन्य शक्ति व क्षमता इस प्रकार रहे कि वह ताइवान, दक्षिणी चीनी समुद्र के द्वीप पर अपने भूमि अधिकार के दावे के लिए शक्ति का प्रयोग कर सके तथा इस दायरे में भारत, वियतनाम व जापान भी जरूरत पड़ने पर आ सके। इसके साथ-साथ चीन के पास अमेरिका व अन्य शक्तियों के विरूद्ध सक्षम प्रतिरोधक क्षमता हो तथा चीन एशिया और प्रशान्त क्षेत्र में नई सुरक्षा संरचना का अभिन्न अंग रहे और उसके हितों को नजरअंदाज न किया जा सके।

चीन की बढ़ती शक्ति को देखते हुए उसके भविष्य के बारे में निम्न आकलन किया जा सकता है।

- बहुत से आंतरिक व वाह्य चुनौतियों के बावजूद चीन अपनी राष्ट्रीय शक्ति बढ़ाता रहेगा।

---

1 David Shambaugh, The insecurity of Security : the PLA's Evoluing Doctrine and threat Perceptions Towards 2000, Journal of Northe east Asisan studies, Spring, 1994, P-3-25.

2 Jonathan D. Pollack, China's Potential as a world Power, International Journal Vol. xxxv, No. 3 Summer, 1980.

- चीन धीरे-धीरे राजनीतिक सुधार कर बहुल व लोकतान्त्रिक व्यवस्था में प्रवेश करेगा जैसा कोरिया व ताइवान में है।

- राज्य व्यवस्था चरमरा जाएगी जिससे एक गृहयुद्ध शुरू हो जाएगा।

उपरोक्त तीन स्थिति में से कोई भी संभव हो सकती है परन्तु पहली स्थिति पर ही गंभीरता से विचार कर इस क्षेत्र की सामरिक स्थिति का आकलन करना चाहिए।

चीन के शक्ति विकास के सन्दर्भ में उसकी 1985 में बदली गई मिलिट्री डाक्ट्रिन महत्वपूर्ण है। चीन ने अपनी नीति में परिवर्तन करते हुए यह घोषणा की कि अब विश्व युद्ध या नाभिकीय युद्ध की संभावना कम है तथा चीनी सेना को 'सीमित युद्ध' व 'क्षेत्रीय सीमा विवाद' में संघर्ष के लिए तैयार हो जाना चाहिए। चीन की नीति में यह परिवर्तन भारत, वियतनाम, ताइवान व अन्य पड़ोसियों के लिए खतरनाक है।

भारत के सन्दर्भ में चीन की नीति हमेशा से उसे परिसीमित करने की रही है। इसके लिए उसने पाकिस्तान को मुख्य रूप से अपना मोहरा बनाया। इसके अलावा भी यदि हम चीन की गतिविधियों पर दृष्टिपात करें तो पाएगे कि चीन ने म्यांमार, पाकिस्तान और संभवतः ईरान में बंदरगाह की सुविधा प्राप्त की है और इनके साथ चीन की नौसेना का सहयोग है। यह उस प्रयास का परिणाम है जिसके तहत चीन हिन्द महासागर में अपनी नौसेना की उपस्थिति चाहता था क्योंकि हिन्द महासागर शीत युद्ध काल में भी दोनों महाशक्तियों के लिए महत्वपूर्ण रहा और यह चीन की ईधन के लिए खाड़ी खेत्र पर निर्भरता, बढती सामुद्रिक गतिविधि, और इस क्षेत्र के राजनीतिक-सैन्य गठबंधन, के लिए महत्वपूर्ण है।

चीन ने म्यांमार में अपनी सैन्य भूमिका को बढ़ा दिया है। फोको द्वीप पर चीनी सैन्य गतिविधियॉ व संसाधन तथा हियांगाई (Hiangyi) में नौसेना सुविधाओं के आधुनिकीकरण व नए रडार उपकरणों की स्थापना और आक्याब (Akyab) तथा

मरगुई (Mergui) में नौसेना के लिए आधारभूत ढ़ांचे का विकास, भारत की सुरक्षा के लिए खतरनाक है। चीन की यह गतिविधि इस क्षेत्र में अपने सामरिक लक्ष्यों को प्राप्त करने, भारत की नौसेना के संचार व बंगाल की खाडी में मिसाइल परीक्षण पर नजर रखने के उद्देश्य से है।

1988 के बाद से म्यांमार से चीन का यह गठजोड़ सामरिक दृष्टिकोण से उतना ही खतरनाक है जितना कि चीन का पाकिस्तान के साथ संबंध। चीन ने पाकिस्तान को नाभिकीय व मिसाइल क्षमता से युक्त कर दिया है और उसने पाकिस्तान व उत्तरी कोरिया के बीच नाभिकीय व मिसाइल तकनीक के हस्तांतरण में भी सहयोग किया। इस प्रकार चीन ने भारत के दोनो छोर पर अपने दो प्रमुख सहयोगी बना रखे है। चीन, पाकिस्तान व म्यांमार भारत की जमीनी सीमा के बहुत बड़े भाग में भागीदारी करते हैं। उपरोक्त गतिविधि के साथ ही साथ चीन ने नेपाल को भी अपने प्रभाव में लेने तथा वहाँ भारत विरोधी भावना को भड़काने का प्रयास शुरू कर दिया है। नेपाल में वर्तमान में चल रहे माओवादी आन्दोलन में चीन का अप्रत्यक्ष सहयोग है। यह भारत की सुरक्षा के सन्दर्भ में एक और खतरनाक घटनाक्रम है।

चीन का नाभिकीय शस्त्र व मिसाइल कार्यक्रम भारत की सुरक्षा के लिए तात्कालिक व दूरगामी दोनों दृष्टि से सबसे खतरनाक है। चीन द्वारा दक्षिण, मध्य व पश्चिम एशिया तथा हिन्द महासागर में अपनी गतिविधि बढ़ाने की संभावना है। यदि हम पूर्वी एशिया में चीन के गठबंधन पर ध्यान दे तो वह मुख्य रूप से आर्थिक है परन्तु दक्षिण एशिया में यह प्राथमिक रूप से राजनीतिक एवं सैन्य तत्वों को समाहित किए हुए है।

पूर्वी एशिया में एशियान के द्वारा भारत के प्रवेश को चीन शंका की दृष्टि से देखता है तथा वह भारत की सदस्यता का विरोध कर रहा है क्योंकि इस आर्थिक मंच पर भारत की उपस्थिति इस क्षेत्र में भारत का वर्चस्व बढ़ाएगी, जो चीन को अपने सामरिक हितों के विरूद्ध लगती है। चीन भारत को परिसीमित करने में लगा

हुआ है। चीन के साथ विवाद के प्रमुख मुद्दों का हल न निकलने से भी भारत की सुरक्षा खतरे में रहती है। यह विवाद इस प्रकार है।

- चीन द्वारा 1975 में सिक्किम का भारत विलय स्वीकार न करना।
- चीन के साथ भारत का सीमा विवाद, चीन द्वारा पाकिस्तान में किया जा रहा नाभिकीय व मिसाइल प्रसार
- चीन द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद में भारत की स्थायी सदस्यता की मुहिम का विरोध किया जाना।

भारत के साथ चीन के उपरोक्त विवादों के बने रहने के परिप्रेक्ष्य में चीन की सैन्य शक्ति चिंता का कारण है। भारत के साथ ही साथ अमेरिका का भी सामरिक समीकरण चीन द्वारा किए जा रहे सैन्य आधुनिकीकरण से बिगड़ रहा है। चीन को नई व आधुनिक सैन्य तकनीक को प्राप्त करने में रूस से सहयोग मिल रहा है।[1] इसके साथ ही साथ चीन के रक्षा उद्योग के आधुनिकीकरण में बड़ी संख्या में रूसी वैज्ञानिक काम कर रहे हैं।[2] चीन की परम्परागत सैन्य शक्ति विशाल तो है परन्तु आधुनिक नहीं है अतः चीनी सेना आधुनिक बल बनने के सन्दर्भ में दृढ़ प्रतिज्ञ है।[3]

आधिकारिक रूप से 1989 से चीन के रक्षा बजट में वृद्धि की औसत दर 15% बताई गयी, जो एशिया में सबसे तेज वृद्धि में से एक है।[4] अन्तर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों के आकलन के अनुसार चीनी रक्षा बजट आधिकारिक बजट से तीन से चार गुना बड़ा है और यह 10-20% वार्षिक दर से बढ़ रहा है। चीन व अन्य देशों के रक्षा व्यय की तुलनात्मक सारणी से यह स्थिति साफ दिखती है-

1 David Shambaugh, China's Military : Real or Paper Tiger? Wahington Quarterly, Vol. 19 No. 1, Spring 1996 P-19-36.

2 SIPRI Year book, 1996.

3 Yitzhak Shichar, China's Defense in a changing world, in Kevin cleements (ed) peace and security in the Asia Pacific Region : Post cold war Problems and prospects, Tokyo, 1991 P-183-203.

4 SIPRI Year book 1994-95.

तालिका 4.2

सैन्य खर्च

(बिलियन डालर में)

वर्ष	देश																
	चीन (वास्तविक)	चीन (बजटीय)	ताईवान	भारत	पाकिस्तान	न्यूजीलैण्ड	फिलीपीन्स	वियतनाम	इन्डोनेशिया	उत्तरी कोरिया	म्यांमार	थाईलैण्ड	मलेशिया	सिगापुर	आस्ट्रेलिया	दक्षिण कोरिया	जापान
2001	40.4	17	8.2	15.6	2.6	0.68	1.4	1.8	1.3	-	1.7	1.8	1.9	4.3	6.6	11.8	-
2000	45.6	14.5	12.8	14.7	3.4	0.8	1.5	0.95	1.5	2.2	2.1	2.5	2.8	4.8	7.1	12.8	45.6
1999	40.8	12.6	15	14.2	3.5	0.82	1.6	0.89	1 5	2.1	2	2.6	2.2	4 7	7.8	12.0	40.8
1998	37.5	11	14.2	14.1	4	0.88	1.5	0.93	0.95	2	2.1	2.1	1.9	4.8	8.1	10.2	37.7

Source : Various editions of the IISS Military Balance 2001 and 2002 data are generally budget rather than actual Expenditures.

तालिका 4.3

सैन्य खर्च

(बिलियन डालर में)

वर्ष	विश्व	अमेरिका	यूरोप (कुल)	यूरोप (नाटो)	नाटो (कुल)	यूरोप (गैर नाटो)	एफ०एस०यू० रूस	मध्य/दक्षिण एशिया	पूर्वी एशिया	चीन	कैरिबियन/ लैटिन अमेरिका	मीना (MENA)	उप सहारीय अफ्रीका
2000	811.45	294.7	184.57	162.5	464.65	19.062	58.81	22.064	141.64	41.167	37.104	57 931	10.184
1999	812.04	292.15	193.28	173.29	473.83	19.984	56.8	21.038	135.23	39.889	35 304	60.023	9.83

Source : Based Primarily on material in the IISS Military Balance 2001-2002, Plus data drawn from USPACOM Sources and US experts.

उपरोक्त आंकडे भारत व अमेरिका के लिए चिन्ता का कारण हैं। जुलाई 2002 में अमेरिकी रक्षा विभाग (DOD) की रिपोर्ट में चीनी सैन्य क्षमता का आकलन किया गया। इस रिपोर्ट में कहा गया कि चीन का वास्तविक सैन्य खर्च 65 बिलियन डालर है, जो कि आधिकारिक 20 बिलियन डालर के ऑकडे से बहुत ज्यादा हैं। इसमें यह भी कहा गया है कि चीनी सेना (PLA) ने अपनी नीति में बदलाव किया है, अब वह सूचना के महत्व व इलेक्ट्रानिक युद्ध पर जोर दे रही है। इसके अलावा यह भी कहा गया कि चीनी बैलिस्टिक मिसाइल ताइवान के विरूद्ध सबसे खतरनाक व सक्षम प्रतिरोधक है।[1] इससे चीन की आक्रामक नीति सामने आती है।

यदि हम अमेरिका व चीन के संबंधो का विश्लेषण करें तो पाएंगे कि इनके द्विपक्षीय संबंध कभी विरोध तो कभी मेल -मिलाप वाले रहें। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमेरिका ने चीन का विरोध किया तथा उसे मान्यता देने से इंकार किया परन्तु चीन व सोवियत संघ के संबंध में दरार आने के उपरान्त अमेरिका व चीन सहयोगी बन गए। शीत युद्ध के उपरान्त एक बार फिर चीन की शक्ति बढ़ने के संबंध में अमेरिका में चिन्ता उभरी। चीन द्वारा तियानमेन चौक में किए गए नरसंहार के बाद मानव अधिकार का प्रश्न प्रमुख रूप से उभरा, परन्तु खाड़ी युद्ध के समय सुरक्षा परिषद में चीन द्वारा अमेरिका का विरोध न करने का फल उसे मिला और अमेरिका ने इस प्रश्न को ज्यादा नहीं उछाला।

राष्ट्रपति क्लिंटन ने अपनी विदेश नीति के तीन आधार स्तम्भ अर्थ व्यवस्था, सुरक्षा व लोकतंत्र को बताया तथा 1993 में चीन के मानव अधिकार रिकार्ड को नजरअंदाज कर उसे व्यापार में एम०एफ०एन० राज्य का दर्जा दिया। अमेरिका की चीन नीति में उस समय आर्थिक पक्ष के प्रमुख रहने पर उसने चीन की नाभिकीय व मिसाइल प्रसार को भी अनदेखा कर दिया। चीन का विशाल बाजार व अर्थ व्यवस्था अमेरिका को आकर्षित करती है। मोरगेन स्टेनले के अनुसार चीन का विकास 2005 तक 7.1% वार्षिक की दर से तथा इसके बाद 2006-2015 तक 9% की दर से होगा। तब उसकी अर्थव्यवस्था वर्तमान अमेरिकी अर्थव्यवस्था के बराबर

---

1 Asia Times Online, 28 September 2002

हो जाएगी तथा चीन 350 बिलियन डालर का प्रत्यक्ष विदेशी निवेश आकर्षित करने में सफल रहेगा।[1] अब अमेरिका ने चीन की अर्थव्यवस्था के आकार को कम करने को कहा है। चीन के सन्दर्भ में आर्थिक पक्ष को देखते हुए ही राष्ट्रपति बुश ने आक्रमक नीति को अपनाते हुए भी उसके विश्व व्यापार संगठन में प्रवेश तथा 2008 के ओलम्पिक की मेजबानी का विरोध नहीं किया।

यदि शीत युद्ध के बाद अमेरिका की चीन नीति का विश्लेषण किया जाए तो हम पाएगे कि क्लिंटन प्रशासन के बाद आए बुश प्रशासन में चीन नीति अपने संक्रमण काल में है और उसमें परिवर्तन परिलक्षित हो रहे है। कुछ महत्वपूर्ण बदलाव इस प्रकार है-

- चीन के महत्व को कम किया जा रहा है अब चीन का अमेरिका के सामरिक हितों में महत्वपूर्ण भूमिका के लिए विचार नहीं किया जा रहा है।
- अब चीन को सामरिक प्रतिद्वन्दी के रूप में देखा जा रहा है।
- बुश प्रशासन क्लिंटन प्रशासन की ताइवान के संबंध में सामरिक अस्पष्टता से बाहर आ गया है।
- बुश प्रशासन ने चीन के विरूद्ध कड़ी नीति की बात की है। बुश प्रशासन जहॉ जरूरत हो वहाँ सहयोग तथा आवश्यकता पड़ने पर कड़ाई करेगा।[2]
- जापान इस पूर्वी एशिया क्षेत्र में फिर से प्राथमिक सहयोगी हो गया है तथा चीन के साथ 'सामरिक साझेदार' की क्लिंटन की नीति छोड़ दी गई है।

उपरोक्त नीति का उदाहरण हम अमेरिका द्वारा चीन की विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता का विरोध न करने परन्तु चीन के हैनान प्रांत में अमेरिकी व चीनी विमान की टक्कर से हुए विवाद तथा इसके बाद अमेरिका द्वारा ताइवान को अप्रैल 2001 में एक दशक से अधिक समय बाद की सबसे बड़ी शस्त्र बिक्री में पाते हैं।

---

1 Business line, 18 May 2001.
2 South China Morning post, 24 July 2002.

चीन यह जानता है कि उसके अमेरिका के साथ संबंध नाजुक है और ताइवान तथा मानव अधिकार के प्रश्न इतनी आसानी से ओझल होने वाले नहीं हैं। जबकि अमेरिका की नीति उसके परिसीमन के साथ सहयोग (Engagement with containment) की है। चीन यह समझता है कि अमेरिका का अंतिम लक्ष्य चीन का पश्चिमीकरण, उसे कमजोर कर फिर तोड़ने का है। चीन को भय है कि ताइवान से संघर्ष में अमेरिका जापान के सैन्य आधार का प्रयोग करेगा। अमेरिका से उत्तरी कोरिया का तनाव, नाटो का पूर्व की ओर फैलाव, अमेरिका द्वारा अपने मिसाइल सुरक्षा कवच में जापान व ताइवान को शामिल करना तथा मध्य एशिया में अमेरिका की उपस्थिति ने चीन को सशंकित कर रखा है। अतः चीन ने अमेरिका के प्रति दूरगामी सामरिक नीति बना रखी है जो कि 'शान्त रहने, प्रमुखता में न आने तथा अपनी क्षमताओं और समय को छुपाना' (Keep calm, lie low, hide your capacities and hide your time) है। चीन तुरंत अमेरिका को चुनौती देने की स्थिति में नहीं है अतः वह अपनी व्यापक राष्ट्रीय शक्ति को दृढ़ता देने में लगा है।

अमेरिका पर हुए आतंकवादी हमले के बाद उसके द्वारा शुरू किए गए आतंकवाद विरोधी मुहिम में अमेरिका द्वारा मध्य एशिया से दक्षिण पूर्व एशिया तक अपनी सामरिक भूमिका को मजबूत किया जा रहा है। तेजी से बदल रही सामरिक स्थिति ने एशिया पर चीन के प्रभुत्व स्थापित करने की रणनीति को प्रभावित किया है। पाकिस्तान में अमेरिकी सैन्य उपस्थिति व उसको राष्ट्रपति मुर्शरफ के समर्थन ने, चीन द्वारा पाकिस्तान में निर्मित किए जा रहे नौ सैनिक बेस निर्माण को जटिल किया है।

पाकिस्तान के ग्वादर (Gwadar) में नौसैनिक बेस व म्यांमार के नौसैनिक उपकरण व रडार सुविधा उस चीनी नीति का हिस्सा है जिसके तहत वह अरब सागर से विवादित स्प्रेटले द्वीप तक हिन्द महासागर व प्रशांत महासागर तक परिवहन को नियंत्रित कर सके।[1] अमेरिका ने चीन की इस नीति को समझते हुए अपनी नीति बनाई है। इस सन्दर्भ में चीन में अमेरिका के पूर्व राजदूत जेम्स लिली

---

1 The washington Times, 2 February 2002.

का कहना है कि अमेरिका चीन के चारों तरफ एक घेरा बना रहा है। इस सन्दर्भ में वह भारत के साथ निकटता, वियतनाम को पुनः पहचान देना, ताइवान को एफ-16 विमान व अन्य शस्त्रों की आपूर्ति, जापान के साथ पुनः संबंध बढाना, फिलीपींस में पुनः अपनी स्पेशल फोर्स को भेजना तथा 21वी सदी में अपने सहयोगी सिओल (दक्षिण कोरिया) के प्रभुत्व में संयुक्त कोरिया की स्थापना जैसी नीति अपना रहा है। अब मध्य एशिया में भी अमेरिकी उपस्थिति से यह घेरा पूर्ण होता है।

चीन की भागीदारी में बना शंघाई सहयोग संगठन (SOS) मध्य एशिया में अमेरिकी प्रभाव को कम करने के लिए धीरे-धीरे आर्थिक, सैन्य व कूटनीतिज्ञ संबंधों को मजबूत करने में प्रयासरत है। पश्चिमी व अमेरिकी कूटनीतिक इस संगठन को इसी नजरिये से देखते है। चीनी राष्ट्रपति जिआंग जेमिन ने कहा भी है कि चीनी नीति मध्य एशिया व मध्य पूर्व क्षेत्र में बल प्रयोग की नीति तथा अमेरिकी सैन्य उपस्थिति के विरूद्ध है।[1]

इस प्रकार चीन भारत और अमेरिका दोनो के लिए सामरिक चुनौतीकर्ता है। ब्रुकिंग इंस्टीट्यूट वाशिंगइटन में ब्राउनबैक ने कहा भी कि भारत चीन को एक नाभिकीय राष्ट्र के रूप में एक खतरा मानता है। जिससे वह युद्ध लड़ चुका है तथा जिसने भारत की सम्पूर्ण सीमा पर प्रभाव फैला रखा है। अमेरिका को भी चीन से परेशानी है और भारत से करीबी संबंध दक्षिण एशिया में एक सामरिक संतुलन बनाएगा तथा इस क्षेत्र में स्थिरता स्थापित करेगा।[2]

भारत व अमेरिका के बीच साझा सामरिक व आर्थिक हितों का क्षेत्र मध्य एशिया भी है। मध्य एशिया एक नया भू-राजनीतिक क्षेत्र है, जिसकी आने वाले समय में महत्वपूर्ण सामरिक भूमिका होगी। यह यूरेशियन महाद्वीप के मध्य में स्थिति है और एक महत्वपूर्ण ट्रान्जिट मार्ग है। यह क्षेत्र खनिज पदार्थो विशेष रूप से हाइड्रोकार्बन के मामले में समृद्ध है। यहाँ के बाजार में प्रवेश की अच्छी सम्भावनाएं है। इन सब कारणों से यह क्षेत्र बहुत से देशों के लिए आकर्षण का केन्द्र है। इन

---

1 **CNN. Com - 22 April 2002.**
2 **The Hindu - 15 February 2001.**

मध्य एशियाई देशो का पडोसी होने के कारण भारत का भी भू-सामरिक व आर्थिक हित इस क्षेत्र से है। यहॉ की शान्ति व स्थिरता भारत की सुरक्षा के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

कश्मीर के दृष्टिकोण से यह क्षेत्र भारत के लिए अति महत्वपूर्ण है। यहाँ की राजनीतिक गतिविधियों से भारत अपने को अलग नहीं कर सकता। इस क्षेत्र में इस्लामिक अतिवादी संगठनों के फैलाव का प्रभाव कश्मीर पर पडेगा। अतः भारत के लिए इस क्षेत्र की अनदेखी उचित नहीं हो सकती। भारत ने इस तरफ कदम बढ़ाते हुए ताजिकिस्तान में एक सैन्य आधार बनाया है। भारत ने अफगानिस्तान में तालिबान के विरूद्ध नार्दन एलाएंस की मदद की बात भी स्वीकार की हैं।[1] इसके साथ ही साथ भारत ने अन्य मध्य एशियाई देशों के साथ कूटनीतिक व व्यापारिक सम्पर्क बढ़ाया है। जो उसके भविष्य की ऊर्जा जरूरतों व सामरिक हितों को ध्यान में रख कर किया जा रहा है।

आज मध्य एशिया अमेरिका, यूरोप, चीन और इरान के लिए महत्वपूर्ण है। अमेरिका यहॉ पर रूस के प्रभाव और ईरान के लाभ को कम करना चाहता है। चीन ने अपनी भविष्य की ऊर्जा जरूरतों के लिए यहाँ के तेल क्षेत्रों के विकास के लिए अरबों डालर का निवेश किया है। यूरोप भी इस क्षेत्र में नाटों का विस्तार कर अपना प्रभाव बढ़ाना चाहता है। यह सब इस क्षेत्र में शक्ति राजनीति के आने का संकेत है। भारत के लिए यह महत्वपूर्ण है कि इस क्षेत्र में बाहरी प्रभाव का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस क्षेत्र के देशों पर गंभीर प्रभाव पड़ेगा।[2] जिससे भारत की भी सुरक्षा व सामरिक स्थिति प्रभावित होगी।

मध्य एशिया का क्षेत्र धार्मिक कट्टरवाद, जातिगत् अशान्ति, नशीले पदार्थो व शस्त्रों की तस्करी, व्यापक नरसंहार के हथियारों के लिए विखण्डनीय पदार्थो की तस्करी के प्रति संवेदनशील है, जो भारत के साथ-साथ अमेरिका की भी चिंता का कारण है। अतः अमेरिका ने इस क्षेत्र में अपना प्रभाव बढ़ाया है तथा अफगानिस्तान पर अमेरिकी हमले से इसमें और तेजी आई है।

---

1 Frontline, 27 Sept 2002, P- 60.

2 P. Stobdan, India and Central Asia : Imperative for regional Cooperation in Peace and Security in Control Asia, occasional Paper Series, New Delhi, IDSA, September - 2000. P-96-98.

यह क्षेत्र अपने तेल संसाधनों के कारण भी महत्वपूर्ण हो गया है। कैस्पियन क्षेत्र का तेल भंडार 200 बिलियन बैरल तक हो सकता है। इस क्षेत्र में विश्व की प्रमाणित तेल भंडार का 6% से अधिक भाग व गैस भंडार का करीब 40% भाग है। जून 2000 के अमेरिकी ऊर्जा विभाग के आकलन के अनुसार यदि रूसी व ईरानी क्षेत्र के संसाधन को न लिया जाए तो शेष कैस्पियन क्षेत्र (कजाकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान और अजरबैजान) में करीब 16-32 बिलियन बैरल का प्रमाणित तेल भंडार और इसके अतिरिक्त 206 बिलियन बैरल का संभावित भंडार है। वर्तमान में कैस्पियन सागरीय क्षेत्र (जिसके अन्तर्गत दो मध्य एशियाई देश तुर्कमेनिस्तान व कजाकिस्तान आते है) और शेष मध्य एशियाई देशों का तेल क्षेत्र अभी बहुत कम ज्ञात है। कैस्पियन क्षेत्र के प्रमाणित 16-32 बिलियन बैरल तेल भंडार की तुलना में अमेरिका में 22 बिलियन बैरल व उत्तरी सागर में 17 बिलियन बैरल का भंडार है। इस क्षेत्र के 236-337 ट्रिलियन क्यूबिक फीट गैस भंडार की तुलना में अमेरिका में 300 ट्रिलियन क्यूबिक फीट गैस भंडार है। इस संसाधन के विश्व के सामने आने के बाद तेल कम्पनियों की उम्मीद बहुत बढ़ गयी है। 1994-98 के बीच इस क्षेत्र में 13 देशों की 24 कम्पनियों ने करार पर हस्ताक्षर किया है।[1]

मध्य एशिया में तेल संसाधन के होने तथा रूस व चीन को परिसीमित करने और इस क्षेत्र से आतंकवाद, विशेषकर अफगानिस्तान से तालिबान शासन को समाप्त .करने के लिए अमेरिका ने धीरे-धीरे अपने प्रभाव का प्रसार किया है। यहाँ की खराब आर्थिक दशा को देखते हुए अमेरिका ने आर्थिक सहायता बढ़ा दी है। 2002 के लिए अमेरिका ने 408 मिलियन डालर सहायता की घोषणा की हैं जिसमें से 81.6 मिलियन डालर कजाकिस्तान को, 49 मिलियन डालर किर्गिजिस्तान को, 85.3 मिलियन डालर ताजिकिस्तान को, 16.4 मिलियन डालर तुर्कमेनिस्तान को और 161.8 मिलियन डालर उजबेकिस्तान को मिलेगा। 2001 में अमेरिका ने इस क्षेत्र के देशों को 244.2 मिलियन डालर की सहायता दी थी।[2]

---

1 Ahmed Rashid, Taliban Islam, Oil and the New Great Game in Central Asia, I.B Touris Publishers, London, 2000.

2 World Focus, June 2002, P - 19.

अमेरिका ने 11 सितम्बर 2001 को हुए आतंकवादी हमले के जवाब में अफगानिस्तान पर आक्रमण किया। इस दौरान उसने उजबेकिस्तान व ताजिकिस्तान की आधार सुविधाओं का प्रयोग किया। अमेरिकी सैन्य इन्जीनियर किर्गिजिस्तान मे भी वायु सेना का आधार स्थापित कर रहे है।[1] अफगानिस्तान में अब अमेरिका समर्थित सरकार है तथा वहाँ उसकी सैन्य उपस्थिति है। इसने रूस व चीन की चिंता बढा दी है क्योंकि अब उनकी सीमा तक अमेरिका की उपस्थिति हो गयी है। अमेरिका का इस क्षेत्र में दबदबा इस क्षेत्र के तेल संसाधन पर अमेरिकी नियंत्रण को स्थापित करेगा।

अपने सामरिक व आर्थिक हितों को देखते हुए अमेरिका इस क्षेत्र के लिए अपनी नीतियों का क्रियान्वयन कर रहा है। भारत के लिए भी यह महत्वपूर्ण है कि वह यह सुनिश्चित करें कि इस क्षेत्र में भारत के खिलाफ कोई गठजोड़ न बनने पाए। इसके साथ ही साथ भारत को इस क्षेत्र में पाकिस्तान के किसी सामरिक लाभ के प्रति सजग रहना होगा। भारत को इस क्षेत्र के देशों के साथ आर्थिक कूटनीति पर ध्यान देना होगा। भारत को शंघाई सहयोग संगठन की सदस्यता के संभावित प्रस्ताव के प्रति सजग रहना है क्योंकि इस क्षेत्र में अमेरिका खुद ही इच्छुक है तथा वह इस संगठन को अपने हितों के विरूद्ध मानता है। अतः भारत की इसमें सदस्यता को वह सही ढंग से न लेगा।

भारत के लिए अफगानिस्तान बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ पर कट्टरपंथी शासन का दुष्परिणाम भारत को भुगतान पड़ा है। यहाँ आतंकवादी गतिविधियों का संचालन, नशीले पदार्थो की तस्करी व शस्त्र तस्करी का भारत के साथ-साथ अमेरिका पर भी प्रभाव पड़ा है तथा यह दोनों देशों की सुरक्षा व सामरिक हितों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। अमेरिका ने अफगानिस्तान पर हमला कर वहाँ से तालिबान शासन को हटा दिया है तथा आतंकवादी गतिविधियों के समापन के लिए प्रयासरत है। अफगानिस्तान पर अमेरिकी प्रभाव जहाँ मध्य एशिया पर उसकी पकड़ मजबूत करेगा वही अपनी ऊर्जा जरूरतों की पूर्ति के लिए भविष्य में अफगानिस्तान मे बिछाई जा सकने वाली पाइप लाइन के लिए अवसर तथा सुरक्षा प्रदान करेगा।

---

[1] Frontline, 1 March 2002.

अफगानिस्तान में पैदा की जाने वाली अफीम नशीले पदार्थो के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण है तथा उसके जरिए आतंकवादी संगठनों ने अपने वित्त का एक बड़ा स्रोत बना रखा है। जहाँ 1979 में अफगानिस्तान में 200-300 टन अफीम का उत्पादन हुआ वहॉ 1999 में यह बढकर 4,500 टन हो गया। इसने यहाँ के तालिबान शासन को एक बड़ी वित्तीय सहायता दी।[1] यह स्थिति भारत व अमेरिका दोनों के लिए खतरनाक रहीं। अब अफगानिस्तान में अमेरिकी उपस्थिति से इसमें कमी आई है।

भारत भी अफगानिस्तान में अपने सामरिक व सुरक्षा हितों की अनदेखी नहीं कर सकता। अतः उसने भी तालिबान शासन की समाप्ति पर वहाँ की अंतरिम सरकार से संबंध को बढ़ाने का प्रयास किया हैं। 27 फरवरी 2002 को भारत और अफगानिस्तान के बीच पुर्ननिर्माण के लिए सहयोग की बात हुई। जिसमें पहले से चले आ रहे सहयोग के अलावा शिक्षा, स्वास्थ्य, सूचना प्रौद्योगिकी जन यातायात व उद्योग में सहयोग पर सहमति बनी। भारत ने अफगानिस्तान को 10 मिलियन डालर की सहायता दीं इसके अलावा अगस्त 2002 में अफगानिस्तान को तोहफे के रूप में एयर बस ए-300 बी-4 विमान दिया तथा ऐसे ही दो अन्य विमान देने का वादा किया। इसके साथ ही साथ भारत की मदद से काबुल में चल रहे इंदिरा गांधी अस्पताल को बच्चों और महिलाओं के इलाज के लिए भारत चालीस लाख डालर की मदद दे चुका है।[2]

अतः अफगानिस्तान के सन्दर्भ में भारत व अमेरिका सामरिक रूप से सहयोग कर सकते है क्योंकि यह दोनो ही देशों की सुरक्षा व इस क्षेत्र में शान्ति के लिए अति आवश्यक है। भारत की सुरक्षा व सामरिक स्थिति के सन्दर्भ में चीन, मध्य एशिया व अफगानिस्तान के अलावा भी कई मुद्दे है जो अति महत्वपूर्ण हैं।

भारत की सुरक्षा को पाकिस्तान से शुरू से ही खतरा बना हुआ है तथा इस संबंध में उलझाव के प्रमुख कारणों का विश्लेषण हो चुका है। इसके साथ ही साथ भारत के अन्य पड़ोसियों व क्षेत्रीय समस्याओं को भी अनदेखा नहीं किया जा

1 World Focus, Oct- Nov.-Dec. 2001, P-55.
2 Dainik Jagran, 11 August 2002.

सकता। नेपाल में चल रही माओंवादी हिंसा तथा पाकिस्तानी तंत्र का बढता प्रभाव, बंगलादेश में आतंकवादियों को मिल रही पनाह, भारतीय सुरक्षा के लिए खतरनाक है। इसमें विभिन्न प्रकार की भू-स्थैतिक व राजनीतिक समस्याओं का भी समावेश है। दक्षिण एशिया में किसी सबल क्षेत्रीय संगठन की अनुपस्थिति भी यहॉ के सुरक्षा वातावरण को खराब करती हैं। अतः भारत के लिए अपनी पूर्व की सामरिक नीति में बदलाव अपेक्षित है।

शीत युद्ध के उपरांत बदली स्थिति में हिंद महासागर में भारत की सामरिक स्थिति बहुत महत्वपूर्ण है तथा चीन को परिसीमित करने के लिए यह अमेरिका के लिए एक आकर्षण है। इसके साथ ही साथ विभिन्न मुद्दों पर समान रूप से सुरक्षा संबंधी चुनौती झेल रहे भारत व अमेरिका के बीच सामरिक सहयोग की अच्छी संभावना बनती है।

शीत युद्ध के उपरांत की स्थिति में अमेरिका की भविष्य की नीति के विश्लेषण के लिए यह आवश्यक है कि उसके द्वारा अपनाई गई नीति व अपनाई जा रही नीति की विवेचना की जाए। शीत युद्ध के वाद अमेरिका की विदेश नीति के प्रमुख सिद्धान्त निम्न रहे।

- सुरक्षा, भू-राजनीतिक कारक व व्यवसायिक संजाल के सन्दर्भ में अमेरिका की वैश्विक प्रतिबद्धता अभी भी सबसे महत्वपूर्ण रहीं।
- अमेरिकी राष्ट्रीय हितों के अनुरूप विश्व की वर्तमान व्यवस्था को स्थिरता देने के लिए सामरिक व भू-राजनीतिक कारक अकेले ही महत्वपूर्ण रहे। दक्षिण एशिया, दक्षिण-पूर्वी एशिया और पूर्वी एशिया के सन्दर्भ में उसकी विदेशनीति की निम्न प्रतिबद्धता रही-

    (i) क्षेत्र में स्थिरता

    (ii) व्यवसायिक, आर्थिक और बाजार के हितों को सर्वोपरि रखना।

    (iii) दक्षिण एशिया क्षेत्र में भारत व पाकिस्तान के नाभिकीय टकराव के खतरे को समाप्त करना।

- नांभिकीय टकराव में बदल सकने वाले क्षेत्रीय संघर्ष का परिसीमन।
- क्षेत्र में अस्थिरता उत्पन्न करने वाली कट्टरवादी शक्तियों का शमन करना।

नई शताब्दी में अमेरिका के बुश प्रशासन में आतंकवाद और अमेरिकी सैन्य प्रभुत्व वैश्विक संबंधों की पुनर्सरचना कर रहे हैं। आतंकवादी संगठनों के आत्मघाती दस्तों के विरूद्ध शीत युद्ध काल की अमेरिकी परिसीमन की नीति कारगर नहीं है। अतः इस समय की नीति में परिवर्तन आया। इसके तीन मुख्य बिन्दु हैं

- अमेरिका आतंकवादियों तथा व्यापक नरसंहार रखने वाले देशों के विरूद्ध अग्रिम कार्यवाही के लिए स्वतन्त्र है।
- न किसी देश न ही किसी गठबंधन को अमेरिकी सैन्य सर्वोच्चता को चुनौती देने की अनुमति दी जाएगी।
- नाभिकीय शस्त्रों के अप्रसार के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संधियों व संगठन की अपेक्षा एक पक्षीय प्रयास व तरीके ज्यादा कारगर है।

इस प्रकार बुश की नीति के बारे में संक्षप में कहा जा सकता है कि अब अमेरिका पारम्परिक नीतियों तथा अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के नियमों की परिधि में नहीं रहेगा। अमेरिका का निश्चित रूप से कहना है कि आज विश्व में आतंकवाद उसका मुख्य शत्रु है। अमेरिका जरूरत पड़ने पर अपनी शक्ति का प्रयोग अकेले ही करेगा, जिससे की शत्रु दोबारा हमला न कर सके। अमेरिकी प्रशासन ने इसके साथ ही साथ यह भी कहा कि अमेरिका अपनी शक्ति का प्रयोग आक्रमण के बहाने के लिए नहीं करेगा और वह अमेरिकी स्वतन्त्रता के मूल्य, खुला बाजार और व्यापार तथा मानव अधिकार को फैलाने का प्रयास जारी रहेगा।

बुश प्रशासन ने अग्रिम कार्यवाही व आत्मसुरक्षा की बात की है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून में अग्रिम कार्यवाही मान्य है यदि तात्कालिक आक्रमण का प्रत्यक्ष सबूत हो परन्तु बुश प्रशासन की नीति के अनुसार अमेरिका आक्रमण के पक्के सबूत के पूर्व ही खतरे का आभास होने पर भी कार्यवाही कर सकता है। इस अमेरिकी नीति का

विरोधाभास हमे तब देखने को मिलता है जब अमेरिका इराक में व्यापक नरसंहार बाले हथियारों के सन्दर्भ में उस पर आक्रमण करने की तैयारी करता है तो दूसरी तरफ उत्तरी कोरिया व उसको मदद करने वाले पाकिस्तान के प्रति आक्रामक रूख नहीं अपनाता।

अमेरिका की इस नेशनल सिक्योंरिटी रिव्यू रिपोर्ट को न्यूयार्क टाइम्स ने 1981-88 के बाद से इसे राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति सबसे आक्रामक नीति बताया। अमेरिका ने इसी परिप्रेक्ष्य में अपने एन.एम.डी. कार्यक्रम को आगे बढाया है, जबकि राष्ट्रपति क्लिंटन का कहना था कि इससे चीन, भारत व पाकिस्तान के बीच मिसाइल होड़ शुरू हो जाएगी। उनके अनुसार मैं सोचता हूँ कि मैने इसकी तैनाती न करने का सही निर्णय लिया और मैं यह भी सोचता हूँ इसके शोध कार्यक्रम को आगे बढ़ाने का निर्णय भी सही था।[1]

बुश प्रशासन ने अमेरिकी सुरक्षा के प्रति ज्यादा आक्रामक व यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए एन.एम.डी. कार्यक्रम को अपनाने की घोषणा की। 1 मई 2001 को राष्ट्रपति बुश ने वाशिंगटन स्थिति नेशनल डिफेंस यूनिवर्सिटी में इस योजना के उद्देश्यों के बारे में बताया। भारत में इस बारे में अपने समर्थन की बात कही।

अमेरिका की इस नीति व ए.बी.एम. संधि से अलग होने की घोषणा पर रूस की प्रतिक्रिया बहुत आक्रामक नहीं थी परन्तु चीन पर इसका सर्वाधिक दबाव है क्योंकि ताइवान व जापान के साथ-साथ भारत के भी इस सुरक्षा कवच में शामिल होने के सम्भावना है। इसके द्वारा एशिया में अमेरिकी प्रभुत्व स्थापित करने की भी अपेक्षा है।

भारत ने स्वतन्त्रता के बाद पहली बार विदेशी मामले के अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा के किसी बड़े और महत्वपूर्ण विषय पर भारत ने इतनी जल्दी प्रतिक्रिया दी। अमेरिका के साथ अपने सामरिक हितों को देखते हुए भारत की प्रतिक्रिया यथार्थवादी है तथा 17 अगस्त 1999 को राष्ट्रपति रीगन के नक्षत्र युद्ध सदृश

1 The Hindustan Times, New Delhi, 14 January 2001.

परिकल्पना देने (न्यूक्लियर डाक्ट्रिन)11 और 13 मई 1998 के परमाणु परीक्षण तथा किसी देश की प्रतिक्षा और परवाह किये बिना अमेरिकी मिसाइल प्रतिरक्षा योजना को समर्थन भारत के स्वतंत्र और विशिष्ट छवि के निर्माण की इच्छा का प्रमाण है।

रक्षा विशेषज्ञों के अनुसार भारत व अमेरिका के बीच सैन्य सहयोग की अपार संभावनाओं के कारण अनेक अमेरिकी अधिकारी भारत को अमेरिकी मिसाइल सुरक्षा दायरे में लाना चाहते है। वाशिंगटन के सेंटर फार सिक्योरिटी पॉलिसी के अध्यक्ष फ्रैंक गैफनी के अनुसार भारत व अमेरिका के बीच भविष्य के सहयोग का महत्वपूर्ण क्षेत्र मिसाइल सुरक्षा हो सकता है।[1]

यदि हम एशिया के विशेष सन्दर्भ में भविष्य की अमेरिकी नीति का विश्लेषण करे तो निम्न स्थिति उत्पन्न हो सकती है। एक कम महत्वपूर्ण नीति यह हो सकती है कि अमेरिका एशिया की एक प्रमुख शक्ति, जैसे-भारत, जापान या चीन से शर्तो के आधार पर गठजोड़ करें। तब वह अपने सहयोगी के स्वतंत्र रूप से कार्य करने की एवज में उसकी सैन्य व राजनीतिक जिम्मेदारियों को उठाए परन्तु यह न तो अमेरिका न ही उसके सहयोगी के लिए व्यावहारिक होगा। अतः इसकी संभावना कम है।

.दूसरी संभावना यह है कि अमेरिका प्रमुख क्षेत्रीय शक्तियों के बीच संतुलनकर्त्ता की भूमिका निभाए। इस तरह एशिया में बहुध्रुवीय व्यवस्था की स्थापना होगी, जिसके प्रमुख कर्ता चीन, जापान, भारत व रूस होगें। इस प्रकार अमेरिका दूसरे क्षेत्र में अवस्थित होते हुए भी एशियाई सन्तुलन में भागीदार रहेगा। तीसरी व चौथी संभावना क्रमशः यह हो सकती है कि अमेरिका इस क्षेत्र में सामूहिक सुरक्षा व्यवस्था की शुरूआत करें या इस क्षेत्र से अपने को असंबद्ध कर ले।

उपरोक्त संकल्पनाओं के आलोक में इस बात की ही संभावना है कि अमेरिका यहाँ संतुलनकर्ता की भूमिका निभाए तथा अपनी सामरिक हितों के हिसाब से क्षेत्रीय शक्तियों को संतुलनकर्ता के रूप में चुने तथा उसके साथ द्विपक्षीय सामरिक सहयोग को नए सिरे से विकसित करें। भारत व अमेरिका का इस सन्दर्भ

---

1 The Times of India, Lucknow, 20 September 2002.

में यह संबंध हो सकता है होगा कि अमेरिका चीन को परिसीमित करने के लिए भारत को क्षेत्रीय शक्ति मानते हुए संतुलनकर्ता के रूप में चुने। इस संबंध में भारत को सैन्य सहयोग देने के साथ-साथ, यह नीति हो सकती है कि भारत को संयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद का स्थायी सदस्य बना दिया जाए जिसके लिए भारत प्रयासरत है तथा वह इस संबंध में अमेरिकी सहयोग चाहता है।

भारत की सदस्यता पाने की रणनीति का चीन विरोधी है। अनेक अमेरिकी विशेषज्ञों का मत है कि भारत ने अमेरिका के प्रस्तावों का संयुक्त राष्ट्र संघ में ज्यादा समर्थन नहीं किया है। जापान और जर्मनी संयुक्त राष्ट्र संघ को आर्थिक योगदान देने के प्रश्न में अपनी सदस्यता की बात करते है। संयुक्त राष्ट्र संघ के बजट में जापान का अनुदान 216 मिलियन डालर वार्षिक, जर्मनी का 104 मिलियन डालर व भारत का 350,000 डालर है।[1] भारत का कहना है कि विश्व की एक विशाल जनसंख्या व सशक्त लोकतंत्र का प्रतिनिधित्व करने के कारण उसकी दावेदारी मानी जानी चाहिए तथा सदस्यता के प्रश्न को धन से नहीं तौलना चाहिए। सामरिक दृष्टि से यह मुद्दा भारत के लिए महत्वपूर्ण है। भारत अब अपनी सामरिक व सुरक्षा वातावरण का व्यवहारिक अध्ययन कर यथार्थवादी नीति अपना रहा है और यह एन.एम.डी. के सन्दर्भ में दिए गए समर्थन से स्पष्ट है। अतः अमेरिका को भी भारत के इस रूख को पहचानते हुए उसे अपना समर्थन देने में संकोच नहीं करना चाहिए।

इस समय भारत व अमेरिका के बीच सामरिक सहयोग की आवश्यकता को देखते हुए तनाव उत्पन्न करने वाले कारकों को किनारे रखने की प्रवृत्ति है। अमेरिका के तात्कालिक हित के सन्दर्भ में पाकिस्तान के महत्व को देखते हुए तथा उसको दिए जा रहे अमेरिकी समर्थन तथा अमेरिकी दबाव के बावजूद पाकिस्तान द्वारा जारी सीमा पार आतंकवाद ने भारत में अमेरिका के प्रति बहुत उत्साह नहीं पैदा किया। भारत ने अपने दूरगामी हितो को देखते हुए तथा चीन द्वारा किए जा रहे इस आकलन को गलत साबित करने के लिए कि पाक को बढ़ रहा अमेरिकी

---

1 Basic Facts About the United Nations, New York, United Nations, 1998, P-19.

समर्थन भारत व अमेरिका के बीच तनाव पैदा करेगा, भारत के प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी ने कहा कि अमेरिका से भारत का संबंध पाकिस्तान पर आधारित या केन्द्रित नहीं है।[1]

अतः अब यह आवश्यक है कि भारत चीन द्वारा पैदा किए जा रहे खतरों तथा रूस द्वारा चीन को दी जा रही सैन्य सहायता और भारत से ज्यादा चीन का रूसी परिप्रेक्ष्य में महत्व बढ़ जाने से भारत व अमेरिका व्यवहारिक दृष्टिकोण अपनाते. हुए सैन्य व सामरिक क्षेत्र में सहयोग के क्षेत्रों का विस्तार करें तथा अपने साझा सामरिक हितों की पूर्ति में सहायक बनें।

(III) हिन्द महासागर : प्रतिस्पर्द्धा केन्द्र :

हिन्द महासागर सामरिक दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह शीत काल के दौरान महाशक्तियों के राजनीतिक, सैन्य, सामरिक व आर्थिक हितों के कारण आकर्षण का केन्द्र रहा। इसे भविष्य का महासागर कहा गया और अटलांटिक व प्रशान्त महासागर को भूत काल का महासागर समझा गया।[2] हिन्द महासागर का उत्तरी भाग जहाँ पतली जलधारा से नियन्त्रित है तो इसके दक्षिणी भाग में काफी फैलाव हैं इसकी भौगोलिक संरचना में कुछ नियन्त्रण बिन्दु है जैसे : स्वेज नहर, मलक्का जलडमरूमध्य, द केप ऑफ गुड होप, तथा आस्ट्रेलियाई जल। इन पर नियन्त्रण से हिन्द महासागर क्षेत्र पर महत्वपूर्ण बढ़त हासिल हो जाती है।

हिन्द महासागर का महत्व उसके जल मार्गो और उसके क्षेत्र में उपलब्ध कच्चे माल के कारण अत्यधिक है। इसकी समुद्री सतह पर उपलब्ध होने वाले स्रोतों, विशेषकर ऊर्जा स्रोतों की कमी नहीं है। इसके जल मार्ग पश्चिम और जापान के लिए जीवन रेखा का कार्य करते है। औपनिवेशिक काल से हिन्द महासागर भारत, पूर्वी एशिया व आस्ट्रेलिया के लिए प्रमुख मार्ग रहा। ब्रिटेन द्वारा नौ सैनिक क्षेत्र में बढ़त व इस क्षेत्र के व्यापक भाग में उसके औपनिवेशिक शासन ने हिन्द महासागर को 'ब्रिटिश झील' में बदल दिया था।

---

1 Dainik Jagran, 17 September, 2002.

2 Alvin J. Cottrell, Indian ocean of Tomorrow, Navy Magazine, March 1971, P - 10.

1960 के दशक के अंतिम वर्षो में ब्रिटेन ने इस क्षेत्र में हटने के संकेत दिए, जिससे अमेरिका की दिलचस्पी इससे बढ़ी तथा अपने सामरिक हितों को देखते हुए उसने 1970 के दशक में इस महासागर के विभिन्न प्रवेश द्वारों पर नियन्त्रण स्थापित करना शुरू किया। अमेरिका ने सामन्स टाउन (अंटलाटिक से केप मार्ग द्वारा प्रवेश), मसीरा (लाल सागर और फारस की खाडी से प्रवेश मार्ग), डियेगो गार्सिया (मध्यवर्ती हिन्द महासागर व दक्षिण से प्रवेश), कोकबर्न साउंड और केप उत्तर पश्चिम (प्रशान्त महासागर के दक्षिण से प्रवेश) पर नियन्त्रण स्थापित कर हिन्द महासागर पर प्रभुत्व स्थापित किया।

1979 में अमेरिकी कांग्रेस शोध सेवा के लेखपत्र में हिन्द महासागर में अमेरिकी हितों व उद्देश्यों की व्याख्या की गई। इसके अनुसार अमेरिका की हिन्द महासागर में निम्न क्षमताएं होनी चाहिए- फारस की खाडी क्षेत्रों में अमेरिकी आर्थिक हितों की रक्षा करने की क्षमता, मध्यपूर्व में अमेरिकी राजनयिक उद्देश्यों के समर्थन में शक्ति प्रयोग की क्षमता रखना, परेशान किये जाने अथवा रूकावट के विरूद्ध हिन्द महासागर के वायु और जलमार्गो की सुरक्षा करना, तटवर्ती देशों में इन सब उद्देश्यों व अन्य उद्देश्यों के समर्थन में हस्तक्षेप करना, सोवियत सेनाओं को इस क्षेत्र में संतुलित करना और संकट काल में उच्चता प्राप्त करना।

अमेरिका की उपरोक्त नीति अल्फ्रेड टी० महान के दृष्टिकोण से प्रभावित थी जिसमें उन्होंने कहा था कि जो कोई हिन्द महासागर पर नियन्त्रण प्राप्त करता है उसका एशिया पर अधिपत्य होगा। यह सात समुद्रों की कुंजी है। इक्कीसवीं शताब्दी में विश्व का भाग्य इसके जल में निर्धारित किया जायेगा। अमेरिका की हिन्द महासागर में शुरू हुई उपस्थिति आज तक बनी हुई है। डियेगो गार्सिया की स्थापना करके अमेरिका इस क्षेत्र में विदेशी भूमि पर सैनिक अड्डा स्थापित करने वाली पहली महाशक्ति बन गया।

वियतनाम में 1975 में अमेरिका की पराजय एवं दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में डगमगाता अमेरिकी प्रभाव, 1973 का अरब-इजराइल संघर्ष और इसके बाद अरब देशों द्वारा पश्चिमों राष्ट्रों के विरूद्ध तेल आपूर्ति की पाबन्दियों से उत्पन्न तेल संकट ने इस क्षेत्र के महत्व को अमेरिकी हितों के सन्दर्भ में बढ़ाया इस क्षेत्र में अमेरिकी प्रवेश के साथ ही साथ सोवियत संघ का भी प्रवेश हुआ। जिससे यह क्षेत्र महाशक्तियों की

प्रतिस्पर्धा का अखाड़ा बना। अफगानिस्तान संकट व ईरान में शाह के पतन से खाडी क्षेत्र में अमेरिकी प्रभाव के ह्रास ने हिन्द महासागर में अमेरिकी प्रभाव को बढाने के लिए प्रेरित किया।

शीत युद्ध काल के इन घटनाक्रमों ने भारत के सामरिक हित व सुरक्षा को गंभीर खतरा उत्पन्न किया तथा भारत इस सन्दर्भ में सतर्क रहा। इस क्षेत्र में शक्ति शून्यता के नाम पर की जा रही कार्यवाही का भारत ने विरोध करते हुऐ कहा था कि यदि इस क्षेत्र में कोई शक्ति शून्यता है तो वह इस क्षेत्र की शक्तियों द्वारा भरा जाना चाहिए। इस क्षेत्र में शक्ति प्रदर्शन के कारण ही भारत ने इसे 'शांति क्षेत्र' बनाने की बात की।

शीत युद्ध के उपरांत स्थिति में परिवर्तन आया है। अन्य क्षेत्रों की तरह हिन्द महासागर में भी अमेरिका का एकक्षत्र राज स्थापित हुआ परन्तु अब इस क्षेत्र में नए कर्त्ताओं का प्रवेश हो रहा है जो सामरिक दृष्टिकोण से भारत व अमेरिका दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। भारत के सन्दर्भ में यह महत्वपूर्ण है कि शीत युद्ध काल में भी हिन्द महासागर में महाशक्तियों की उपस्थिति से भारत की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हुआ था परन्तु इस समय भारत द्वारा दोनों शक्तियों से सम्पर्क बनाए रखा गया था। तब भी भारत का सामरिक मुद्दों पर सोवियत संघ की ओर झुकाव था तथा उसके साथ मैत्री व सहयोग संधि के कारण भारत के प्रति अमेरिका द्वारा उत्साहजनक रवैया न रखने के बावजूद, वह भारत की सुरक्षा को प्रभावित न कर सका। इसका उदाहरण 1971 का भारत पाकिस्तान युद्ध था, यद्यपि भारत असुरक्षा की भावना से घिरा रहा।

शीत युद्ध के उपरांत स्थिति दूसरी है भारत का पड़ोसी चीन इस क्षेत्र में अपनी गतिविधियाँ बढ़ा रहा है तथा भारत का उसके साथ सीमा विवाद है। अतः इस समय भारत की सुरक्षा को शीत युद्ध काल से ज्यादा प्रत्यक्ष चुनौती है। शीत युद्ध के समय हिन्द महासागर में चीन की नीति सोवियत संघ व उसके सहयोगियों को चुनौती देने की थी। चीन ने 1969-70 में हिन्द महासागर में सोवियत प्रभाव के बारे में कहा था कि यह इस क्षेत्र को घेरने के लिए है तथा यह ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नया रूप हैं। शीत युद्ध के समय चीन की नौसेना भी कोई सशक्त नहीं थी, परन्तु अब इसमें बदलाव आया है। रूस का अब वह प्रभाव नहीं रह गया है। इस कारण से चीन ने फारस की खाडी से लेकर मलक्का जलडमरू मध्य तक अपने प्रभाव को फैलाना शुरू

कर दिया है। इसके लिए उसे ईरान, पाकिस्तान व म्यांमार से मदद मिल रही है। चीन का यह बढ़ता प्रभाव भारत की सुरक्षा व सामरिक हितों के विरूद्ध है। इसके साथ ही साथ अमेरिका द्वारा अब चीन को 'सामरिक प्रतिद्वन्दी' के रूप में देखने से उसके लिए नई चिन्ता बन रही है।

चीन फारस की खाड़ी से दक्षिण चीन सागर तक मौजूदगी बनाकर हिन्द महासागर में अपनी भूमिका सुनिश्चित करना चाहता है। वह ओमान से करीबी रक्षा संबंध कायम करके और पाकिस्तान के 'ग्वादर' तथा म्यांमार के 'जा देत की', में नौसेना बंदरगाह बनाकर मलक्का जडमरूमध्य के जरिए लाभकारी तेल की आवाजाही मार्ग पर अपने दीर्घावधिक हितों का संकेत दे रहा हैं

भारत का कहना है कि चीन दक्षिण एशियाई देशों को हथियार और उपकरण की आपूर्ति के जरिए भारतीय राजनीतिक क्षेत्र को सीमित करने की कोशिश कर रहा है। भारत हिन्द महासागर में ऊर्जा सुरक्षा मुहैया कराने के अपने जायज अधिकार को छोड़ना नहीं चाहता। भारत एशिया के ऊर्जा सुरक्षा क्षेत्र में सक्रिय खिलाड़ी बनने की चाह के कारण यह संभावना हो सकती है कि फारस की खाड़ी से मलक्का जलडमरूमध्य के मार्ग को आतंकवादियों, जल दस्युओं और हथियार तथा नशीले पदार्थों के तस्करों से मुक्त रखने के लिए भारतीय व अमेरिकी पोतों की साझा गश्त हो।

हिन्द महासागर के विषय में भारत की दीर्घकालिक और अल्पकालिक दोनों ही तरह की नीति आवश्यक है। समुद्री क्षेत्र में अपने हितों की रक्षा के लिए भारत का एक समर्थ नाविक शक्ति के रूप में विकास अनिवार्य है। इसके लिए भारत ने प्रयास किया है तथा नौसेना को सशक्त करने की योजना आकार ले रही है इसको देखते हुए अमेरिकी विदेश मंत्री कोलिन पावेल ने कहा कि भारत को ऐसी ताकत के रूप में देखा जाना चाहिए, जो हिन्द महासागर में नियन्त्रण रख सकता है।

भारत ने अपने सामरिक हित को देखते हुए पोर्ट ब्लेयर में सेना के तीनों अंगों की कमान स्थापित करने को मंजूरी प्रदान की है। इस क्षेत्र के द्वीप विश्व के दूसरे सबसे व्यस्त समुद्री संचार मार्ग मलक्का जलडमरूमध्य में पड़ते है। अधिकांश जहाज इस खाड़ी में 10 डिग्री अक्षांश पर अंडमान द्वीप समूह और निकोबार द्वीप समूह के मध्य से गुजरते हैं। भारत के धुर दक्षिण का इंदिरा प्वाइंट, इंडोनेशिया के बाडा एकेह

क्षेत्र से आने वाली धाराओं के मध्य में पडता हैं इसका सामरिक महत्व यह है कि अंडमान-निकोबार कमान से भारत अब दक्षिणी चीन सागर में जाने वाले जहाजों की निगरानी कर पाएगा तथा अपनी सुरक्षा कर सकेगा।

अमेरिका की नेशनल डिफेंस यूनिवर्सिटी के एक अध्ययन के मुताबिक, खाडी देशों और यूरोप को जापान का 42.2% (करीब 200 अरब डालर या 9,20,000 करोड़ रू. का). निर्यात और चीन का 21.8% निर्यात मलक्का जल डमरू मध्य के जरिए होता है। यदि इस जलडमरूमध्य का मार्ग अवरूद्ध हो जाए तो भारत से जापान को लौह अयस्क के निर्यात की लागत 4% बढ़ जाएगी। अतः यह जलमार्ग बहुत महत्वपूर्ण और संवेदनशील है।

भारतीय नौ सेना ने लैंडफाल द्वीप समूह के उत्तर में निगरानी के लिए 200 समुद्री मील की क्षमता का अत्याधुनिक वायु निगरानी सीएसएफ रडार लगाया हुआ है। यह कोको द्वीप समूह के करीब है जहॉ पर 1992 से ही चीन ने अपने रडार केन्द्र स्थापित कर रखा है और यही से वह भारतीय नौ सेना की गतिविधियों तथा चांदीपुर व हैदराबाद की रक्षा शोध एवं विकास प्रयोगशाला पर नजर रखता है। इस प्रकार शीत युद्ध के उपरांत के नए परिवेश में हिन्द महासागर में भारतीय सामरिक हित महत्वपूर्ण हो गए हैं। इसीलिए उसने फारस की खाड़ी से मलक्का जल डमरूमध्य तक अपने प्रभाव को फैलने की रणनीति अपनाई है।

अमेरिका के लिए भी यह क्षेत्र उसके सुरक्षा व सामरिक हितों के लिए महत्वपूर्ण बना हुआ है तथा यह विश्व मंच पर उसकी शक्ति प्रदर्शन में सहायक है। खाड़ी संकट के समय अमेरिका ने अपने जापान स्थित नौ सैनिक ठिकानों से जहाजों को हिन्द महासागर के रास्ते ही फारस की खाड़ी में भेजा था। अफगानिस्तान में अपने आतंकवाद विरोधी कार्यवाही में भी उसके हिन्द महासागर में मौजूद बेड़े से महत्वपूर्ण सहयोग मिला। अतः अमेरिका इस क्षेत्र में सैनिक महत्व को देखते हुए ऐसी किसी भी शक्ति के उभरने का विरोध करेगा, जो उसकी शक्ति को चुनौती दे सके।

यहॉ पर महत्वपूर्ण है कि खाड़ी युद्ध के समय पूर्वी एशिया से अपने बेड़ों को खाड़ी क्षेत्र मे भेजने के कारण इस क्षेत्र में अमेरिकी नौसेना की शक्ति उस काल में कम हुई थी। यदि ऐसी ही स्थिति दुबारा उत्पन्न हो जब खाड़ी क्षेत्र में अमेरिका उलझा हो और पूर्वी एशिया क्षेत्र में दूसरा मोर्चा खुल जाए तो अमेरिका को परेशानी

हो सकती है। इसके साथ ही साथ चीन इस मार्ग को अवरूद्ध कर जापान और अमेरिका के बीच सम्पर्क काट सकता है। अतः अमेरिकी रणनीति यह है कि इस क्षेत्र में अपनी शक्ति को और सुदृढ़ता दी जाए। अफगानिस्तान संकट ने इस दिशा के प्रयास में तेजी प्रदान की है।

यहाँ पर यह महत्वपूर्ण है कि अमेरिका सहित पश्चिमी देश हिन्द महासागर के किनारों पर स्थित देशों पर अपने लिए सामरिक महत्व के पदार्थो, खनिज व ऊर्जा के विभिन्न संसाधनों के लिए निर्भर है। व्यापार व समुद्री परिवहन में हिन्द महासागर का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः अमेरिका के साथ-साथ भारत के लिए भी इसमें बिना रूकावट आवागमन की आवश्यकता है।

भारत की स्थिति हिन्द महासागर के संबंध में महत्वपूर्ण है। खाड़ी व दक्षिण चीन सागर के मध्य की उसकी स्थिति उसके सामरिक महत्व को बढ़ा देती है। भारत व अमेरिका दोनों एक दूसरे को इस क्षेत्र के मार्ग को खुला रखने के संबंध में सहयोग कर सकते है। भारत को चीन से संभावित खतरे को देखते हुए तथा अमेरिका को भी उससे ख़तरे को देखते हुए दोनों के बीच इस क्षेत्र में सहयोग हो सकता है।

भारत व अमेरिका ने इसे स्वीकार करना शुरू कर दिया है कि फारस की खाडी व मलक्का जलडमरूमध्य तक में दोनों के रणनीतिक हित साझे हो सकते हैं। इस बात की संभावना कम है कि भारत अमेरिका को अपने यहाँ कोई नौसैनिक आधार स्थापित करने दे परन्तु उसके द्वारा अमेरिका को कुछ आधारभूत सुविधाएं उपलब्ध कराई जा सकती है।

अतः शीत युद्ध के बाद की परिस्थितियों में भारत व अमेरिका के बीच रक्षा व सामरिक क्षेत्र में सहयोग के द्वार खुले हैं। इसके साथ-साथ भारत के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी सामरिक स्थिति को देखते हुए अपने आवश्यकता का अमेरिका को एहसास करांते हुए, लाभ उठा सके। यद्यपि यह भी महत्वपूर्ण है कि अमेरिका भी भारत की तकनीकी व सामरिक क्षमताओं को देखते हुए इस बात का प्रयास करेगा कि भारत द्वारा उतनी ही शक्ति प्राप्त की जा सके, जो कि चीन को सन्तुलित करने के लिए आवश्यक हो। अतः भारत को भी स्थिति का व्यावहारिक आंकलन कर कदम उठाना चाहिए।

पंचम अध्याय

निष्कर्ष

निष्कर्ष

भारत व अमेरिका, विश्व के दो विशाल लोकतंत्र हैं और दोनों ही प्रातिनिधिक लोकतंत्र में आस्था रखते हैं। यह एक स्वाभाविक वैचारिक समानता है जो इन्हें नैसर्गिक रूप से जोड़ती है। प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी ने इसी संदर्भ में, विगत् सन् 2001 में अपने वक्तव्य में दोनों देशों के संबंध को नैसर्गिक मित्र (Natural Allies) की संज्ञा दी। यह भी उल्लेखनीय है कि दोनों ही देशों के अतीत में 'दासतामुक्ति' का आंदोलन व स्वाधीनता संघर्ष हुआ और दोनों ही देश औपनिवेशिक शासन की बेड़ियाँ तोड़ स्वाधीनता प्राप्त किये।

1830 से 1840 के मध्य 'हेनरी डेविड थोरेग' व 'राल्फ वाल्डो इमरसन' जैसे अमेरिकी दार्शनिक व मनीषी, भारत की सांस्कृतिक विरासत व आध्यात्मिक ग्रन्थों से प्रभावित हुए। सन् 1893 में स्वयं स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका की यात्रा की व शिकागो धर्मसंसद पर अमिट छाप छोड़, वहाँ की चेतना पर भारतीयता का परचम लहराया।

1947 में भारतीय स्वाधीनता के उपरांत ही दोनों देश अपने पारस्परिक संबंध एक स्वतंत्र संप्रभु देश के रूप में आरम्भ कर सके किन्तु राष्ट्रीय हितों की विभिन्नता ने संबंधों में निकटता न आने दी। 1947 से आरंभ हुआ कश्मीर प्रकरण, 1948 में इजराइल के गठन का प्रकरण, 1949 मे चीन का अभ्युदय, सन् 1951 में कोरिया विवाद, 1962 का भारत-चीन युद्ध, 1965 व 1971 भारत-पाक युद्ध, 1971 की भारत सोवियत् मैत्री सन्धि, 1974 का भारत का परमाणु विस्फोट (पोखरण-प्रथम), ईरान के शाह का पतन, अफगानिस्तान पर सोवियत कब्जा (1979) व इन सभी के बीच भारत व अमेरिका की ओर से छोटे-मोटे संबंध सुधार प्रयास, हमें दोनों देशों के पारस्परिक संबंधों में कोई उल्लेखनीय इतिहास नहीं देते। उपरोक्त सभी चर्चित विवाद व अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दे ऐसे रहे जिनमें भारत व अमेरिका में वैमत्य देखा गया। 1968 की एन.पी.टी., सार्वभौमिक निरस्त्रीकरण पर विरोधी विचारधारा, पाकिस्तानी व चीनी कारक पारस्परिक संबंधों में नकारात्मक अध्याय जोड़ते रहे।

भारत अमेरिका के संबंध 1945 से 1990 के शीत युद्ध रूपी नदी के दो तटों में फॅसी नौका के समान रहे जो भीषण विप्लव में एक ही उपलब्धि कर पाई और वो रही 'मैत्री की इच्छा का अस्तित्व'।

शीत युद्ध काल में आर्थिक, राजनीतिक व सामरिक संबंधों में उतार-चढ़ाव का दौर बना रहा। यदि इस पूरे घटनाक्रम का विश्लेषण करें तो इसके प्रमुख कारण इस प्रकार सामने आते हैं जैसे- (i) विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं पर मतभेद (ii) भारत-सोवियत सहयोग (iii) अमेरिका-पाकिस्तान गठजोड एवं (iv) नाभिकीय अप्रसार नीति पर मतभेद।

अमेरिका द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से ही महाशक्ति बना हुआ है, जबकि भारत विश्व मंच पर महत्वपूर्ण होते हुए भी कगार पर खड़ा है। शीत युद्ध के अंत के बाद आए परिवर्तनों ने नए समीकरणों को उभारा है तथा इसमें राष्ट्रों की भूमिका में परिवर्तन आया है, जिसका प्रभाव भारत-अमेरिका द्विपक्षीय संबंध पर भी पड़ा।

भारत-अमेरिका संबंध में 1984 के बाद से विभिन्न क्षेत्रों में शुरु हुई नई शुरुआत, जिसके अन्तर्गत तकनीक हस्तांतरण व सैन्य सहयोग के लिए धीरे-धीरे प्रयास शुरु हुए थे, को 1990 के बाद के घटनाक्रमों से एक नई दिशा व आधार मिला। इन परिवर्तनों का विश्वव्यापी प्रभाव रहा तथा इसने अन्तर्राष्ट्रीय संबंध में क्रियाशीलकर्ताओं की स्थिति व भूमिका को बदल दिया। यह प्रमुख परिवर्तन इस प्रकार हैं-

1. शीत युद्ध का अंत
2. एकध्रुवीय अंतर्राष्ट्रीय व्यवथा
3. एकीकृत यूरोप
4. खाड़ी युद्ध
5. भूमण्डलीकरण का प्रभाव
6. अमेरिका की दक्षिण एशिया नीति व भारत

शीत युद्ध, महाशक्तियों की आपसी प्रतिस्पर्धा का नाम है, जहाँ दोनों पक्ष परस्पर शान्तिकालीन कूटनीतिक संबंध बनाए रखते हुए भी परस्पर शत्रुभाव रखते थे और सशस्त्र युद्ध के अतिरिक्त अन्य सभी उपायों से एक दूसरे की स्थिति को दुर्बल बनाने का प्रयत्न करते थे। इस दौरान भारत द्वारा अपनाई गई गुट निरपेक्षता दोनों पक्षों में असन्तोष का कारण बनी। अमेरिका ने भारत पर सोवियत समर्थक होने का आरोप लगाया परन्तु 1989 के माल्टा सम्मेलन में शीत युद्ध के अंत की औपचारिक घोषणा से विचारधारा के टकराव का अंत हुआ तथा भारत के लिए भी सकारात्मक संभावनाएँ उत्पन्न हुई।

शीत युद्ध का अंत विश्व परिस्थितियों में एक नवीन आयाम उत्पन्न कर सका। फलतः भारत-अमेरिका के पारस्परिक संबंध ही नहीं अपितु विश्व के लगभग सभी देशों की विदेश नीति में परिवर्तन परिलक्षित हुआ। अमेरिकी विदेश नीति का लक्ष्य साम्यवाद परिसीमन से बदल गया तथा उसने अब आर्थिक पक्ष की ओर ध्यान देना शुरु किया क्योंकि इस समय अमेरिका को सैन्य व सामरिक रूप से चुनौती देने वाला कोई न था। अतः आर्थिक क्षेत्र में भी अमेरिका वर्चस्व निर्माण को उद्यत हुआ। इसका प्रमाण हम विभिन्न आर्थिक मंचों पर उसकी उपस्थिति व कार्य प्रणाली को देखकर पाते हैं।

सोवियत साम्यवाद के 1991 के पतन के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका के समानांतर राजनीति करने वाला कोई अन्य राष्ट्र नहीं बचा, फ्रांस, ब्रिटेन व चीन जैसी महाशक्तियाँ अमेरिका से आर्थिक रूप से जुड़ी हुई थीं, स्वयं रूस भी अमेरिका से आर्थिक व व्यापारिक घनिष्टता का इच्छुक था। अतः अमेरिका के नेतृत्व में द्विधुवीय व्यवस्था एकधुवीय अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में परिणत हो गई। फलतः यूरोप को विभाजित करने वाले साम्यवाद का वहाँ भी अंत हुआ। शेष कट्टरपंथी साम्यवादी व्यवस्थाएं जैसे चीन, वियतनाम व क्यूबा, वैचारिक रूप से अलग-थलग पड़ गए। कालांतर में इन देशों ने अपनी व्यवस्था को उदारवादी परिवर्तनों की ओर अग्रसर किया। वे दुनिया के अन्य भागों में साम्यवादी गुट को पुनर्जीवित करने के,

न तो इच्छुक हैं और न ही समर्थ; किन्तु चीन के शासक सन् 2020 तक चीन को एक महान शक्ति बनाने का स्वप्न देखते हैं।

एकधुवीय अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में, अमेरिका के वर्चस्व को स्थापित करने में खाड़ी संकट का महत्वपूर्ण योगदान रहा, जब अमेरिका ने कुवैत को इराकी कब्जे से मुक्त कराया। अमेरिका का वर्चस्व इसलिए स्थापित हो सका क्योंकि जर्मनी व जापान जैसे शक्ति केन्द्र मूलतः आर्थिक प्रकृति के हैं जिनके अमेरिका के साथ पूर्व से ही स्थापित घनिष्ट संबंध रहे हैं तथा अमेरिका ग्रुप-8 देशों का महत्वपूर्ण घटक है। इस समय तक विश्व अर्थव्यवस्था में अमेरिका का वर्चस्व कायम हो गया, जबकि पहले से ही यह देश विज्ञान, तकनीक व सैन्य क्षमता से उन्नत था। कालांतर में यूगोस्लाविया मामले पर अमेरिका ने सैन्य कार्यवाही करवाकर, अपने द्वारा स्थापित वर्चस्व का प्रमाण दिया। अमेरिका के अपने वर्चस्व संरक्षण के प्रयास में, मानवाधिकार, श्रम कानून, बौद्धिक सम्पदा अधिकार, पेटेंट कानून, परमाणु अप्रसार संधि एवं पर्यावरण जैसे मुद्दे उठाकर विकासशील देशों को अपने प्रभाव क्षेत्र में लाने का प्रयास करता रहा है। अब अमेरिका विश्व जनमत के प्रति अधिक गम्भीर नहीं है। इसके उदाहरण हैं सी.टी.बी.टी. पर अमेरिकी सीनेट की नामंजूरी, ए.बी. एम. संधि से अलग होने की नोटिस एवं क्योटो समझौते को मानने से इंकार करना तथा अपनी नीति में इस बात की घोषणा करना कि उसको चुनौती देने वाली किसी भी शक्ति को अमेरिका सहन नहीं करेगा तथा अपनी सुरक्षा के लिए प्रथम कार्यवाही का अधिकार सुरक्षित रखेगा।

हाल ही में अफगानिस्तान युद्ध ने अमेरिका के प्रभुत्व व वर्चस्व का नवीन प्रमाण उपलब्ध किया है। यह भी उल्लेखनीय है कि इस एकधुवीय व्यवस्था में अमेरिकी वर्चस्व को चुनौती नहीं मिल पाई है। अमेरिका एक ओर इराक पर सैन्य कार्रवाई की संभावना तलाश रहा है तो दूसरी ओर उत्तरी कोरिया के पास परमाणु बम होने की सूचना के बाद भी उससे वार्ता पर जोर दे रहा है। जबकि सच्चाई यह है कि दोनों ही देशों के पास व्यापक नरसंहार वाले हथियार (Weapons of Mass

destruction) है। यह सब घटनाएँ एकध्रुवीय व्यवस्था का खुला प्रमाण हैं। जिसके अन्तर्गत अमेरिका अपनी नीतियों को दूसरों से मनवाने में सफल हो रहा है।

यूरोप का एकीकरण भी अपने में महत्वपूर्ण है। यूरोप अन्तर्राष्ट्रीय संबंध में एक प्रमुख शक्ति रहा है और यह शीत युद्ध का प्रमुख अखाड़ा था। अतः शीत युद्ध के अंत ने अमेरिका समर्थित पश्चिमी यूरोप व सोवियत समर्थित पूर्वी यूरोप के बीच की विभाजन रेखा को समाप्त किया तथा जर्मनी का एकीकरण भविष्य में यूरोप के एकीकृत होने का पहले ही संकेत दे चुका था। पूर्वी यूरोप में भी साम्यवादी पतन से लोकतंत्र आया, जिसने यूरोप के आर्थिक एकीकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया क्योंकि वैचारिक एकीकरण के अंर्तद्वंद का युग समाप्त हो चुका था।

यूरोपीय मुद्रा 'यूरो' का प्रचलन व प्रवर्तन आरंभ हो चुका है। शेष पहलुओं पर यूरोप के एकीकरण के प्रयास जारी हैं। आर्थिक रूप से एकीकृत यूरोप, भारत व अमेरिका दोनों के लिए लाभदायक है। भारत की खुली बाजार व्यवस्था अमेरिका व यूरोप दोनों के लिए एक बहुत बड़ा उपभोक्ता बाजार बनाती है। इन परिस्थितियों में यूरोप के एकीकरण का प्रभाव भारत अमेरिका द्विपक्षीय संबंध पर पड़ना स्वाभाविक है। विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जब यूरोप में अमेरिका का राजनीतिक, आर्थिक व सामरिक तीनों हित निहित है जबकि भारत का वहाँ पर राजनीतिक व आर्थिक हित निहित है।

खाडी युद्ध के समय अमेरिकी वर्चस्व स्पष्ट रूप से दिखा, इस समय आये विभिन्न वक्तव्यों से स्पष्ट है कि यह अमेरिकी की अपना प्रभुत्व स्थापित करने व तेल के आबाध प्रवाह को बनाए रखने की इच्छा से संचालित था। यद्यपि इराक ने अपनी सीमा का उल्लंघन कर क्षेत्रीय सुरक्षा व अखण्डता को ध्वस्त कर दिया था। इस संकट के दौरान भारत ने अमेरिकी विमानों को ईधन उपलब्ध कराया, किन्तु भारत आंतरिक परिस्थितियों के कारण इसे जारी न रख सका। अब यह तो स्पष्ट हो गया कि भारत अमेरिका से निकटता की अपेक्षा रखता है यद्यपि इस दौरान भारतीय विदेश नीति की अस्पष्टता जाहिर हुई किन्तु इस अवसर ने भारत को

अर्न्तमंथन के लिए प्रेरित किया जो भविष्य में भारत अमेरिका संबंध के लिए सकारात्मक साबित हुआ।

शीत युद्ध के अंत से अंतर्राष्ट्रीय शक्ति संतुलन में आए परिवर्तन ने भूमण्डलीकरण के क्रियान्वयन का रास्ता साफ किया। इस नवीन परिस्थिति ने भारत-अमेरिका को नए सिरे से पारस्परिक संबंध सुधारने का अवसर दिया। आर्थिक उदारवाद के इस युग में खुले व्यापार से विश्व की सामूहिक आवश्यकताएँ पूरी करने में महत्वपूर्ण योगदान की अपेक्षा है। भूमण्डलीकरण के युग में होने वाली प्रतिस्पर्द्धा के कारण विकासशील देशों की स्पर्द्धाशक्ति बढ़ेगी किन्तु कुछ मुद्दों पर वैमत्य, भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया धीमी कर रहा है, यथा- पेटेंट कानून, बौद्धिक संपदा अधिकार, श्रम कानून और पर्यावरण आदि।

भारत अमेरिका द्विपक्षीय संबंध पर भी इन मुद्दों का व्यापक प्रभाव है। भूमण्डलीकरण के युग में अमेरिका के लिए भारत की भूमिका महत्वपूर्ण हुई क्योंकि भारत अभी भी बड़े उपभोक्ता बाजार के रूप में विकसित होने के लिए बचा है। अतः अमेरिका व भारत के पारस्परिक आर्थिक हित भूमण्डलीकरण के दौर में अपार संभावनाएँ उत्पन्न करेंगे क्योंकि आज की दुनिया में आर्थिक कारक महत्वपूर्ण हो गये हैं। भारत के लिए आवश्यक हैं कि वह अपनी नीति निर्माण व क्रियान्वयन मे सजग रहे क्योंकि भूमण्डलीकरण के दौर में मैक्सिको, अर्जेन्टीना, दक्षिण कोरिया, मलेशिया, जैसे देश भयंकर आर्थिक संकट से ग्रस्त हो चुके हैं।

भारत व अमेरिका के पारस्परिक संबंध, अमेरिका की 1990 के बाद परिवर्तित दक्षिण एशिया नीति से सकारात्मक रूप से प्रभावित हुए। अतीत में यह नीति उतार-चढ़ाव व एक पक्षीय रुख का शिकार हुई थी। शीत युद्ध के अन्त के बाद अमेरिका की दक्षिण एशिया नीति में भारत की प्रमुखता बढ़ी परन्तु यह नीति अभी अमेरिका की विदेश नीति में अन्य क्षेत्रों के महत्व के सन्दर्भ में प्रमुखता न प्राप्त कर सकी। विभिन्न अवसर पर आए बयानों ने भारत के महत्व को उजागर किया परन्तु साथ ही साथ तनाव के अनेक बिन्दुओं को उभारा। राष्ट्रपति क्लिंटन

के द्वितीय कार्यकाल से दक्षिण एशिया का महत्व बढा और इसमें भारत को प्रमुखता मिलनी शुरू हुई।

क्लिंटन की भारत यात्रा व कारगिल पर अमेरिका का समर्थन, दक्षिण एशिया नीति में परिवर्तन का प्रमाण है। अमेरिका की दक्षिण एशिया नीति में परिवर्तन कई कारणों से हुआ। जिसमें से प्रमुख थे- अफगानिस्तान से सोवियत संघ की वापसी, शीत युद्ध का अंत, पाकिस्तान का सामरिक महत्व कम होना, भारत का विशाल बाजार और भविष्य के सामरिक हितों के संवर्द्धन में भारत का ज्यादा महत्वपूर्ण होना आदि। वर्तमान में अफगानिस्तान प्रकरण के कारण अमेरिका की दक्षिण एशिया नीति मुख्यतः आतंकवाद विरोधी बन गई है।

इन सभी बिन्दुओं पर विचार करने से यह बात स्पष्ट है कि इन घटनाओं की भारत-अमेरिका द्विपक्षीय संबंध को एक नई दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका है। अतः सन् 1990 के उपरांत का कालखंड ऐतिहासिक व मौलिक परिवर्तन लाने वाला साबित हुआ है।

उपरोक्त परिवर्तनों ने शीत युद्ध के बाद भारत व अमेरिका के संबंध को प्रभावित करने वाले मूल कारकों को प्रभावित किया है। जिससे दोनों देशों के पूर्वाग्रह में कमी आई है। इन परिवर्तनों के आलोक में आर्थिक, राजनीतिक व सामरिक पक्षें का विश्लेषण आवश्यक है।

अन्तर्राष्ट्रीय संबंध के दो तत्व महत्वपूर्ण हैं। इसमें प्रथम है संघर्ष व विवाद तथा दूसरा है परिवर्तन। भारत व अमेरिका के संबंध शीत युद्ध काल व इसके उपरान्त इन तत्वों से बहुत प्रभावित रहे हैं। पूर्व के संघर्ष व विवाद के तत्व अब महत्वपूर्ण नहीं रह गए हैं और दोनों देशों की नीतियों में परिवर्तन दिख रहा है।

भारत व अमेरिका संबंध के आर्थिक पक्ष के सन्दर्भ में यह तथ्य प्रकाश में आता है कि शीत युद्ध के दौरान भारत व अमेरिका के संबंध दाता व ग्राही के रहे। अमेरिका की आर्थिक सहायता राजनीतिक मतभेदों से प्रभावित हुई। 1950 व 1960 के दशक में भारत को मिली खाद्य सहायता का अनुभव भारत के लिए अच्छा न

था। यहॉ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि विभिन्न मुद्दों पर मतभेदों के बावजूद भारत को सबसे ज्यादा विदेशी सहायता अमेरिका से ही मिली तथा वह प्रमुख व्यापार सहयोगी बना रहा। इस दौरान उतार-चढ़ाव का दौर चलता रहा। अमेरिका की आर्थिक नीति उसके विदेश नीति का औजार रही है, अतः उसका प्रभाव भारत पर भी पडा।

1980 के दशक के मध्य से आर्थिक क्षेत्र में भी सहयोग बढा तथा सकारात्मक विकास हुआ। इस दौरान भारत के आयात व निर्यात की संरचना में परिवर्तन आया परन्तु दाता-ग्राही संबंध के व्यवसायिक सहयोगी के रूप में बदलने की शुरुआत 1990 के बाद आए उदारीकरण के दौर से होती है।

शीत युद्ध के अंत के बाद क्लिंटन प्रशासन के प्रथम कार्यकाल में राजनीतिक व सामरिक दृष्टि से भले ही उतनी निकटता न आई हो परन्तु आर्थिक क्षेत्र में परिवर्तन व विकास स्पष्ट रूप से दिखा। इस समय की प्रधानमन्त्री नरसिंम्हा राव की आर्थिक कूटनीति सफल रही। अमेरिकी प्रशासन व व्यापारिक समुदाय ने भारत के आर्थिक सुधारों व उसके विशाल बाजार का संज्ञान लिया तथा भारत में निवेश काफी बढ़ा।

इस समय व्यवसायिक संबंध की स्थापना, भारत-अमेरिका व्यापारिक परिषद, भारत ह्रित समूह, भारत-अमेरिका वित्तीय व आर्थिक फोरम की स्थापना भारत व अमेरिका के बीच आर्थिक संबंध को बढ़ाने में महत्वपूर्ण हैं। भारत व अमेरिका अब आर्थिक वार्ताओं को विस्तार देने व इसमें गति लाने के प्रति एकमत हैं। 1990 के बाद से यदि हम भारत व अमेरिका के आर्थिक संबंध पर नज़र डालें व उसका विश्लेषण करें तो हमें मतभेद के अनेक बिन्दु मिलते हैं। यह मतभेद निम्न क्षेत्रों में पाए गए-

- 1998 के भारतीय परमाणु परीक्षण के बाद अमेरिकी प्रतिबंध
- भारतीय कंपनियों पर अमेरिकी आयात नियंत्रण
- बौद्धिक सम्पदा अधिकार

- प्राथमिकता की आम व्यवस्था (Generalised system of preferences, G.S.P.)
- टेक्सटाइल व कृषि व्यापार
- भारतीय उत्पादों पर एन्टीडम्पिंग ड्यूटी व काउण्टरवेलिंग ड्यूटी
- बाइर्ड संशोधन (Byrd Amendment)
- भुगतान संतुलन
- अमेरिका में भारतीय श्रिम्प (Shrimp) का निर्यात
- व्यापार के साथ पर्यावरण मुद्दों को जोड़ना और विश्व व्यापार संगठन में मतभेद।

उपरोक्त मतभेदों के बावजूद भारत व अमेरिका के आर्थिक संबंध की दिशा समझने में विभिन्न आंकड़े महत्वपूर्ण हैं। यदि हम तालिका 2.1 का विश्लेषण करें तो पाएंगे कि भारतीय निर्यात विश्व निर्यात के परिप्रेक्ष्य में बहुत कम है और यह अभी भी विश्व निर्यात के 1% से कम है। अमेरिकी आयात में भी भारतीय हिस्सेदारी 1% से कम है। अतः अभी व्यापार में विस्तार की काफी सम्भावनाएँ हैं।

तालिका 2.2 में भारत में उदारीकरण के पूर्व की भारतीय निर्यात की स्थिति है, जिसके अध्ययन से पता लगता है कि इस समय भी अमेरिका को भारतीय निर्यात अन्य देशों को भारतीय निर्यात की अपेक्षा ज्यादा था। इसी प्रकार तालिका 2.3 में भारत में उदारीकरण के बाद प्रमुख व्यापारिक सहयोगियों के साथ भारतीय निर्यात का विवरण है। इससे भी यह तथ्य प्रकाश में आता है भारत का अमेरिका को निर्यात उत्तरोत्तर बढ़ता रहा है। 1997 में 6801.23 मिलियन डालर था, 1998-99 में यह 7199.64 मिलियन डालर था, 1999-2000 में यह 8533.88 मिलियन डालर था, जबकि 2000-01 में यह बढ़कर 9277.02 मिलियन डालर हो गया। 2001-02 के पहली छमाही में यह 4164.63 डालर तक चढ़ चुका है। उल्लेखनीय है कि भारत के अन्य व्यापारिक सहयोगियों जैसे यू.के., जापान, जर्मनी,

रूस, फ्रांस, इटली, यू.ए.ई., हाँगकाँग व बेल्जियम को भारत के निर्यात की तुलना में अमेरिका को निर्यात कई गुना अधिक है।

तालिका 2.4 भी इसी तथ्य को प्रकाश में लाती है कि अमेरिका को भारतीय निर्यात का प्रतिशत सबसे अधिक है। अतः यह एक प्रामाणिक तथ्य है कि भारतीय निर्यात में अमेरिका अपनी प्रमुखता बनाए हुए है। अभी भी कुछ विडंबनाएं जारी हैं, उदाहरण के लिए आज के भारतीय सॉफ्टवेयर उद्योग की वृद्धि दर 50 प्रतिशत वार्षिक है जबकि विश्व की औसत वृद्धि दर 12 प्रतिशत है परन्तु विश्व बाजार में भारत की भागीदारी 0.5 प्रतिशत मात्र है। चूँकि अमेरिका इसके प्रमुख आयातकों में से एक है अतः इस क्षेत्र में निर्यात वृद्धि की पर्याप्त संभावनाएं हैं।

इसी प्रकार भारत के प्रमुख व्यापारिक सहयोगियों के साथ भारतीय आयात का अध्ययन करने पर इसमें भी अमेरिका की महत्वपूर्ण स्थिति सामने आती है। तालिका 2.5 भारत में उदारीकरण के पूर्व प्रमुख देशों से भारतीय आयात को प्रदर्शित करता है, इसमें यूरोपीय यूनियन को छोड़कर अमेरिका की ही अग्रता रही है। तालिका 2.6 उदारीकरण के बाद की स्थिति दिखाती है। यदि हम तालिका 2.7 में भारतीय आयात का प्रतिशत प्रमुख व्यापारिक सहयोगियों के साथ देखें तो यह भी भारतीय आयात में अमेरिका की प्रमुखता को सामने लाती है।

इसी प्रकार तालिका 2.8 में अमेरिकी सेन्सस् ब्यूरो के आंकड़े यह तथ्य संज्ञान में लाते हैं कि भारत-अमेरिका व्यापार में व्यापार संतुलन भारत के पक्ष में रहा है अर्थात भारत द्वारा अमेरिका को किया गया निर्यात, भारत द्वारा अमेरिका से किए गए आयात की तुलना में अधिक है। इस पर भारत व अमेरिका के बीच मतभेद उभरा था तथा अमेरिका ने भारत से आयात पर मात्रात्मक प्रतिबन्ध को समाप्त करने के लिए दबाव डाला था। अतः अब भारत ने ज्यादातर चीजों पर से यह प्रतिबंध समाप्त कर दिया है।

भारत व अमेरिका के बीच व्यापार की स्थिति को देखने पर यह तथ्य सामने आता है कि 2001 में अमेरिका को आयात में भारत का स्थान 22वां, निर्यात में

भारत का स्थान 28वां तथा व्यापार में भारत का स्थान 17वां है। अतः अभी द्विपक्षीय व्यापार में वृद्धि की पर्याप्त संभावनाएँ हैं।

इसी प्रकार भारत में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के मामले में तालिका 2.9 व 2.10 के आंकडे महत्वपूर्ण हैं। इनके अनुसार भारत में सबसे ज्यादा निवेश अमेरिका का है तथा अमेरिका की भागीदारी (यूरो इशु व एन.आर.आई. निवेश छोड़कर) करीब 20% की रही है।

पोर्टफोलियो निवेश के मामले में भी अमेरिका की स्थिति अग्रणी बनी हुई है। सेबी (S.E.B.I.) में पंजीकृत 538 विदेशी संस्थागत निवेशकों (FIIs) में से 220 संयुक्त राज्य अमेरिका से थे। 5 फरवरी 2001 तक भारतीय वित्तीय बाजार में विदेशी संस्थागत निवेशों के करीब 13 बिलियन डालर के निवेश में से 7 बिलियन डालर का निवेश अमेरिका का था। यह 1993 से विदेशी संस्थागत निवेश का करीब 47 प्रतिशत हैं।

भारत में निवेश करने में अमेरिका की अभिरूचि है परंतु अन्य देशों से तुलना करने पर यह अभी भी बहुत कम है। इसके लिए भारत की विभिन्न आधारभूत समस्याओं के साथ-साथ उच्च टैरिफ दर को भी प्रमुख कारण बताया गया है। तालिका 2.12 से स्पष्ट होता है कि अन्य विकासशील देशों और विशेषकर चीन में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की तुलना में भारत में निवेश बहुत कम है।

भारत ने निवेश की स्थिति सुधारने के प्रयास शूरु कर दिए हैं तथा दूसरी पीढ़ी के सुधार कार्यक्रमों को शुरु किया है। भारत ने विभिन्न क्षेत्रें में निवेश की सीमा को बढ़ाया है जो कि तालिका 2.13 से स्पष्ट है, इसके साथ ही साथ टैरिफ दर को भी कम किया है, परन्तु यह अभी भी अन्य देशों की तुलना अधिक है, जो कि तालिका 2.14 व 2.15 से स्पष्ट होती है। अभी भी भारत के दरों में अधिक होने, भ्रष्टाचार व व्यापारिक निर्णयों में बहुत अधिक सरकारी दखल को एक बाधा के रूप. में देखा जाता है। अतः भारत-अमेरिका आर्थिक संबंध अभी और अधिक

खुलेपन की मॉग कर रहे हैं, जिसमें द्वितीय पीढ़ी के सुधार कार्यक्रमों से संबल मिलेगा।

यदि हम भारत-अमेरिका के बीच सहयोग के विभिन्न क्षेत्रों की पहचान करें तो पाएंगे कि भारत में आर्थिक आधारभूत ढाँचा अभी और भी सुधरना आवश्यक है। यदि ढॉचागत सुधार अमेरिका के अनुरूप रहा तो विद्युत, परिवहन, सडके, संचार, और बंदरगाह आदि क्षेत्रों में सहयोग की अपार संभावना हैं। सॉफ्टवेयर व हार्डवेयर क्षेत्र में भी उज्जवल संभावनाएं हैं। सन् 1998-99 में भारत का सॉफ्टवेयर निर्यात 2. 6 बिलियन डालर था, 1999-2000 में 4 बिलियन डालर, व 2000-01 में यह 6.2 बिलियन डालर का था। यह लक्ष्य 2008 तक कुल 80 बिलियन डालर में 50 बिलियन डालर का है। अतः भविष्य में अमेरिका को इसके निर्यात की प्रमुख भूमिका रहेगी।

भारत-अमेरिका के बीच सहयोग के नए क्षेत्रों में ज्ञान पर आधारित अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण योगदान होगा। कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी के अलावा तकनीक से संबद्ध अन्य क्षेत्र भी हैं जिन पर जोर दिया जा सकता है। ये क्षेत्र मुख्यतः मेडिकल ट्रांसक्रिप्शन सेंटर, कॉल सेंटर, दूर संचार व इंटरनेट सेवा आदि है।

सहयोग का एक नया क्षेत्र मनोरंजन क्षेत्र भी हो सकता है। जिनमें फिल्म निर्माण प्रमुख है, भारत इसका सबसे बड़ा केन्द्र है। उल्लेखनीय हैं कि अमेरिका भी मनोरंजन सेवाओं का सबसे बड़ा निर्यातक देश है। साझा उद्यम की अनुपलब्धता के बावजूद 1998 में अमेरिका ने 12 बिलियन डालर की मनोरंजन सेवाओं का निर्यात किया। इसमें सहयोग के दो क्षेत्र हैं पहला भारत, अमेरिकी फिल्म उद्योग के लिए निर्माण का सस्ता आधार दे सकता है तथा दूसरा भारत अमेरिका को मनोरंजन सॉफ्टवेयर निर्यात कर सकता है।

सहयोग के नये क्षेत्र फार्मास्यूटिकल्स व बायोटेक्नोलॉजी में दोनों देश आगे बढ़ सकते हैं, क्योंकि इसमें अमेरिका की विशेषज्ञता व निवेश तथा भारत की जनशक्ति का लाभ मिल सकता है। इसी प्रकार सहयोग के अन्य क्षेत्र पर्यटन,

खनन, रिफायनरी, बीमा क्षेत्र, बैकिंग व वित्तीय क्षेत्र, निर्माण, विद्युत, विमान सेवा क्षेत्र व प्रसारण प्रमुख होंगे।

अमेरिका के मन में भारत के प्रति पूर्वाग्रह कम हुआ हैं। इस स्थिति में आर्थिक संबंधों के सकारात्मक विकास जारी रहने की स्थिति बनी रहनी चाहिए। आज के विश्व में अमेरिका, चीन, जापान, यूरोप व विभिन्न आर्थिक संगठन आपस में प्रतिद्वंदी हैं। इस परिस्थिति में बड़े उपभोक्ता बाजार की उपलब्धता भारत के पक्ष में संतुलन ला सकती है। अतः भारत अमेरिका द्विपक्षीय आर्थिक संबंध उत्तरोत्तर सुधरते रहने चाहिए।

भारत-अमेरिका द्विपक्षीय संबंध में राजनीतिक पक्ष बहुत महत्वपूर्ण है। दोनों देशों के संबंध शीत युद्ध काल में सार्वभौम सोवियत कारक से प्रभावित रहे। इसके अतिरिक्त पूर्व व वर्तमान में अन्य प्रभावी मुद्दे, गुट निरपेक्षता, कश्मीर समस्या, पाकिस्तान का प्रभाव, चीन का प्रभाव, आतंकवाद का प्रभाव व आणविक मुद्दे हैं।

भारत में गुटं निरपेक्ष नीति के संबंध में स्वतन्त्रता से पूर्व ही दृष्टिकोण विकसित होने लगा था। जो भारत के औपनिवेशिक अतीत से प्रभावित था। भारत इसके द्वारा अपने विकास के प्रवाह को आबाध रूप से जारी रखना चाहता था। इस गुट निरपेक्ष आन्दोलन द्वारा वह विशेषतः सैनिक असंलग्नता सुनिश्चित करना चाहता था किन्तु अमेरिका इसे अनैतिक व अदूरदर्शितापूर्ण विचारधारा मानता था तथा इस नीति का पालन करने वालों को वह सोवियत विस्तारवाद का प्रच्छन्न समर्थक मानता था। शीत युद्ध से ग्रस्त विश्व राजनीति असंलग्नता के उच्चादर्श को यथार्थ रूप में समझने को तैयार न थी। अमेरिका को विश्वास हो गया कि भारत, कम से कम, अमेरिका की सुरक्षा छतरी में नहीं जाना चाहेगा क्योंकि भारत ने 1971 में सोवयत मैत्री संधि पर भी हस्ताक्षर कर दिया था।

यदि हम आंदोलन का विश्लेषण करें तो यह तथ्य सामने आता है कि यह भारत के राष्ट्रीय हितों का पूर्ण संवर्द्धन करने में सहायक न हो सकी। इसका प्रमुख कारण एकजुटता में कमी तथा आपसी मतभेदों का होना था। अतः गुट निरपेक्ष

आंदोलन एक नैतिक संस्था ही बन पाया न कि कोई व्यावहारिक व बाध्यकारी संस्था क्योंकि यह मूलतः असैनिक गठबंधन था।

शीत युद्ध समाप्ति व सोवियत विघटन के उपरांत गुट निरपेक्षता की नीति अब अमेरिका की दृष्टि में किरकिरी नहीं रह गई है। उल्लेखनीय है कि गुट निरपेक्ष आंदोलन का उपयोग, आज भी आतंकवाद, मानवाधिकार, आणविक अप्रसार, निःशस्त्रीकरण, पर्यावरण प्रदूषण व नशीली दवाओं के अवैध व्यापार, सदस्य राष्ट्रों के पारस्परिक आर्थिक सहयोग जैसे मुद्दों पर हो सकता है। यद्यपि शीत युद्ध के अभाव में, गुट निरपेक्ष आंदोलन के महत्व में कमी आई और उसका सामरिक महत्व समाप्त हुआ किन्तु आर्थिक उदारवाद व विश्व व्यापार की नवीन व्यवस्था में, यह आन्दोलन आज भी विकासशील देशों की सामूहिक दृष्टि व्यक्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जबकि यह अमेरिका के लिए रोड़ा नहीं है तथा अमेरिकी सामरिक हित को कोई खतरा इस आंदोलन से नहीं है। अतः गुट निरपेक्षता की नीति बदली विश्व स्थिति में भारत-अमेरिका संबंध को क्षति नहीं पहुँचा पाएगी।

क़श्मीर मुद्दा एक ऐसा प्रकरण है जिसने भारत-अमेरिका के द्विपक्षीय संबंध पर आरम्भ से ही महत्वपूर्ण प्रभाव डाला है। कश्मीर की भौगोलिक व सामरिक स्थिति उसकी त्रासदी का मूल कारण बनी। कश्मीर समस्या के उत्पन्न होने के पहले ही शीत युद्ध का प्रादुर्भाव हो गया था। अतः संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्था का भी कश्मीर के प्रति निरपेक्ष भाव, सम्भव न था। कश्मीर मुद्दा भारत-अमेरिका संबंध का पहला द्विपक्षीय मुद्दा था। चूँकि भारत उस समय अमेरिका की सुरक्षा छतरी के नीचे आकर अपनी संप्रभुता से समझौता नहीं करना चाहता था। अतः पाकिस्तान का दक्षिण एशिया में मूल्यवान सहयोग प्राप्त करने के लिए अमेरिका ने पाकिस्तान को कश्मीर मुद्दे पर संयुक्त राष्ट्र संघ के मंच पर समर्थन दिया।

अमेरिका ने 1972 तक कश्मीर मुद्दे पर पाकिस्तान को समर्थन की ही नीति अपनाई। 1972 में भारत व पाकिस्तान के बीच हुए शिमला समझौते के बाद

अमेरिका में इस मुद्दे को इस समझौते के अन्तर्गत हल करने के विचार का विकास हुआ तथा शीत युद्ध के अंत के बाद शिमला समझौते ने संयुक्त राष्ट्र संघ के जनमत संग्रह प्रस्ताव पर अग्रता प्राप्त कर ली। इसकी अभिपुष्टि विभिन्न अवसरों पर आए वक्तव्यों से होती है।

अमेरिका की कश्मीर नीति अस्पष्टता लिए हुए रही है। शीत युद्ध के अंत के बाद भी विरोधाभासी बयानों ने उलछन पैदा की है। 1993 में राबिन रफेल ने कश्मीर के भारत में विलय की वैधानिकता पर प्रश्न चिन्ह लगाया।

अब कश्मीर मुद्दे को आणविक मुद्दे के प्रिज्म से देखा जा रहा है तथा अमेरिका दक्षिण एशिया में कश्मीर को संभावित आणविक युद्ध का कारण मानने लगा हैं। परिणामतः पाकिस्तान अब आणविक खतरे के नाम पर ब्लैकमेल कर रहा है। भारत का परमाणु कार्यक्रम जटिल सुरक्षा आवश्यकताओं से प्रेरित था जिसमें चीन की सैन्य चुनौती प्रमुख कारक थी, किन्तु पाकिस्तान के भी आणविक विस्फोट कर लेने से कश्मीर विवाद में एक नए युग का सूत्रपात हो गया है।

शीत युद्ध के उपरांत कश्मीर पर अमेरिका की नीति यह मानकर बनाई जाती है कि- 1. कश्मीर विवादित क्षेत्र है 2. इस समस्या का हल सभी पक्षों से वार्ता कर, शान्तिपूर्ण ढंग से निकाला जाए 3. दोनों पक्षों की स्वीकृति पर अमेरिका मदद को तैयार हैं।

1999 के कारगिल युद्ध के दौरान अमेरिका ने भारत द्वारा अपेक्षित रुख ही अपनाया तथा पाकिस्तान के दृष्टिकोण का समर्थन नहीं किया। 2000 में राष्ट्रपति क्लिंटन के दिल्ली दौरे में उन्होंने कहा कि मैं कश्मीर मुद्दे पर मध्यस्थता करने नहीं आया हूँ। अतः अमेरिका की कश्मीर नीति में बदलाव प्रदर्शित हुआ। जनमत संग्रह मुद्दे पर भी उन्होंने कहा कि परिस्थितियाँ एकदम बदल चुकी है और उन्होंने यहाँ तक वक्तव्य दिया कि उनका विश्वास है कि पाकिस्तान सरकार में ही ऐसे तत्व हैं जो कश्मीर में हिंसा में लिप्त हैं। अंततः उन्होंने कहा कि कश्मीर-समस्या का एक मात्र हल द्विपक्षीय वार्ता से ही संभव है।

अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश के काल में भी अमेरिका स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है कि कश्मीर में आतंकवाद 'सीमा पार' से निर्यातित तत्व है। अतः उसने पाकिस्तान के राष्ट्रपति मुशर्रफ से आतंकियों की नकेल कसने को कहा। इन तथ्यों के स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध है। अमेरिका ने पाक अधिकृत कश्मीर में आतंकवादी प्रशिक्षण केन्द्रों के अस्तित्व को स्वीकार किया तथा उन्हें बंद करने की मुशर्रफ को स्पष्ट हिदायत भी दी।

कुछ भी हो कश्मीर मसले पर आतंकवादियों व उसके समर्थक पाकिस्तान को कुछ खास हासिल नहीं हो सका है। अफगानिस्तान युद्ध समाप्त हो चुका है, अतः यह तर्क कि अफगानिस्तान के कारण अमेरिका पाकिस्तान के कुकृत्यों की ओर से आँख बंद रखेगा, गलत होगा। हाँ इस तथ्य का प्रभाव अवश्य है कि आतंकवाद के विरूद्ध छेड़े गए वैश्विक युद्ध में पाकिस्तान अपनी सामरिक स्थिति के कारण महत्वपूर्ण स्थान रखता है, किन्तु इससे भारत व अमेरिका में कश्मीर मुद्दे पर संबंध और खराब होने की संभावना कम है।

अमेरिका ने यह माना है कि कश्मीर की आजादी की लड़ाई आतंकवाद का रूप ले चुकी है। यह भारत की कूटनीतिक सफलता है। कश्मीर में हाल ही में हुए चुनाव में पाकिस्तान की तरफ से गड़बड़ी न होने का आश्वासन देकर अमेरिका ने इस क्षेत्र में शान्ति के गारंटर की भूमिका प्राप्त की है। कश्मीर को भारत व पाकिस्तान के बीच संतुलन स्थापित करने व दबाव बनाए रखने के लिए अमेरिका उपयोग कर सकता है परन्तु भारत के साथ उसके दूरगामी हितों को देखते हुए इसकी संभावना कम लगती है।

भारत व अमेरिका के संबंध शुरू से ही पाकिस्तानी कारक से प्रभावित रहे हैं। आरम्भ में अमेरिका द्वारा भारत से निकटता की इच्छा के फलीभूत न होने से स्वाभाविक रूप से अमेरिका के सहयोगी का स्थान पाकिस्तान को प्राप्त हो गया तथा उसने अपनी सामरिक स्थिति, भारत के प्रति जन्म-जात शत्रुता, साम्यवाद से

खतरे का प्रोपगैण्डा तथा भारत को भी संतुलित रखने की अमेरिकी नीति का जमकर फायदा उठाया।

पाकिस्तान बीच-बीच में अमेरिकी नीति में अपना महत्व कम होने के बावजूद 1950, 1960 व 1970 के दशक में विभिन्न कारणों से अमेरिका के लिए महत्वपूर्ण बनता रहा। शीत युद्ध के समय पाकिस्तान को अमेरिकी सहयोग भारत के साथ उसके संबंध में बाधक रहा। शीत युद्ध के उपरान्त पाकिस्तान का एक बार फिर सामरिक महत्व कम हुआ। इसका प्रमाण पाकिस्तान के प्रति अमेरिका की विभिन्न नीतियाँ हैं परन्तु अमेरिका द्वारा अफगानिस्तान में चलाए जा रहे अभियान व मध्य एशिया के सन्दर्भ में पाकिस्तान का महत्व एक बार फिर बढ़ गया है।

स्थिति का विश्लेषण करने पर इस तथ्य पर पहुँचा जा सकता है कि पाकिस्तान का महत्व तात्कालिक रूप से भले ही हो, अमेरिका के दूरगामी हितों के आलोक में भारत की प्रमुखता रहेगी। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए भी भारत व अमेरिका ने यह कहा है कि अब द्विपक्षीय संबंध में पाकिस्तानी कारक महत्वपूर्ण नहीं है।

अमेरिका की चीन के प्रति नीति भी बदलती रही है तथा इसका प्रभाव भारत के साथ उसके संबंध पर भी पड़ा है। आरंभ में भारत द्वारा चीन को दिया गया समर्थन अमेरिका के साथ उसके संबंध के बिगड़ने का कारण बना परन्तु 1962 के भारत-चीन युद्ध में उसने चीन के परिसीमन के लिए भारत को आंशिक सहायता दी। इसके बाद 1970 के दशक में चीन अमेरिका, पाकिस्तान व चीन का त्रिगुट भारत के लिए परेशानी का कारण बना।

शीत युद्ध के अंत के उपरान्त अमेरिका के राष्ट्रपति क्लिंटन ने चीन को एम. एफ. एन. (M.F.N.) दर्जा दिया तथा उसके साथ आर्थिक संबंध को महत्वपूर्ण माना। 1990 के बाद भी अमेरिका-भारत संबंध पर चीनी कारक कम से कम इस अर्थ में अवश्य प्रभावी रहा कि अमेरिका के लिए भारत के बजाय चीनी अर्थ-व्यवस्था कहीं अधिक लाभप्रद रही है। अतः उसने चीन द्वारा पाकिस्तान को विभिन्न अवसरों

पर नाभिकीय व मिसाइल तकनीक देने के सन्दर्भ में उदासीनता बरती। यद्यपि चीन की महाशक्ति बनने की महत्वाकांक्षा, अमेरिका के गले की हड्डी बन चुका है, अतः भारत व अमेरिका की पारस्परिक घनिष्टता बढ़ाने में चीन की चुनौती महत्वपूर्ण भूमिका प्रदर्शित कर सकती है। यह भी स्मरणीय है कि चीन विश्व व्यापार संगठन का भी .सदस्य बन चुका है। इसलिए वो विश्व के आर्थिक घटक में भी अमेरिका विरोधी नीति अपनाकर उसके लिए समस्या उत्पन्न कर सकता है।

वर्तमान समय में आतंकवाद ने अपना एक भयानक रूप धारण कर लिया है तथा द्विपक्षीय संबंध में इसका महत्व बहुत बढ़ गया है। 2001 में अमेरिकी विश्व व्यापार संगठन पर आतंकवादी हमले ने क्षण भर में ही अमेरिका को वो त्रासदी दिखा दी जिसे भारत एक दशक से कश्मीर में अनुभव कर रहा था। आतंकवाद के विरूद्ध अमेरिका ने मुहिम छेड़ी और अपने संकल्प के क्रियान्यवन में भारत को अभिन्न घटक माना।

आज का दक्षिण एशिया आतंकवादियों के आश्रय का स्थान बन चुका है। इस संदर्भ में भारत-अमेरिका सहयोग नितांत उपयोगी हो जाता है, क्योंकि भारत दक्षिण एशिया क्षेत्र का सबसे बड़ा राष्ट्र है तथा शक्ति संतुलन भारत के पक्ष में है। अमेरिका को अपने वैश्विक हित संरक्षण के लिए आतंकवाद से लड़ना है तो भारत को अपने को अखंण्ड रखने के लिए आतंकवाद के लड़ना आवश्यक है। इस परिस्थिति में आतंकवाद के विरूद्ध जारी संघर्ष में दोनों देश स्वाभाविक रूप से जुड़े हैं।

यहाँ पर यह महत्वपूर्ण है कि अमेरिका ने आतंकवाद को घरेलू व अन्तर्राष्ट्रीय दो रूपों में बाँट रखा है। उसकी नीतियों के अनुसार अमेरिका के नागरिकों व उसके हितों पर प्रहार की स्थिति में ही अमेरिका उसे अन्तर्राष्ट्रीय आतंकववाद मानकर कार्यवाही करता है। अपने हितों को देखते हुए ही वह आर्थिक, कूटनीतिक व सैन्य कारकों का प्रयोग करता है। कश्मीर के आतंकवाद को उसने घरेलू अशान्ति कहा तथा 1999 में ही उसने यहाँ की घटनाओं को आतंकवादी

घटनाओं की श्रेणी में रखा। पाकिस्तान व आतंकवादी संगठन अमेरिकी नीति को समझते हुए भारत में अमेरिकी हितों व नागरिकों को नुकसान पहुँचाने से बचकर अमेरिकी आक्रोश से बचते हैं।

अब आतंकवाद के व्यापक फैलाव को देखते हुए यह आवश्यक है कि अमेरिका आतंकवाद का विभेदीकरण समाप्त करे क्योंकि दूसरी जगह पर का आतंकवाद भी उतना ही खतरनाक है जितना अमेरिकी धरती या अमेरिकी हितों पर हुई आतंकवादी कार्यवाही। अतः आतंकवाद के सन्दर्भ में विकसित हो रही समझ, आतंकवाद उन्मूलन के क्षेत्र में दोनों देशों के सहयोग को बढ़ाएगी।

भारत व अमेरिका के बीच असहमति का एक क्षेत्र आणविक मुद्‌दा है। भारत शुरु से ही सार्वभौम निरस्त्रीकरण का हिमायती रहा है। चीन द्वारा नाभिकीय शक्ति से सम्पन्न होना व पाकिस्तान को भारत के परिसीमन के लिए नाभिकीय व मिसाइल तकनीक से युक्त कर देना तथा इस मामले में अमेरिकी अप्रसार नीति की मौन सहमति ने भारत को अपने परमाणु विकल्प को खुला रखने के लिए प्रेरित करती रही तथा उसने विभिन्न संधियों के भेद-भाव पूर्ण नियमों का विरोध करते हुए पूर्ण निरस्त्रीकरण का समर्थन किया।

अंततः अपने चारों तरफ बिगड़ती सामरिक स्थिति व सी.टी.बी.टी. पर हस्ताक्षर करने की सीमा के पास आने के दबाव में भारत ने 1998 का परमाणु परीक्षण कर अपने लिए न्यूनतम् परमाणु प्रतिरोध क्षमता की बात की। विभिन्न दौर की बातचीत खुद अमेरिका में सी.टी.बी.टी को मंजूरी न मिलने तथा एन.एम.डी. को जारी रखने की नीति के कारण अमेरिका भारत के न्यूनतम प्रतिरोध की मांग को स्वीकार करता दिख रहा है। भारत का नाभिकीय अप्रसार का रिकार्ड अच्छा है तथा वह अन्य संधियों जैसे एफ.एम.सी.टी आदि पर वार्ता के लिए तैयार भी है।

अतः यह कहा जा सकता है कि भारत-अमेरिका संबंध में 'आणविक मुद्‌दा' महत्वपूर्ण कारक तो है, लेकिन वह कोई खुला नकारात्मक प्रभाव नहीं डालेगा क्योंकि भारत द्वारा एन.एम.डी कार्यक्रम को सहमति देने के एवज में अमेरिका भारत

की सामरिक स्थिति को चीन के परिप्रेक्ष्य में देखते हुए न्यूनतम् प्रतिरोध क्षमता को अनौपचारिक रूप से स्वीकार करता है।

भारत व अमेरिका के बीच रक्षा व सामरिक संबंध भी एक बहुत ही महत्वपूर्ण पक्ष है। रक्षा क्षेत्र में भारत व अमेरिका के बीच मतभेद व तनाव हमेशा बना रहा। शीत युद्ध के अंत के पूर्व तक कोई बहुत उल्लेखनीय तथ्य इस सन्दर्भ में सामने नहीं आता है। भारत को रक्षा व सैन्य क्षेत्र में अमेरिका से अपेक्षित सहयोग न मिलने से इस क्षेत्र में उसका झुकाव सोवियत संघ की ओर हुआ।

शीत युद्ध के दौरान भारत को अमेरिका से रक्षा व तकनीक के न मिलने के तीन मुख्य कारण रहे- (i) अमेरिका व पाकिस्तान में सहयोग (ii) भारत से सोवियत संघ की मित्रता के कारण तकनीक के साम्यवादी खेमें में पहुँचने का डर (iii) दोहरे प्रयोग वाली तकनीक के भारत के नाभिकीय कार्यक्रम में प्रयुक्त होने का डर।

यद्यपि 1984 के बाद से मेमोरेण्ड ऑफ एण्डरस्टैंडिंग (MOU) और कमोडिटी कंट्रोल एग्रीमेंट का सकारात्मक प्रभाव पडा परन्तु भारत द्वारा जनरल सिक्योरिटी ऑफ मिलिट्री इनफोरमेशन एग्रीमेंट (GSOMIA) पर हस्ताक्षर न करने से मतभेद रहा। शीत युद्ध के अंत के बाद सैन्य सहयोग को बढ़ाने की दिशा में 'किकलाइटर प्रपोजल' 'लिंडर्स्टोम रिपोर्ट' व 'एग्रीड मिनट्स ऑफ डिफेंस रिलेशन बिटविन दी यूनाइटेड स्टेट्स एण्ड इण्डिया' का महत्वपूर्ण योगदान है।

उपरोक्त प्रयासों के कारण ही 'एक्सक्यूटिव स्टियरिंग ग्रुप (ESG), डिफेंस पालिसी ग्रुप (DPG), ज्वाइंट टेक्निकल ग्रुप (JTG) और ज्वांट स्टियरिंग कमेटी (JSC) की स्थापना हुई। जो भारत व अमेरिका के सैन्य सहयोग के क्षेत्र में नए अध्याय का सृजन कर रहे हैं। भारत व अमेरिका के बीच हो रहे सैन्य अभ्यास, विभिन्न स्तरों पर चलने वाली वार्ताओं, भारत की सैन्य सहायता बढ़ाने और इजरायल से शस्त्रास्त्र खरीद पर आपत्ति में कमी, द्विपक्षीय संबंध में सहयोग के क्षेत्र के फैलाव का प्रतीक हैं।

भारत व अमेरिका ने सहयोग के क्षेत्रों की विवेचना के लिए 'रक्षा सहयोग समिति' की स्थापना की है। इसके साथ ही साथ भारत ने अमेरिकी आपत्ति को दूर करने के लिए 2001 में जनरल सिक्योरिटी ऑफ मिलिट्री इन्फॉरमेशन एग्रीमेंट (GSOMIA) में हस्ताक्षर कर दिए हैं। इसके बावजूद यह तथ्य उल्लेखनीय है कि अमेरिका भारत पर विभिन्न मुद्दों जैसे एम.टी.सी.आर., एन.पी.टी. आदि द्वारा दबाव डालता रहता है परन्तु जहाँ तक अमेरिकी नीति को समझा जा सकता है उसके अनुसार यह तथ्य प्रकाश में आता है कि अमेरिका अपने हितों के संवर्द्धन व सामरिक सहयोगी के रूप में किसी को मान्यता देने पर इन मुद्दों की अनदेखी कर देता है, इसका उदाहरण इज़राइल है। अतः इस बात की संभावना है कि इन मुद्दों के अस्तित्व में रहने के बाद भी शायद वह इन्हें भारत के परिप्रेक्ष्य में उतना जोर न दे क्योंकि भारत व अमेरिका के सामरिक हितों में बहुत से कारक साझा हैं।

भारत वह अमेरिका की सामरिक आवश्यकताओं का विश्लेषण करें तो हम पाएंगे कि शीत युद्ध के अंत के उपरान्त नए-नए समीकरणों का उदय हुआ तथा पुराने क्रियाशीलकर्ताओं की भूमिका व महत्व में परिवर्तन आया है। यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि अमेरिका व अन्य पश्चिमी देश भारत की सुरक्षा व सामरिक हित को पाकिस्तान के परिप्रेक्ष्य में देखते आए हैं अब आवश्यकता इस बात की है कि 'व्यवहारिक दृष्टिकोण' अपनाया जाए व भारत के सन्दर्भ में चीन की भूमिका को समझा जाए।

चीन भारत व अमेरिका दोनों के लिए चिन्ता का कारण है। चीन 1970 के दशक की शुरुआत से अमेरिका के सहयोगी के रूप में उभरा तथा 1970 तक उसने सहयोगी की भूमिका निभाई। इसके बाद शीत युद्ध के अंत से उसे अमेरिका का प्रतिद्वन्दी माना जाने लगा परन्तु क्लिंटन प्रशासन ने अपनी विदेश नीति में आर्थिक पक्ष को प्रमुखता दी तथा चीन को एक.एफ.एन. (M.F.N.) राज्य का दर्जा दिया। अब बुश प्रशासन के आने के बाद से चीन को पुनः सामरिक सहयोगी की जगह सामरिक प्रतिद्वन्दी के रूप में देखा जाने लगा है तथा इस समय सहयोग व परिसीमन की नीति चलाई जा रही है।

भारत के सन्दर्भ में चीन शुरु से ही खतरा रहा है तथा दोनों देशों में सीमा विवाद के चलते संबंध सामान्य नहीं है। इसका उल्लेख प्रधानमंत्री बाजपेयी द्वारा राष्ट्रपति बुश को भारत के परमाणु परीक्षण के बाद लिखे गए पत्र में भी है। चीन ने भारत के परिसीमन के लिए पाकिस्तान का खुलकर प्रयोग किया है तथा आज हालत यह है कि पाकिस्तान भी नाभिकीय व मिसाइल क्षमत्ता से युक्त है।

चीन ने भारत के चारों तरफ घेरा बना रखा है चाहे वह हिन्द महासागर हो जहॉ पर पाकिस्तान व म्यामांर में उसके नौसैनिक अड्डे हैं या पाकिस्तान नेपाल व म्यागांर से लगनेवाली भारत की भू-सीमा हो। चीन की बढ़ती सैन्य शक्ति व 1985 के बाद से अपनी मिलेट्री डॉक्ट्रिन में बदलाव करते हुए उसने 'सीमित युद्ध व क्षेत्रीय सीमा विवाद' के लिए तैयार रहने की बात की, जो भारत व चीन के अन्य पड़ोसियों के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

चीन की सैन्य शक्ति का प्रसार सभी के लिए चिन्ता का विषय है। इसका आकलन विभिन्न सैन्य विश्लेषकों ने किया तथा चीन के वास्तविक सैन्य बजट को आधिकारिक बजट का तीन से चार गुना बड़ा बताया, जो कि 10-20 प्रतिशत की दर से बढ रही है। इस सन्दर्भ में तालिका 4.2 व 4.3 का भी संज्ञान लिया जा सकता है जो कि चीन सैन्य खर्च को प्रदर्शित करती है।

चीन, भारत व अमेरिका दोनों की सुरक्षा के लिए खतरे का कारण बन सकता है। ताइवान, दक्षिण चीन सागर के द्वीप, कोरिया आदि चीन व अमेरिका के बीच टकराव का कारण बन सकते हैं। अतः भारत व अमेरिका की सामरिक जरूरतों के लिए आपसी सहयोग को विस्तार देने की आवश्यकता है।

भारत व अमेरिका के लिए एक और महत्वपूर्ण सामरिक महत्व का क्षेत्र मध्य एशिया का है। जो भारत व अमेरिका की ऊर्जा आवश्यकत्ताओं के लिए महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र की अशान्ति भारत के लिए विशेष रूप से कश्मीर के सन्दर्भ में खतरनाक है। इसके साथ ही साथ अमेरिका भी रूस, चीन, ईरान को ध्यान में रखते हुए यहॉ पर अपनी सामरिक स्थिति मजबूत करना चाहता है।

भारत को इस क्षेत्र में राजनीतिक, आर्थिक व कूटनीतिक संबंध को बढ़ाना चाहिए मगर शंघाई सहयोग संगठन (SOS) आदि में उसकी भागीदारी उसको सामरिक रूप से अमेरिका के सम्भावित प्रतिद्वन्दियों के साथ रखेगी जिसका प्रभाव भारत व अमेरिका के आपसी संबंधों पर पड़ सकता है। अतः भारत को सीधे तौर पर किसी गैर अमेरिकी सामरिक गठजोड़ से बचना चाहिए क्योंकि भारत के भी दूरगामी हित अमेरिका से ही जुड़े हैं।

भारत, चीन पर भरोसा नहीं कर सकता। वर्तमान में रूस की पूर्व की स्थिति नहीं है तथा वह भी चीन के ज्यादा करीब है। अतः भारत उसके साथ सामान्य संबंध की ही आशा रख सकता है किसी सामरिक दृष्टिकोण से वह भारत के लिए उतना लाभप्रद न होगा। अतः भारत को अमेरिका की प्रत्यक्ष उपस्थिति वाले क्षेत्रों में अपने को सामरिक रूप से शामिल करने से बचना चाहिए।

अफगानिस्तान भी अमेरिका के लिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। अफगानिस्तान से तालिबान को हटाने के बाद से अमेरिका की वहॉ प्रत्यक्ष उपस्थिति है। भारत की सुरक्षा के सन्दर्भ में भी अफगानिस्तान का महत्व है। आतंकवाद के सफाये, नशीले पदार्थो के व्यापार पर रोक व व्यापक नरसंहार वाले शस्त्रों के आतंकवादियों के हाथों में पहुॅचने से रोकने के सन्दर्भ में यह भारत व अमेरिका के बीच सामरिक सहयोग का महत्वपूर्ण क्षेत्र है।

अमेरिका की सुरक्षा व सामरिक आवश्यकताओं के सन्दर्भ में उसकी विदेश नीति महत्वपूर्ण है। शीत युद्ध के बाद अमेरिकी नीति में भी वैश्विक प्रतिबद्धता महत्वपूर्ण रही। इसके साथ-साथ क्षेत्रीय स्थिरता तथा दक्षिण एशिया के सन्दर्भ में नाभिकीय टकराव को टालना तथा कट्टरपंथी शक्तियों के शमन की नीति महत्वपूर्ण रही। नई शताब्दी में बुश प्रशासन आतंकवाद और अमेरिकी सैन्य प्रभुत्व व वैश्विक संबंधों की पुनर्सरचना कर रहा है। नई बुश नीति में कहा गया है कि अमेरिका किसी भी दूसरी सैन्य शक्ति की सर्वोच्चता को स्वीकार नहीं करेगा तथा अपनी सुरक्षा पर खतरे की आशंका में पहले आक्रमण का अधिकार सुरक्षित रखेगा।

यह नीति भारत के सन्दर्भ में इस दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है कि अब अमेरिका चीन के परिसीमन की नीति उपनाएगा क्योंकि उसे चीन से भविष्य में खतरा हो सकता है। इसके साथ ही साथ अमेरिका द्वारा आक्रामक सुरक्षात्मक नीति अपनाई जा रही है। जिसके तहत अमेरिकी सीनेट ने सी.टी.बी.टी. का अनुमोदन नहीं किया तथा बुश प्रशासन ने एन.एम.डी. कार्यक्रम को क्रियान्वित करने व ए.बी.एम. संधि से अलग होने की घोषणा की है। इसका प्रभाव यह हो सकता है कि भारत के नाभिकीय कार्यक्रम पर दबाव कम हो।

भविष्य के प्रति यह संभावना हो सकती है कि अमेरिका एशिया में संतुलनकर्ता के रूप में भारत की स्थिति का लाभ उठाए। जिससे दोनों में सहयोग और बढे। वर्तमान में तात्कालिक रूप से मध्य एशिया व आतंकवाद के सन्दर्भ में पाकिस्तान का महत्व बढ़ा है परन्तु दूरगामी दृष्टिकोण से भारत के महत्व को नकारा नहीं जा सकता।

भारत व अमेरिका के साझा हितों में हिन्द महासागर अति महत्वपूर्ण है। हिन्द महासागर खनिजों व ऊर्जा स्त्रोत का भण्डार है। अमेरिका व पश्चिमी देशों को ऊर्जा के संसाधनों की आवाजाही में इस महासागर की भूमिका महत्वपूर्ण है तथा इसका जल मार्ग 'पश्चिम' व 'जापान' के लिए जीवन रेखा है। शीत युद्ध के समय यह महासागर प्रतिस्पर्धा का केन्द्र रहा है।

शीत युद्ध के अंत के बाद चीन फारस की खाड़ी से दक्षिण चीन सागर तक मौजूदगी बनाकर हिन्द महासागर में अपनी भूमिका सुनिश्चित करना चाहता है। भारत के लिए भी यह महत्वपूर्ण है। अतः उसने भी अंडमान निकोबार द्वीप समूह में अपने तीनों सेनाओं की कमान स्थापित की है। भारत ने भी अपनी सामरिक जरूरतों को देखते हुए फारस की खाड़ी से मलक्का जलडमरूमध्य तक अपने हितों की बात की है।

खाड़ी युद्ध व उसके बाद अफगानिस्तान में चले आतंकवाद विरोधी कार्यवाही में हिन्द महासागर का महत्व सामने आया है। अतः अमेरिका इस क्षेत्र में अपनी

उपस्थिति को और मजबूती देने का प्रयास करेगा क्योंकि उसके लिए इसके जलमार्गो का उपलब्ध रहना अत्यन्त आवश्यक है। इस सन्दर्भ में हिन्द महासागर में भारत क़ी स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अतः यह क्षेत्र भी भारत व अमेरिका के साझा हितों के संवर्द्धन में सहायक होगा। भारत द्वारा अमेरिकी नौसेना को कुछ सुविधाएँ प्रदान की जा सकती हैं। जिसका अमेरिका अफगान युद्ध के समय भी आकांक्षी था।

यहाँ पर यह उल्लेखनीय है कि अमेरिका को अब भारत की सुरक्षा चिन्ताओं को पाकिस्तान के साथ-साथ चीन के परिप्रेक्ष्य में भी सोचना चाहिए। अतः यह कहा जा सकता है कि बहुत से क्षेत्रों व मुद्दों पर साझा हित व पाकिस्तान में बढ़ती उग्रपंथी शक्तियाँ, पाकिस्तान में बढ़ता अमेरिका विरोध तथा पाकिस्तानी परमाणु शस्त्र का आतंकवादियों के हाथ लगने का भय, भविष्य में भारत व अमेरिका को और अधिक सैन्य निकटता की ओर ले जा सकते हैं।

भारत-अमेरिका संबंध के विभिन्न पहलुओं को देखने के बाद यह कहा जा सकता है कि यह संबंध सुअवसरों व अभिरुचियों पर आधारित है। सुअवसर विभिन्न क्षेत्रों में पुनः आए हैं तथा इस समय अभिरुचियों में पूर्व की तरह का मतभेद नहीं है। अतः यह संबंध एक सकारात्मक दिशा की ओर जाने में सक्षम हैं।

इस विश्लेषण में एक तथ्य भारतीय दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है कि पाकिस्तान ने अमेरिका में लॉबिंग कर नीतियों को अपने पक्ष में मोड़ने में सफलता पाई, भारत ने भी इसको पहचाना तथा इस तरफ प्रयास किया तथा उसे भी सफलता मिली। आज के समय में नीति निर्माताओं व जन मानस को प्रभावित करने में मीडिया की प्रमुख भूमिका बनती जा रही है। अमेरिकी मीडिया में भारत को उतना महत्व नहीं दिया जाता भारत को इस दिशा में कार्य कर अपनी छवि को बेहतर ढंग से प्रस्तुत करना चाहिए। अब इस बात की भी संभावना है कि अमेरिका में स्थित भारतीय समुदाय आर्थिक व राजनीतिक रूप से अपनी स्थिति को मजबूत करता जा रहा है तथा वह अपनी इस स्थिति का लाभ भारत के सन्दर्भ में बनने वाली नीतियों को प्रभावित करने में कर सकेंगे।

सारांशतः यह कहा जा सकता है कि 1990 के उपरान्त भारत व अमेरिका के संबंध नई संभावनाओं को तलाश रहे हैं तथा इनके साझा हित इसे एक नई ऊँचाई तक ले जाने में सक्षम हैं। इस दौरान उभरे नए-नए समीकरणों व परिस्थितियों ने द्विपक्षीय संबंध को प्रभावित करने वाले कारकों में परिवर्तन किया है। किन्हीं भी दो राष्ट्रों के संबंध राष्ट्रीय हितों के परिप्रेक्ष्य में ही दृढ़ता प्राप्त करते हैं। इस सन्दर्भ में मतभेद के भी बिन्दु हो सकते हैं परन्तु दीर्घकालीन हितों को देखते हुए तात्कालिक हितों को ज्यादा महत्व नहीं दिया जाना चाहिए। अतः नवीन परिस्थितियों में भारत व अमेरिका के संबंध नए आयाम को प्राप्त करने में समर्थ है।

APPENDIX - 1

Transforming US-India Relations
by
Christina B. Rocca, US Assistant Secretary of State for South Asian Affairs

14 May , 2002

Statement:
"Before I begin my formal remarks, I would like, on behalf of my government, to condemn unequivocally the terrorist attack in Jammu this morning. It is just this type of barbarism that the war on terrorism is determined to stop. I express my sympathies to the families of the victims."

Speech:
As Prepared for Delivery

Thank you for those kind words, Bob. We in Washington know how fortunate we are to have you here as American Ambassador to India. You are doing a superb job and you personally have done so much to push this bilateral relationship forward.

Distinguished members of the Confederation of Indian Industry, Ladies and Gentlemen: Thank you for asking me to speak to this distinguished gathering. I am pleased to have this opportunity to talk to you about the transformation in relations between the United States and India. Our two democracies are working together more intensely than ever before to make the world freer, more peaceful, and more prosperous.

From the start of his Administration, President Bush has sought a global approach to US-India relations to engage India on the whole range of issues that currently confront the international community. No matter what the issue, whether it is counter-terrorism, national defense, global climate change, international commerce or preventing HIV/AIDS, the President has looked to India as a partner.

The most topical area of this partnership is in our military to military relations, and these offer an impressive illustration of the way in which India-US ties are moving from the discussion stage to active cooperation. Today, not far from Agra, Indian paratroopers and American special operations forces are participating in their largest-ever joint army and air exercise since India's independence. Although I love Agra, and fondly remember my first visit there, I certainly do not envy our soldiers and flight crews their first visit in this heat.

The specific goal of the exercise is to conduct joint parachute training and mutual familiarization with small arms. But the larger, long-term goal is much more ambitious, and is based on strategic, diplomatic and political cooperation as well as sound economic ties. Military to military cooperation, long a subject of discussion between us, is now producing tangible progress towards this objective. Indian and US military forces are now actively developing the capability to work

together effectively. Such cooperative activity between military organizations is a normal aspect of relations between friendly countries and I anticipate more such exercises to follow Agra.

Even though this joint exercise is an important milepost, it is only the latest indicator of the impressive growth in military cooperation between India and the United States. The US and Indian navies have also conducted exercises and US Navy ships have made seven port visits in the past few months.

The Defense Policy Group was revived in December and will hold its second meeting next week, on May 21. It provides the framework for planning and coordination for our military relationship. Within that framework, other bodies, such as the Executive Steering Groups for the Army, Navy and Air Force and functional working groups have discussed technological and research and development cooperation, sales and licensing issues and peacekeeping cooperation.

The defense supply relationship between Indian and America has been notable in that it involves the private sector as well as government. I was pleased to see that CII, our National Defense Industrial Association and the US India Business Council co-hosted a day of important interaction between our defense industries. Furthermore, our armed services are determining areas of mutual interest in basic research for military purposes and identification of areas for joint work in future defense system development.

In late April, we capped all of this activity with the visit of Assistant Secretary of State Lincoln Bloomfield. He was in New Delhi to begin a formal political military dialogue that, along with the visit to Washington by India's Chief of the Army Staff, will help both our countries better appreciate each other's national goals and military strategies as well as coordinate our defense trade.

The growing military relationship is one important element of the far broader process of transformation occurring between our two countries in the areas of strategic and technical cooperation. But there are others. The communiqué issued at the end of the November Summit meetings between President Bush and Prime Minister Vajpayee in Washington commits both countries to expanding the scope of our defense-related ties, strengthening our collaboration regarding President Bush's new strategic framework, resuming cooperation on civilian nuclear safety and in space science. The Administration remains committed to these goals, and will continue to seek creative and productive ways to implement them. Nonproliferation remains an important item on our bilateral agenda, which we are addressing through cooperation and mutual understanding. One area in which there is great scope for cooperation is on export controls. We have already had a series of expert-level discussions and conducted training for Indian customs officials. This cooperation should expand over time, encompassing dialogue, information sharing, training and other assistance. We are confident that the Indian government shares our concerns about preventing the spread of sensitive technologies since the diffusion of Weapons of Mass Destruction (WMD) and missiles pose a serious threat to the security of both our countries.

India and the US are also working together to stimulate bilateral high

technology commerce and are discussing several ideas toward that end. We have agreed to the resumption of three nuclear safety-related projects. The chairman of India's Space Research Organization has met in the US with American counterparts to expand civilian space cooperation on areas such as weather, migration and communications.

Over the past several months, the US and India have built a vibrant relationship in the war against terrorism. This began immediately after the September 11 attacks on the United States, when Prime Minister Vajpayee and other Indian leaders offered their help ungrudgingly and generously. This offer was a splendid act of solidarity with the American people at a time of urgent need.

South Asia is a key front in the global war on terrorism. And India has been a vital ally in the campaign to destroy the al-Qaida organization, extract it from its safe havens and end its predations against the Afghan people. Dismantling the structure of extremism and terror must go hand in hand with addressing and eliminating its root causes. Achieving these goals in South Asia has involved diplomatic efforts on many fronts:

The diplomatic cooperation between India and America in pursuit of these goals has been unprecedented in our relationship. We have worked together in the UN to build support for UNSCR 1373 and the India-sponsored Comprehensive Convention Against International Terrorism. Our cooperation has contributed to the arrest of hundreds of terrorists around the world. The United States and India have moved in unison to strangle the financial assets of terrorists and well over 100 nations have issued blocking orders and frozen assets used to finance their attacks.

Moving from diplomatic efforts against terrorism to the more practical aspects of our struggle, I am pleased that US-India counter-terrorism cooperation is rapidly maturing. The US-India Joint Working Group on Counter terrorism predates 9/11 and continues to expand and deepen. Convening for the fourth time in January, the US and India broke new ground across the full range of counter-terrorist efforts including intelligence sharing, training, terrorism finance and money laundering, border security, and cyber-terrorism.

On broader law enforcement issues, we also are steadily increasing the number of our joint activities. We signed a new bilateral treaty last October providing for cooperation and mutual legal assistance, that makes it easier for American and Indian law enforcement agencies to tackle international crime.

As the two top centers of development of computer software in the world, India and the US are natural partners in another front of the war against terrorism -- cyber terrorism. Just over two weeks ago our two countries held their first formal consultations on how to combat new emerging threats to our critical national infrastructures. The talks involved representatives of government agencies as well as academic experts and marked the start of a regular interaction on cyber security. Our professional-level dialogue, conducted, from here on, through the new US-India Cyber-Security Forum, will be continuous as we work to protect both Indian

and American societies from the threats of cyber attack. We will hold the next JWG in Washington in July.

The success of the Bonn Conference that established an interim government in Afghanistan owes much to US-Indian cooperation. Working together, American and Indian negotiators convinced Afghan participants to reach agreement on the Bonn Accords. But Bonn was just the beginning. Afghanistan will require constant and intense international attention and support in order to overcome the legacy of more than 20 years of violence.

Accomplishing this task will be exceedingly difficult for the Afghans, even with outside help. India-US collaboration will play a crucial role in meeting the challenge of restoring stability in Afghanistan. India, like the United States, has been a major contributor of relief and reconstruction assistance for that blighted country.

An even greater challenge, and one I anticipate with real optimism, is to repeat our mutually supportive diplomatic efforts for all of South Asia, the adjoining regions of Southeast Asia, Central Asia and the Middle East, and the world as a whole, including close cooperation within the UN system. The United States and India remain co-chairs of the Community of Democracies and will continue to work together to promote democracy throughout the world. Our collaboration can only make the world a safer and more just place.

The pace of our engagement on the economic front has also picked up. Since January, we've seen visits by senior USG officials from the Departments of Treasury, Energy and Commerce and from the Environmental Protection Agency. During the same period, Ministers Sinha and Mahajan and other cabinet rank officers of the Indian Government have been in the United States for productive discussions with their counterparts. We look forward to enhancing these kinds of interactions under the framework of the US-India Economic Dialogue, which the President and Prime Minister reinvigorated last November. With the active participation of our respective private sectors, the Economic Dialogue can and will play an important role in helping us realize the enormous potential of our economic relationship.

Our partnership extends from the macro level of politics, economics and diplomacy to the community level where HIV/AIDS has become a growing problem. Here, the US Agency for International Development (USAID) supports two major bilateral projects and is planning to incorporate HIV prevention into other activities.

It is clear that our two countries have embarked on a new and more productive course in bilateral relations. This is a change that supports the interests of us both. The United States is committed to move rapidly and decisively toward even greater cooperation in this partnership of equals. I believe Indians are also excited about the transformation of our relationship as it demonstrates your country's assumption of ever-greater responsibilities as a major power in the region and in the global arena.

The US-India relationship is entering an exciting phase, a period of transformation which, if properly managed, can bring great benefits to both our countries. This will require constant attention and hard work. I think India and the United States have demonstrated their willingness to do this hard work, to overcome difficulties and keep our eyes on the benefits for us both. I am confident that together we will succeed.

Thank you.

APPENDIX - 2

Statement issued by Shri L.K. Advani, Home Minister of India at a press conference

Embassy of India
Washington DC
January 9, 2002

I have come to the United States on an official visit for three purposes: to express solidarity with the government and the people of the United States in their ongoing struggle against terrorism; to thank them for their understanding and support for India's struggle against the same menace emanating from the same source; and to discuss, in the aftermath of September 11 and December 13, when terrorists mounted an attack on our Parliament, ways of giving effect to our common resolve to defeat terrorism decisively and speedily.

I pay tribute to the patriotism and unity of the American people and the unflinching determination of their government in the face of the worst ever terrorist attack in history that they, and the entire horrified humanity, witnessed on September 11. The resolute war on terrorism in Afghanistan has already achieved significant successes. India fully supports this war because of our principled belief that freedom itself, and not the United States alone, was attacked on that day.

The strong leadership provided by President Bush in this ongoing war against international terrorism has been appreciated in India. We also acknowledge the American leadership's appreciation of, and practical support to, India's own struggle against the menace of terrorism. India was gratified by the strong US condemnation of the terrorist attack on Indian Parliament, which we believe is as grave a challenge to India's sovereignty just as the terrorist attacks on the Pentagon and WTC Towers were to USA's.

India and USA: Twin Towers of Democracy

I wish to emphasise that India and the United States have a unique role in the struggle against terrorism. We are both victims of terrorism. We are both actively fighting against it, albeit in our own ways with a steadily growing degree of cooperation.

The common threat that we face, and the coordinated struggle that we have had to wage against this common menace, have underscored the need for a strong and longer-term partnership between us, anchored in our shared values and driven by the congruency of our common interests.

After all, it is instructive to know why international terrorism has made India and the United States its principal targets. I think that this is because our two countries cherish and celebrate all that. the terrorists abhor and consider impediments to the realization of their own strategic objective. We both believe in pluralism and secularism, which is rooted in respect for all faiths. We are both open societies, in which freedom of the press, judiciary and enterprise are constitutionally guaranteed.

Above all, we are both democracies – indeed, I would like to describe India and America as "the Twin Towers of Democracy". The terrorists may have destroyed the steel and concrete structures of the WTC, but they can never harm the structures and the spirit of our two democracies.

More and more parts of the world are embracing these universal values. Indeed, these values have come to be recognized as categorical imperatives for securing development and peace -- both regional and global. The ideology of international terrorism, as propounded by Al Qaeda, Taliban and other terrorist groups like Lashkar-e-Toyba and Jaish-e-Mohammed born in India's neighbourhood, is feeling threatened by the steady advancement of these values. Which is why, its attacks have become more audacious and diabolical in recent times. The happenings of September 11 and December 13 have demonstrated its willingness and ability to strike any vital installation in any country at any time.

I would like to recall here the prescient words of our Prime Minister, Shri Atal Bihari Vajpayee, who had pointed out in his address to the US Congress in September 2000, that "distance offers no immunity against international terrorism". During his visit to the United States in November last, Shri Vajpayee also stated that the terrible tragedy of September 11 "has created the opportunity to fashion a determined global response to terrorism in all its forms and manifestations, wherever it exists and under whatever name." December 13 has increased the need and urgency for such a "determined global response" several fold.

Pakistan's double standards in dealing with terrorism

I would like to take this opportunity to focus on Pakistan's fundamental, deep and continuing role in sustaining international terrorism. As everyone knows, Taliban was created and propped up by Pakistan's ruling establishment. It had done so principally to help Pakistan as a "force multiplier" in its proxy war against India, conducted through acts of terrorism not only in the Indian State of Jammu & Kashmir but also in other parts of our country. Over the past two decades, terrorism, sponsored and directed from across the border by Pakistan's Inter-Services Intelligence (ISI) as a matter of that country's state policy, has claimed nearly 60,000 of our innocent civilians and security personnel – in Punjab, in Jammu & Kashmir, and in other parts of India.

Therefore, Indians, as also many people around the world, were bemused when Pakistan effected a sudden U-turn in its policy towards Taliban and decided to join the US-led international coalition against terror in Afghanistan. We cannot understand how Pakistan can now claim to be opposed to terrorism on its west and continue to rationalize, justify and patronize it on its east. In a logic that flies in the face of every norm of civilized international behavior, President of Pakistan, General Pervez Musharraf, again indicated at the SAARC summit in Kathmandu last week that the terrorist acts in Jammu & Kashmir – and by corollary, elsewhere in India -- are a part of a legitimate "freedom struggle" in Kashmir, which his government would continue to support.

I would like our friends in USA and elsewhere in the world to ponder: "What type of freedom fighters are these who set off serial bomb blasts in Mumbai, hijack a civilian airliner and take it, unsurprisingly, to Taliban-controlled Kandahar, routinely conduct mass killings of innocent civilians, carry out a terrorist attack on

the Jammu & Kashmir Legislative Assembly and strike at India's Parliament, the heart of the world's largest democracy?"

We fully agree with President Bush's exhortation that "there cannot be good terrorists and bad terrorists". Obviously, President Musharraf seems to think otherwise. He would like the world to believe that there are "good terrorists" at work in furtherance of Pakistan's stand on Kashmir.

Our resolve and our objective

December 13 has steeled India's resolve to take our battle against Pak-sponsored cross-border terrorism to the finish, guided by the objective of bringing it to a decisive end. India lost her former Prime Minister, Indira Gandhi, to terrorism fomented in Punjab. It took us over a decade to overcome terrorism in Punjab. But vanquish it, we did. We are similarly determined to stamp out terrorism in Jammu & Kashmir and in the rest of India.

We hope that our diplomatic and political initiatives, coupled with the concerns expressed by the international community, will lead Pakistan to end its cross-border terrorism against India.

In this context, we highly appreciate what President Bush and his administration have done so far to make Pakistan begin to comprehensively abandon its policy on terrorism. However, Pakistan has so far neither shown any sincerity in wanting to end cross-border terrorism against India nor taken adequate, demonstrable and effective steps in that direction.

India has never been wanting in self-restraint. We have shown immense restraint during the prolonged proxy war waged by Pakistan, in which we faced many grave provocations. India made several sincere and bold efforts in the past three years to seek peace with Pakistan. Each time, Pakistan responded with betrayal. As far as India is concerned, December 13 has been the gravest of provocations so far. Prime Minister Shri Vajpayee has spoken for one billion Indians when he said that it has "breached the limit of our endurance".

We shall not take another betrayal this time around. Pakistan must act – sincerely, decisively, demonstrably and speedily. The touchstone of Pakistan's sincerity will be its positive response to the following legitimate demands put forth by India:

1. Handing over to India of 20 terrorists, whose names, along with copious evidence of their acts of crime against India, has been given by us to the Government of Pakistan. Many of these terrorists are Indian nationals and have been sheltered in Pakistan.
2. Closure of facilities, training camps, arms supply, funding and all other manner of direct and indirect assistance for terrorists on Pakistani soil, including on areas controlled by it.
3. Stoppage of infiltration of arms and men from Pakistan into Jammu & Kashmir and elsewhere in India.
4. A categorical and unambiguous renunciation of terrorism in all its manifestations and wherever it exists, irrespective of the cause it seeks to further.

APPENDIX - 3

Prime Minister Vajpayee's letter to Mr. George W. Bush, President of United States of America

October 1, 2001
New Delhi

I write this with anguish at the most recent terrorist attack in our state of Jammu and Kashmir, which has killed 27 people so far and injured over 60, through a car bomb outside the state parliament. A Pakistan-based terrorist organisation, Jaish-e-Muhammad, claimed responsibility for the dastardly act and named a Pakistani national based in Pakistan as one of the suicide bombers involved.

There has been understandable anger in the country at this wanton act of violence. Ironically it comes only a day after the President of Pakistan announced on television that Pakistan has no terrorist groups operating from its territory.

Mr. President, the world is still coming to terms with the horrendous events of September 11. India joined wholeheartedly with the United States in its goal for the destruction and defeat of the global terror network which you eloquently announced in your Address to the Congress. With you we condemned any nation that continues to harbour or support terrorism.

We fully understand that in resolutely countering the terrorism that attacked USA on September 11 you are discharging your core responsibility for the interest and security of the people of the United States of America. We are with you and do not wish to overload the agenda in any way. However, incidents of this kind raise questions for our security which, as a democratically elected leader of India, I have to address in our supreme national interest. Pakistan must understand that there is a limit to the patience of the people of India.

I have asked my External Affairs Minister, Jaswant Singh, who is now in Washington, to convey to you more fully our sentiments in this regard.

APPENDIX - 4

Transcript of Joint Press Conference by External Affairs Minister Jaswant Singh and the US Secretary of State Colin Powell

New Delhi

October 17, 2001

JASWANT SINGH: Ladies and Gentlemen of the Press. Good Afternoon. It is my distinct pleasure that we have my friend Secretary of State to meet all of you. I had the occasion to meet him very recently in Washington on the 2nd of October and I am delighted to have been able to play host to him since yesterday. He leaves shortly for Shanghai.

As the Prime Minister informed the Secretary of State, we are not treating this visit by him as a visit of the Secretary of State of the United States of America, as we do of a full formal visit to India. I had a very cordial, very frank and, a very fruitful discussion with the Secretary of State yesterday where we spent just an hour and a half discussing issues together. We had a pleasant supper together and then we covered the entire range of issues bilateral to India-United States of America; regional as also global issues, and of course regional aspects covering the latest developments in Afghanistan, particularly, both September 11, and thereafter October 2nd came up for a considerable extent of mutual discussion.

I do want to repeat what the Prime Minister had said in his very last address to the Joint Session of the US Congress that India and the United States of America being natural allies, I treat my friend Colin's visit as a part of the same demonstration.

We continue to hold that September 11 was an assault on freedom, on civilisation, on democracy. India's stand against terrorism not simply starting from September 1leven before that, has been unequivocal. We stand shoulder to shoulder with the international community and the United States of America in our battle against this global menace. It is my pleasure, ladies and gentlemen, to now request my friend and guest the Secretary of State to share his thoughts with us.

MR. COLIN POWELL: Thank you very much, Mr. Minister, for your warm welcome and for your friendship as well. It means a great deal to me. I thank you and all other your colleagues, and especially the Prime Minister for the courtesies extended to me in this all too brief visit. I look forward to returning in some future time and spending much more time here in India.

As you have noted, we are natural allies - two great democracies who believe in a common set of values that have served both our nations well. President Bush had made it absolutely clear that transforming relationship with India and to put it on a higher plane is one of his priorities. I found that this view is entirely shared by Prime Minister Vajpayee and his colleagues as well. The United States and India have a responsibility, as the world's largest multi-ethnic democracies, to work in close partnership with each other. The prospects have never been brighter for cooperation across a whole range of issues. We have discussed all of these

issues in the past dozen or so hours. President Bush asked me to come here to discuss the global coalition against terrorism on how the United States and India can continue their efforts over the long haul.

As an aside I might mention here now that we know the Prime Minister will be coming to the United States for the United Nations General Assembly meeting in early November, and President Bush has extended an invitation to the Prime Minister to come to Washington on the 9th of November for a working visit. Both the President and we look forward to receiving the Prime Minister in Washington on the 9th of November. I am also pleased that, of course, that invitation has been accepted. I can assure you will be warmly welcomed Mr. Minister.

President Bush also asked me to convey his personal thanks to the Prime Minister for the support we have already received from India and especially Foreign Minister Singh who has been in the forefront of developing and presenting those support offers to us over the past month. We have stood shoulder to shoulder in this fight against terrorism. Both the United States and India were quick to realise that the attacks of September 11th were attacks on the whole world. Citizens of some eighty countries were among the victims including many Indian citizens who remained among the missing. Our hearts go out to the families here in India of those who were lost. Our heartfelt thanks to the people of India for the outpouring of sympathy we have received for our own losses in the attacks.

I want to make it clear that our focus in Afghanistan now is eradicating Al Qaeda network and the terrorist use of Afghanistan as a safe haven, to stop the invasion of Afghanistan that has taken place as a result of the presence of Al Qaeda. We will achieve that goal. President Bush and the international coalition is determined. We will persist and we will prevail. Only after the terrorists are gone can there be a broad-based Government in Afghanistan that represents all elements of Afghan society, brings an end to fighting, lives in harmony with its neighbours in the neighbourhood that coexist, begins the task of reconstruction, and welcomes the refugees back home.

My colleagues here pointed out correctly that the problem of terrorism is not only limited to Afghanistan. I assure them that our efforts are directed against all terrorism. The United States and India are united against terrorism and that includes the terrorism that has been directed against India as well. Even before the September 11th attacks, the United States and India were cooperating extensively against terrorism. We established a Counter-Terrorism Joint Working Group last January, for example. Now our cooperation is even more intense. Today, Home Minister Advani and I signed a mutual Legal Assistance Treaty that will enhance our fight against crime.

Clearly, a major focus of my trip has been on ways the United States and India can work together in advancing the international coalition against terrorism. My talks with the Prime Minister and the Foreign Minister and other officials covered many other important issues as well. We agreed on the far-reaching importance of the new Indo-US relationship which is anchored by the commitment of our leaders and by the friendship of our peoples. I am confident that our

relations, already improving substantially, are becoming and will become even stronger.

President Bush's waiver of Glenn Amendment sanctions allows the United States and India to move forward with broader cooperation between the two sides. During the course of my visit, I had occasion to discuss President Bush's new strategic framework and I briefed the Prime Minister on our continuing exchanges with Russia on this very very vital subject. We discussed how to promote stability on the subcontinent in my talks both here and in Pakistan. I request the leaders of both the nations to continue their dialogue and take steps to reduce tension between them. I leave today for the APEC Ministerial, confident that the United States and India stand together against the scourge of international terrorism, strengthened by our shared democratic values, and ready as never before to work together for freedom, prosperity, and security in the region and in the world. Finally, once again my good friend, I thank you for the warm hospitality you have extended to me. Thank you Mr. Minister.

QUESTION (MR. ASHOK SHARMA, AP): Sir, we wonder how can Pakistan be a part of the international effort to combat terrorism. Pakistan has promoted terrorism in Afghanistan and in Kashmir. It still maintains diplomatic ties with the Taliban. Should not India be attacking Pakistan going by the logic that the United States is attacking Afghanistan?

JASWANT SINGH: I presume that question is addressed to me.

MR. COLIN POWELL: You can take it. I would not want to be inhospitable. If you wish, its all yours.

I think Pakistan has made it clear in recent weeks that they recognise the nature of the Taliban regime, and are working with us to fight against Al Qaeda. They are working with us to see what kind of a Government can be put together in the post-Taliban regime. We deplore terrorism wherever it exists, whether it is the kind of terrorism we saw on the 11th of September, or the kind of terrorism that we saw on the 1st of October in Srinagar. We believe that all nations who are trying to move forward in a 21st century that I think will be shaped more and more by democracy and the values of individual liberty and freedom, can join in this coalition. We welcome all those who are committed to those principles and committed against terrorism.

QUESTION (AMERICAN PRESS): Mr. Secretary, you said yesterday in Pakistan that Kashmir is a central issue between India and Pakistan. You also said the aspirations of the Kashmiri people must be respected. This caused some unease here in India. Do you have any comment please?

MR. COLIN POWELL: Yes. I didn't say 'a central'. If you look at it carefully, I said 'central' in the sense that I believe it is an important issue, and to suggest that it isn't, wouldn't have been accurate. But it is more important to look at the rest of my statement where I said that we should move forward on the basis of dialogue, on the basis of efforts to reduce tension, to avoid violence, and with respect to human rights. I think that is sound statement.

The issue of Kashmir is one that has to be resolved between India and Pakistan. The United States is a friend of both of those nations. To the extent that both nations can find our efforts to be helpful in some way or the other, we will be willing to be helpful. I think it is more important to focus on the rest of my statement than on that particular word, which has somehow had an article slipped in front of it while I wasn't looking.

QUESTION (INDIAN PRESS): Osama-bin-Laden in an interview to Al Jazeera TV claimed that the Islamic world had helped Pakistan build the nuclear bomb and as such it is an Islamic bomb, and can be used by them as and when they choose. Your comments please.

MR. COLIN POWELL: Nonsense. Osama-bin-Laden is not a representative of Islam. He is a terrorist; he is a murderer. He has murdered innocent Indians, innocent Americans, innocent Pakistanis, innocent people from all over the world. He should not in any way be elevated to the status of a leader who believes in any faith. He believes only in power. He has done nothing to help the people who are suffering in the world. All he has done is, he has brought more evil into the world, and death and destruction to individual citizens. There can be no linkage between what he might be doing and what any other nation may be doing. I just reject that as nonsense.

QUESTION (NEW YORK TIMES): Mr. Secretary, a couple of summers ago the Central Intelligence Agency was reported to suggest that the America's plans to go forward with the National Missile Defence would incite China to expand its nuclear arsenal, and that in turn will incite India and Pakistan to an arms race in South Asia. Do you personally agree with that assessment? You said you discussed the strategic issues today. How did it come up today?

MR. COLIN POWELL: No, I don't agree with that assessment. I think the kind of missile defence that we are planning on is a very limited missile defence. I think once people come to understand the kind of reductions we are going to make in our strategic offensive weapons - significant reductions, to much much lower numbers – and when people have a chance to get a look in, come to understand the nature of our limited missile defence, I don't think either Russia or China will find it destabilising with respect to their deterrent forces. In my conversations both here and in Islamabad, I heard from both sides about this issue. We did have the conversation. I took the opportunity of my meeting with the Prime Minister to describe the President's strategic framework concept and to thank the Indians for their understanding of the importance of missile defence. I get the sense that both nations understand the nature of these weapons and the importance of constraining their developments so that they serve as deterrents, and do not move from a strategy of deterrence to any other kind of strategy. So there is no reason for arms race to develop based on what the United States is planning with missile defence. In fact, I think missile defence in the long run will be seen as stabilising, not destabilising, because it takes something of the currency away from the value of strategic offensive weapons.

QUESTION (MS. SONIA TRIKHA, INDIAN EXPRESS): My question is addressed to both of you. Mr. Secretary, you said in Islamabad yesterday that you believed that the Kashmir issue is central to the relationship between India and

Pakistan. This is not a view shared by India which has advocated a composite dialogue covering various political and economic aspects with Pakistan, and not a unifocal approach, as you have said, that centers on Kashmir alone. Do you think that the world sees the wisdom of India's stand in this?

JASWANT SINGH: I think the Secretary of State has more than adequately really read out what he said in Islamabad. Obviously that is the position that the United States of America has and has had. As two democracies we could disagree on an event, but we don't need necessarily to be disagreeable about the disagreement. Together, the question of State of Jammu and Kashmir is an example of the secular tradition of the Indian nation. In that sense we really cannot move towards reinventing the two-nation theory all over again. We have conveyed these views to the Secretary of State and we will continue to do so.

MR. COLIN POWELL: I agree totally.

QUESTION (ABC): Secretary Powell, there was a strain of Anthrax found on the letter to Senator Dashcle that is said to be highly refined and pure, suggesting state sponsorship. Could you comment on that?

Mr. Foreign Minister, could you tell me what your concerns are about the involving and growing relationship between the United States and Pakistan; and have you assured the United States that you will do your part to calm down tensions in Kashmir?

JASWANT SINGH: I can answer that very easily. I am glad you asked that. The relationship that India has and will develop with the United States of America is not a hyphenated relationship. We don't see it through any prism of relation between any other country. We have a relationship with our western neighbors. We are committed. This Government has demonstrated commitment on improving our relations with Pakistan, as perhaps no other Government in the last fifty years has, despite difficulties and uncertainties. The Prime Minister has often said, and I repeated that to the Secretary of State, that you can change friends but you can't change neighbors. We can certainly not alter geography. Pakistan with India has to learn to live together as good neighbors. It will come, be assured. We cannot push the pace of it. Nobody can push the pace of it. The people of the two countries realise the essential sanity of what the Prime Minister of India has repeatedly said that the two people have to learn, have to forget the mistakes of the past fifty years, and we have to learn to live together as we address what are our real enemies of today – poverty, want - as the two countries endeavour to move together in the 21st century and meet the challenges of the 21st century.

MR. COLIN POWELL: I really can't add anything about the Anthrax story and the Dashcle envelope and what they analysed. I just have not any more information than you would really have from Washington. So, I had better stay away from that.

QUESTION (MR. ANURAG TOMAR, ZEE NEWS): Mr. Secretary, Powell, what is your perception about India-US relations after having a whole lot of meetings on important issues with senior Indian leaders? Where does it stand today? Where does it go?

MR. COLIN POWELL: I think our relations are strong. They have improved so much in recent years. I was saying to my colleagues earlier that as the Chief of Joint Chiefs of Staff and the most of years I spent in senior positions in the US military back in the 70s and through the 80s, we really didn't have much to do with India regrettably. That has now all changed. So, these two great democracies can now work together. Here is a mutual interest. We are trying to remove whatever irritations exist in our relationship. This improvement was taking place before the 11th of September, and since the 11th of September, with the strong support that we received from the Indian Government. We have the opportunity to accelerate the pace of change. We look forward to season that opportunity. I think it will be in the interest not only of our two countries but in the interest of South Asia as well.

QUESTION (NBC NEWS): Mr. Secretary, can you share any information about what just happened in Jerusalem with the shooting of a Cabinet Minister; and how this will affect your efforts to try to persuade both sides to resume a more meaningful dialogue and persuade the Israelis in particular not to take counter action?

MR. COLIN POWELL: I just heard about that before the Press Conference. I don't know the details as to who has taken credit for the shooting and what the nature of the incident was. So, I really don't have a comment at this time.

QUESTION (NBC NEWS): Are you going to try to reach out to Mr. Sharon and try to persuade him that no matter what has happened in this instance that he should not retreat from ...

MR. COLIN POWELL: I think I had better understand the incidents before I suggest that to Mr. Sharon. But, as you know, I speak to him on a regular basis, if not daily, every other day or so. I look forward to doing that the next day or so.

QUESTION (NBC NEWS): Mr. Foreign Minister, in particular, on the subject of the US Congress now lifting some remaining sanctions and the expressed proposal by the Administration to follow it up by taking advantage of the waving, granting more economic aid and possibly military aid in the future to Pakistan, do you think that this economic aid to Pakistan is potentially destabilising to the relationship that India has with the United States? Is this too much of a reward for Pakistan ...

JASWANT SINGH: I understand your question. I have just responded to a similar question. India's relationship with the United States of America is not subject, and is not under the veto of any other relationship. These are two sovereign countries. It is very good luck to our western neighbors in Pakistan. It is my hope that they will utilise the economic aid for the right purpose. But that again is something that Pakistan has to decide. I can't really very well decide for Pakistan, or even ordained to advise Pakistan how they should do it. We have a certain experience about the military aid to Pakistan in the past. Now that we see some evidence of Pakistan moving away from fixed positions of the past and joining the rest of the international community, we can only hope that the same approach will govern the utilisation of any aid or assistance that they receive from the United States of America or from any other country.

(Concluded)

APPENDIX - 5

May 1st 2001 speech at the National Defense University, President Bush laid out the following reasons for his decision to deploy NMD.

- Today's Russia is not our enemy. ---The Iron Curtain no longer exists. ---Yet, this is still a dangerous world, a less certain, a less predictable one.

- Unlike the Cold War, today's most urgent threat stems not from thousands of ballistic missiles in the Soviet hands, but from a small number of missiles in the hands of these states, states for whom terror and blackmail are a way of life. They seek weapons of mass destruction to intimidate their neighbors. In such a world, Cold War deterrence is no longer enough.

- We need new concepts of deterrence that rely on both offensive and defensive forces. Deterrence can no longer be based solely on the threat of nuclear retaliation. Defenses can strengthen deterrence by reducing the incentive for proliferation.

- We need a new framework that allows us to build missile defenses to counter the different threats of today's world. To do so, we must move beyond the constraints of the 30 year old ABM Treaty.

- This new framework must encourage still further cuts in nuclear weapons. Nuclear weapons still have a vital role to play in our security and that of our allies. We can, and will, change the size, the composition, and the character of our nuclear forces in a way that reflects the reality that the Cold War is over.

- I am committed to achieving a credible deterrent with the lowest-possible number of nuclear weapons consistent with our national security needs, including our obligations to our allies.

- Several months ago, I asked Secretary of Defense Rumsfeld to examine all available technologies and basing modes for effective missile defenses---- The Secretary has explored a number of complementary and innovative approaches. The Secretary has identified near-term options that could allow us to deploy an initial capability against limited threats.

- When ready, and working with Congress, we will deploy missile defenses to strengthen global security and stability.

- We are not presenting our friends and allies with unilateral decisions already made. We look forward to hearing their views, the views of our friends, and to take them into account.

- We'll also need to reach out to other interested states, including China and Russia.

- This (ABM) Treaty ignores the fundamental breakthroughs in technology during the last 30 years. It prohibits us from exploring all options for defending against the threats that face our allies other countries and us. That's why we should work together to replace this Treaty with a new framework that reflects a clear and clean break from the past, and especially from the adversarial legacy of the Cold War. ---And perhaps one day, we can even cooperate in a joint defense.

- I want to complete the work of changing our relationship from one based on a nuclear balance of terror, to one based on common responsibilities and common interests.

APPENDIX - 6

US Congressional Testimony

Disarmament Diplomacy -- Issue No 54

I. CIA Director

'Worldwide Threat 2001: National Security in a Changing World', Remarks by George J. Tenet, Director of the Central Intelligence Agency (CIA), to the Senate Intelligence Committee, February 7, 2001.

'Transnational Issues

Usama Bin Ladin and his global network of lieutenants and associates remain the most immediate and serious threat. Since 1998, Bin Ladin has declared all US citizens legitimate targets of attack. As shown by the bombing of our Embassies in Africa in 1998 and his Millennium plots last year, he is capable of planning multiple attacks with little or no warning. .

International terrorist networks have used the explosion in information technology to advance their capabilities. The same technologies that allow individual consumers in the United States to search out and buy books in Australia or India also enable terrorists to raise money, spread their dogma, find recruits, and plan operations far afield. Some groups are acquiring rudimentary cyberattack tools. Terrorist groups are actively searching the internet to acquire information and capabilities for chemical, biological, radiological, and even nuclear attacks. Many of the 29 officially designated terrorist organizations have an interest in unconventional weapons, and Usama bin Ladin in 1998 even declared their acquisition a 'religious duty.' ...

Proliferation

I would like to turn now to proliferation. A variety of states and groups continue to seek to acquire weapons of mass destruction and the means to deliver them. First, let me discuss the continuing and growing threat posed to us by ICBMs.

We continue to face ballistic missile threats from a variety of actors beyond Russia and China - specifically, North Korea, probably Iran, and possibly Iraq. In some cases, their programs are the result of indigenous technological development, and in other cases, they are the beneficiaries of direct foreign assistance. And while these emerging programs involve far fewer missiles with less accuracy, yield, survivability, and reliability than those we faced during the Cold War, they still pose a threat to US interests.

For example, more than two years ago North Korea tested a space launch vehicle, the *Taepo Dong-1*, which it could theoretically convert into an ICBM. This missile would be capable of delivering a small biological or chemical weapon to the United States, although with significant targeting inaccuracies. Moreover,

North Korea has retained the ability to test its follow-on *Taepo Dong-II* missile, which could deliver a nuclear-sized payload to the United States. Iran has one of the largest and most capable ballistic missile programs in the Middle East. Its public statements suggest that it plans to develop longer-range rockets for use in a space-launch program, but Tehran could follow the North Korean pattern and test an ICBM capable of delivering a light payload to the United States in the next few years. And given the likelihood that Iraq continues its missile development work, we think that it too could develop an ICBM capability sometime in the next decade assuming it received foreign assistance.

As worrying as the ICBM threat will be...the threat to US interests and forces from short- and medium-range ballistic missiles is here and now. The proliferation of MRBMs - driven largely though not exclusively by North Korean *No Dong* sales - is altering strategic balances in the Middle East and Asia. These missiles include Iran's *Shahab-III*, Pakistan's *Ghauri* and the Indian *Agni-II*. ... [We] cannot underestimate the catalytic role that foreign assistance has played in advancing these missile and WMD programs, shortening their development times and aiding production. The three major suppliers of missile or WMD-related technologies continue to be Russia, China, and North Korea. Again, many details of their activities need to remain classified, but let me quickly summarize the areas of our greatest concern.

Russian state-run defense and nuclear industries are still strapped for funds, and Moscow looks to them to acquire badly needed foreign exchange through exports. We remain concerned about the proliferation implications of such sales in several areas.

- Russian entities last year continued to supply a variety of ballistic missile-related goods and technical know-how to countries such as Iran, India, China, and Libya. Indeed, the transfer of ballistic missile technology from Russia to Iran was substantial last year, and in our judgment will continue to accelerate Iranian efforts to develop new missiles and to become self-sufficient in production.

- Russia also remained a key supplier for a variety of civilian Iranian nuclear programs, which could be used to advance its weapons programs as well.

- Russian entities are a significant source of dual-use biotechnology, chemicals, production technology, and equipment for Iran. Russian biological and chemical expertise is sought by Iranians and others seeking information and training on BW- and CW-agent production processes.

Chinese missile-related technical assistance to foreign countries also has been significant over the years. Chinese help has enabled Pakistan to move rapidly toward serial production of solid-propellant missiles. In addition to Pakistan, firms in China provided missile-related items, raw materials, or other help to several countries of proliferation concern, including Iran, North Korea, and Libya.

Last November, the Chinese Foreign Ministry issued a statement that committed China not to assist other countries in the development of ballistic missiles that can be used to deliver nuclear weapons. Based on what we know

about China's past proliferation behavior...we are watching and analyzing carefully for any sign that Chinese entities may be acting against that commitment. We are worried, for example, that Pakistan's continued development of the two-stage *Shaheen-II* MRBM will require additional Chinese assistance.

On the nuclear front, Chinese entities have provided extensive support in the past to Pakistan's safeguarded and un-safeguarded nuclear programs. In May 1996, Beijing pledged that it would not provide assistance to un-safeguarded nuclear facilities in Pakistan; we cannot yet be certain, however, that contacts have ended. With regard to Iran, China confirmed that work associated with two nuclear projects would continue until the projects were completed. Again, as with Russian help, our concern is that Iran could use the expertise and technology it gets - even if the cooperation appears civilian - for its weapons program.

With regard to **North Korea**, our main concern is Pyongyang's continued exports of ballistic missile-related equipment and missile components, materials, and technical expertise. North Korean customers are countries in the Middle East, South Asia, and North Africa. Pyongyang attaches a high priority to the development and sale of ballistic missiles, equipment, and related technology because these sales are a major source of hard currency.

Mr. Chairman, the missile and WMD proliferation problem continues to change in ways that make it harder to monitor and control, increasing the risk of substantial surprise. Among these developments are greater proficiency in the use of denial and deception and the growing availability of dual-use technologies - not just for missiles, but for chemical and biological agents as well. There is also great potential of 'secondary proliferation' from maturing state-sponsored programs such as those in Pakistan, Iran, and India. Add to this group the private companies, scientists, and engineers in Russia, China, and India who may be increasing their involvement in these activities, taking advantage of weak or unenforceable national export controls and the growing availability of technologies. These trends have continued and, in some cases, have accelerated over the past year. ...

Iraq

Saddam Hussein has grown more confident in his ability to hold on to his power.

High oil prices and Saddam's use of the oil-for-food program have helped him manage domestic pressure. The program has helped meet the basic food and medicine needs of the population. High oil prices buttressed by substantial illicit oil revenues have helped Saddam ensure the loyalty of the regime's security apparatus...the few thousand politically important tribal and family groups... There are still constraints on Saddam's power. His economic infrastructure is in long-term decline, and his ability to project power outside Iraq's borders is severely limited, largely because of the effectiveness and enforcement of the No-Fly Zones. His military is roughly half the size it was during the Gulf War and remains under a tight arms embargo. He has trouble efficiently moving forces and supplies - a direct result of sanctions. ... Despite these problems, we are likely to see greater assertiveness - largely on the diplomatic front - over the next year. Saddam already senses improved prospects for better relations with other Arab

states. One of his key goals is to sidestep the 10-year-old economic sanctions regime by making violations a routine occurrence for which he pays no penalty. Saddam has had some success in ending Iraq's international isolation. Since August, nearly 40 aircraft have flown to Baghdad without obtaining UN approval, further widening fissures in the UN air embargo. Moreover, several countries have begun to upgrade their diplomatic relations with Iraq. The number of Iraqi diplomatic missions abroad are approaching pre-Gulf War levels, and among the states of the Gulf Cooperation Council, only Kuwait and Saudi Arabia have not reestablished ties.

Our most serious concern with Saddam Hussein must be the likelihood that he will seek a renewed WMD capability both for credibility and because every other strong regime in the region either has it or is pursuing it. For example, the Iraqis have rebuilt key portions of their chemical production infrastructure for industrial and commercial use. The plants he is rebuilding were used to make chemical weapons precursors before the Gulf War and their capacity exceeds Iraq's needs to satisfy its civilian requirements. We have similar concerns about other dual-use research, development, and production in the biological weapons and ballistic missile fields; indeed, Saddam has rebuilt several critical missile production complexes. ...

North Korea

Pyongyang still believes that a strong military, capable of projecting power in the region, is an essential element of national power. Pyongyang's declared 'military first' policy requires massive investment in the armed forces, even at the expense of other national objectives. North Korea maintains the world's fifth largest armed forces consisting of over one million active-duty personnel, with another five million reserves. While Allied forces still have the qualitative edge, the North Korean military appears for now to have halted its near-decade-long slide in military capabilities. In addition to the North's longer-range missile threat to us, Pyongyang is also expanding its short and medium range missile inventory, putting our Allies at greater risk. ...

China

Perhaps the toughest issue between Beijing and Washington remains Taiwan. ... The election last March of President Chen ushered in a divided government with highly polarized views on relations with Beijing. Profound mutual distrust makes it difficult to restart the on-again off-again bilateral political dialogue. In the longer term...cross-strait relations can be even more volatile because of Beijing's military modernization program. China's military buildup is also aimed at deterring US intervention in support of Taiwan. Russian arms are a key component of this buildup. Arms sales are only one element of a burgeoning Sino-Russian relationship. Moscow and Beijing plan to sign a 'friendship treaty' later this year, highlighting common interests and willingness to cooperate diplomatically against US policies that they see as unfriendly to their interests-especially NMD. ...

Russia

[Y]et another state driving for recognition as a Great Power is Russia. Let me be perfectly candid. There can be little doubt that President Putin wants to

restore some aspects of the Soviet past-status as a great power, strong central authority, and a stable and predictable society-sometimes at the expense of neighboring states or the civil rights of individual Russians. ...

Moscow also may be resurrecting the Soviet-era zero-sum approach to foreign policy. As I noted earlier, Moscow continues to value arms and technology sales as a major source of funds. It increasingly is using them as a tool to improve ties to its regional partners China, India, and Iran. Moscow also sees these relationships as a way to limit US influence globally. At the same time Putin is making efforts to check US influence in the other former Soviet states and reestablish Russia as the premier power in the region. He has increased pressure on his neighbors to pay their energy debts, is dragging his feet on treaty-mandated withdrawals of forces from Moldova, and is using a range of pressure tactics against Georgia. ...

South Asia

I must report that relations between India and Pakistan remain volatile, making the risk of war between the two nuclear-armed adversaries unacceptably high. The military balance in which India enjoys advantages over Pakistan in most areas of conventional defense preparedness remains the same. This includes a decisive advantage in fighter aircraft, almost twice as many men under arms, and a much larger economy to support defense expenditures. As a result, Pakistan relies heavily on its nuclear weapons for deterrence. Their deep-seated rivalry, frequent artillery exchanges in Kashmir, and short flight times for nuclear-capable ballistic missiles and aircraft all contribute to an unstable nuclear deterrence.

If any issue has the potential to bring both sides to full-scale war, it is Kashmir. Kashmir is at the center of the dispute between the two countries. Nuclear deterrence and the likelihood that a conventional war would bog down both sides argue against a decision to go to war. But both sides seem quite willing to take risks over Kashmir in particular, and this - along with their deep animosity and distrust - could lead to decisions that escalate tensions. ...

Last year I told you I worried about the proliferation and development of missiles and weapons of mass destruction in South Asia. The competition, predictably, extends here as well and there is no sign that the situation has improved. We still believe there is a good prospect of another round of nuclear tests. On the missile front, India decided to test another *Agni* MRBM last month, reflecting its determination to improve its nuclear weapons delivery capability. Pakistan may respond in kind. ..."

Source: *Text - CIA's Tenet on Worldwide Threat 2001,* US State Department (Washington File), February 7.

Russian Reaction

'Concerning the Statement of CIA Director George J. Tenet in the US Senate Select Committee on Intelligence,' Statement by the Russian Ministry of Foreign Affairs, Document 218-09-02, February 9; unofficial translation.

"The CIA Director, George J. Tenet, spoke in hearings in the US Senate Select Committee on Intelligence a few days ago. Among other subjects, he also touched upon relations with Russia, though - unlike US President George Bush - he chose to put the Russian theme not in the context of international cooperation, but on the list of 'threats' to United States security. Of course, remembering the specifics of the CIA, which flourished exactly during the period of the Cold War, it would have been difficult to expect of its chief any thoroughly thought out assessments with regard to us. But, even despite this, a number of pronouncements made by Tenet cause, mildly speaking, bewilderment.

Take, for example, his assertion that Russia is trying to counteract US interests on a global scale. Of course, in our approaches to a number of major international issues there are differences of opinion, including ones of a serious character. But in our policy we have proceeded and continue to proceed from the assumption that Washington is our important partner in the joint maintenance of international security and strategic stability, and that Russia and the US no longer threaten each other, nor do they regard each other as opponents. As we understand, the new US leadership also shares this fundamental approach.

We are also surprised by the forced attempts of Tenet to paint Russia as one of the culprits of the proliferation of weapons of mass destruction and their means of delivery. Of all people, the CIA director should well know that it is Moscow that has fully ratified START II and the Comprehensive Nuclear Test Ban Treaty, thus decisively facilitating the preservation of the cornerstone Treaty on the Non-Proliferation of Nuclear Weapons, and that the President of the Russian Federation proposed on November 13, 2000, a coherent program for real nuclear disarmament and the strengthening of all key non-proliferation regimes, including that for control over the spread of missile technologies. By the way, it has been precisely in this sphere that a structure and machinery for Russian-American cooperation were set up and have been operating quite efficiently - including with the participation of the intelligence communities of the two countries - thanks to which we have jointly achieved concrete results. Practice shows that what's needed is not empty exhortations and groundless accusations, but painstaking and delicate work on the strengthening of bilateral and multilateral dialogue on these questions, in which the CIA, unfortunately, has not always shown itself at its best.
On the whole, the 'dark revelations' of George J. Tenet about Russia and our relations with the United States may play up to the 'hawkish' sentiments in the US Congress and help increase the CIA budget, but they in no way correspond to the real state of affairs or the priorities of Russian-American cooperation as defined by the presidents of Russia and the US at this particularly crucial period of development of relations between the two countries."

II. Secretary of Energy

Statement of Spencer Abraham, Secretary of Energy, to the Senate Armed Services Committee, February 8, 2001; Federal News Service transcript.

"As each of you are intimately aware, more than two-thirds of the Department of Energy's budget is funded from defense accounts. ... Let me begin with the programs of the National Nuclear Security Administration. First, I will say that I fully supported the establishment of the NNSA when I was in the Senate and

continue to support it today. I voted for the Domenici-Kyl amendment and for the Defense Authorization Act which created the NNSA. [NNSA Director] General [John] Gordon and I have established a very productive working partnership and I am confident that this new entity will be successful.

[T]he most sobering and important responsibility vested in the Secretary of Energy is the duty to certify to the President each year that the US nuclear arsenal is safe, secure and reliable. I can assure the members of this Committee that nothing I do will be higher on my priority list than ensuring the safety and security of our nuclear deterrent.
The DOE weapons program is continuing to implement new methods of certifying the safety, reliability, and effectiveness of US nuclear warheads in the absence of underground nuclear testing. This requires expensive and technically complex new experimental facilities and capabilities. Not all of these facilities and capabilities are operational yet, but the Department is continuing to make progress in this area. We must establish these new facilities and capabilities as rapidly as possible.

I believe that we would want to pursue most of these new capabilities even if we were in a testing environment. I hope to work with you and the other members of Congress in the coming months to ensure that these programs are adequately funded and supported.

In addition to establishing these new science-based certification tools. DOE is also in the process of evaluating our critical production capabilities - such as tritium gas production, uranium processing, and plutonium pit production. Again, these capabilities may require expensive, new facilities and technologies and in the future, I hope to work with you to ensure that any needs which we may have are successfully met.

The Department also plays a critical role in threat reduction, by addressing the challenge of nuclear weapons proliferation. This nation has an acute interest in accounting for and preventing the spread of nuclear weapons materials, technology, and expertise. The Department has had many past successes in this arena... I believe that the recent Baker-Cutler report [**note:** see *Disarmament Diplomacy* No. 53] will serve as a useful tool to help frame the debate on these critical issues, and I look forward to working with you to address these challenges. ..."

Questions and Answers

"**Question (Committee Chair Senator John Warner, Republican):** '[I]n the course of the Senate's advise and consent review of the Comprehensive Test Ban Treaty, this Committee initiated a series of...very thorough hearings regarding the present and future status of our nuclear stockpile... The distinguished directors of our laboratories, in whom we place the trust to make periodic evaluations of our inventory, gave their testimony. And that testimony was in true fashion professional and not political. I feel that it was the absolute bedrock of fact that directed the Senate not to give its advice and consent on that treaty at that time, because in their professional opinion they could not give the assurance to the Committee - indeed the Senate as a whole and to the country - of a timetable within which this nation could complete the design and installation of a series of

technical, very complicated devices, largely computers, which would provide substitutes for live testing, our nation having decided under previous presidents not to continue live testing. ... As a consequence of their inability to give us what I believe were some very specific parameters regarding the ability to substitute for live testing, the Senate decided not to accept that treaty. ... Can you give us an update with regard to the current evaluation of these very distinguished laboratory directors, all of whom will eventually come before this Committee? ...'

Secretary Abraham: '... I have only had a chance to have extensive discussions with one of the lab directors to this point. I am looking forward to visiting all the facilities in the course of my first months in this job .. I was a member of the Senate when the treaty was rejected, and voted 'no' on that occasion. Obviously a lot of concerns were raised with respect to issues that had to do with their verification as well as exactly where and how long it would be before we could be comfortable with certification in the absence of a testing environment. But the President in his campaign and since has made it clear he intends to continue the moratorium, and we are committed at the department to trying to move forward on the various science-based stockpile stewardship programs that will give us as much information as we can acquire through them to be able to certify the safety, security and reliability of the stockpile. My views are these: Clearly we know that the lab directors and others have said that it will take some time before we can be certain that science-based testing, separate from actual testing, will work. The timeframe that they have indicated to me is a timeframe that can be as short as six years and perhaps as long as 20... But I think that the results of the most recent process, which was just completed in January, enjoys the full confidence of the lab directors and the certification that just took place by my predecessor and the immediate past Secretary of Defense, another one of our former colleagues, is one that I have high confidence in.'

Question (Senator Warner): 'I'd like also to receive from you your evaluation of where the United States is today, and where in your judgment and that of the President it should be in the future, regarding the investment of dollars and research in perhaps future development of a new series - if that is necessary - of...nuclear weapons. It's my understanding there was very little done on that under the previous administration, and it is my hope and expectation that this administration will begin to review the stockpile and the normal periods of time within which these weapons have to be replaced...'

Secretary Abraham: 'Well, I will certainly be happy to keep the Committee informed as to evaluations that are made as the Secretary of Defense and I are called upon to begin that kind of process of evaluation. ... But what I would just point out [is] that some of these decisions would be ones that are primarily driven by the Defense Department. ...'

Question (Senator Carl Levin, Democrat): 'On the stockpile stewardship program, without getting into the pros and cons of the Comprehensive Test Ban Treaty, there is no current requirement to resume testing. There is a moratorium, as you have indicated. I disagree with our Chairman as to the reason why that treaty was defeated at the time that it was. Actually there were many more Senators who had urged that we not even vote on that treaty at that time until there was a greater

opportunity for further hearings into the treaty than there were Senators who voted against the treaty itself. ... My question is this, however, going back to the Chairman's comments about the lab directors. Their testimony was that they could not give us assurance that testing would never be necessary. And I think that was solid advice, and that is the reason why the treaty itself had a supreme national interest clause in it, and why the ratification resolution itself had a provision that if testing ever became necessary to assure the safety and reliability of our stockpile, that in fact we would use that supreme national interest provision and withdraw from the treaty. ... The Secretary of State, our current Secretary of State, supports the Comprehensive Test Ban Treaty, and I would hope that before you reach your own conclusion on whatever new material you gather, current material on this subject, that you would include discussions with Secretary...'

Secretary Abraham: 'I'd be happy to. And I also would give the Committee the assurance that...one of the priorities that General Gordon and I have already talked about is to move forward with the various...new science programs and others related to the stockpile...'

Question (Senator Jack Reed, Democrat): '... [W]hat is preventing us from getting to the point where our stockpile program can be relied upon without testing? ... This six-year to 20-year gap, what's causing the delay?'

Secretary Abraham: '... My understanding is that a lot of factors are involved. Obviously...on a regular basis we take apart our warheads to determine their content, any degradation that might have happened. ... Another step in the process is developing new scientific equipment that can try to emulate in a laboratory setting the sorts of activities that go on when a nuclear explosion takes place. That's led us in the direction of the development of the National Ignition Facility, NIF. That's not developed yet; it's in the developmental stages. And as you know, the costs of that have been questioned because the projections are apparently too low; whether that's because of bad projections or because of other factors, I haven't yet been able to determine... But we don't know, once that facility is fully functional, assuming that happens, whether or not we can create sufficiently similar conditions to be able to determine certain kinds of scientific conclusions with respect to the performance of weapon systems. ... [M]y sense is that they [the lab directors] don't feel they can come to Congress or to the Secretary of Energy and say with certainty that they can certify with complete confidence in a future point - not today; I think they feel very comfortable about the recommendations that were made in January. But when they're asked, can you also make that same high-level of confidence recommendation or certification in 20 years, I think what they're saying is they aren't able to tell us with certainty they will be able to do that until some of these steps have been taken.' ...

Question (Senator Warner): '... [A]ny development of a new warhead...is dependent on the ability in the course of development to test it. And at the moment, we're going to continue the moratorium, rely on the substitute test program, and we're nowhere near there. So, basically, any thought of trying to come forward with a new system at this point in time has to be timed in relationship to when we can test it. But in the interim period, there's a very interesting report out by [Stephen] Younger [Associate Laboratory Director for Nuclear Weapons at Los

Alamos] - are you familiar with that? It's the report issued by Los Alamos [*Nuclear Weapons in the Twenty-First Century* - see *Disarmament Diplomacy* No. 50], and I'll just acquaint you with it briefly. The approach being that perhaps we can, as we move towards a new generation, do it in such a way that we can develop something that would enable us to bring down considerably the current size of inventory, which has a direct impact on your burden to revitalize the infrastructure which supports the current inventory. ... And also, it touches on the possibility of working in the conventional area to replace the deterrence that we now rely on through the strategic system. So I was...'

Secretary Abraham: 'Senator, is that sometimes referred to as the mini-nuke case? I think I've heard it referred to that way. ... I...am familiar with Mr. Younger's [report]... I have not had the chance to study it in detail. ...' ...

Question (Senator Levin): '... The DOE is getting ready to begin a multi-year life extension program for several different warhead types, and the DOE facilities are not up to the task of the work that has to be performed on these warheads in order to extend their life. And will you support an effort to upgrade some of the facilities that would be used in that life extension program?'

Secretary Abraham: '... I have great concerns...about the infrastructure capabilities and potential that we have today. So I do support and will be supporting efforts to address that aspect of it. There's also...concerns about our capacity to maintain certain components of the warhead, to produce plutonium pits, for example. And we'll be monitoring that aspect of this as well...'"

APPENDIX - 7

Sheehan Testimony on Counter terrorism and South Asia

(U.S. Coordinator links regional instability and terrorism) (4730)

Statement for the Record

Amb. Michael A. Sheehan, Coordinator for Counter terrorism
U.S. Department of State
House International Relations Committee
July 12, 2000

Mr. Chairman:

Thank you for this opportunity to discuss our counter terrorism efforts with you. Ongoing consultations with Congress are key to our efforts to protect American lives and interests abroad.

Today I want to respond to your request for a detailed description of a significant trend in international terrorism - namely, the geographical shift of the locus of terror from the Middle East to South Asia. In our annual report to Congress, Patterns of Global Terrorism 1999 (Patterns), we described this shift in some detail. In fact, this was one of the two trends we identified as the most important recent developments in terrorism, the other being the shift from well-organized, localized groups supported by state sponsors to loosely organized, international networks of terrorists. I purposely addressed these trends on the very first page of my introduction to the report. The increased willingness and ability of terrorists to seek refuge in South Asia are disturbing developments, and they require us to refocus our diplomatic energies and policy tools as well.

I. Why South Asia?

Let me begin by outlining why South Asia has become a new locus for terrorism. Understanding the causal factors at play is a fundamental step in developing an effective counter terrorism policy for the region.

Regional instability

To examine the role of regional instability in fostering terrorism, we can start with the Soviet invasion of Afghanistan and the decade-long civil war which followed. This war destroyed the government and civil society of Afghanistan, at the same time bringing arms, fighters from around the world, and narcotics traffickers to the region. The Soviet withdrawal left a power vacuum, leaving the country in the hands of warring groups of mujahidin as well as outsiders seeking to further their own interests. Many of the current leaders of Afghanistan came of age in training camps designed to create a generation of combatants to fight wars inside and outside Afghanistan. These camps in turn fostered relationships with Afghan Arabs and others fighting wars or involved with terrorism in the Middle East and elsewhere. Eventually, the Taliban, a radical group with a world-view informed by the experience of war, gained power over much of the country. Fierce conflicts still flare up in South Asia. The Taliban continues to fight the Northern Alliance, and the border conflict over Kashmir causes instability and bloodshed. South Asia also finds itself serving as a support area for conflicts further afield, such as those

in the Caucasus and in the Middle East. The proximity of terrorists to such sources of regional instability is a mutually reinforcing relationship. Terrorists can contribute to such instability by lending a hand to other terrorist groups intent on destroying peace processes. Conversely, instability draws more weapons into the region, increasing the chances that terrorists will get their hands on them. In addition, governments otherwise occupied with wars are less likely to root out terrorists operating within their borders.

Improvements in the Middle East:

Another factor in the shift of the locus of terrorism to South Asia is the progress we have made in reducing terrorism in the Middle East. In the Middle East, by designating state sponsors of terrorism, by criminalizing support to groups designated as Foreign Terrorist Organizations (FTOs), and through intense bilateral discussions with various states, we have stimulated other countries to confront terrorism within and across their borders. And even though terrorism remains a threat in the region, our efforts have brought results. Many Middle Eastern governments -- with some notable exceptions -- have strengthened their counter terrorist policy and improved international cooperation.

Jordan and Egypt are examples of Middle Eastern countries that took positive steps last year. Jordan remained particularly intolerant of terrorism on its soil, arresting extremists reportedly planning attacks against U.S. interests, closing HAMAS offices and arresting some of its members, and responding vigorously to a variety of other terrorist threats. Egypt continued carrying out counter terrorism measures in 1999 by arresting, trying, and convicting a number of terrorists threatening its own interests and those of the U.S. and our allies. Also in the Middle East, the Palestinian Authority mounted counter terrorist operations last year designed to undermine the capabilities of HAMAS and the Palestinian Islamic Jihad to use terrorism to disrupt the peace process.

We cannot take credit for all improvements in the counter terrorism sphere in the Middle East, but our diplomacy played a major role. Make no mistake, I do not mean to suggest we can let down our guard in the Middle East. Recent threats in Jordan both during the millennium and a few weeks ago demonstrate that continued vigilance is warranted. Of course, Iran remains an active state sponsor, and Syria, Libya, and Iraq remain on our list because they provide safe haven and material support to terrorist groups. But their direct sponsorship of terrorist acts has diminished. Unfortunately, as we work to neutralize terrorism in the Middle East, terrorists and their organizations seek safe haven in other areas where they can operate with impunity. South Asia is one of them.

Ideological extremism:

There is unfortunately a misperception among some people that terrorism is driven by belief in Islam. In fact, terrorism is a perversion of the teachings of Islam. That being said, another factor contributing to the shift of the locus of terrorism to South Asia is the intersection of regional instability and weak political and economic systems with ideological and militant extremism. For instance, the Taliban practices an austere, extreme brand of Islam. While this is not threatening in and of itself, the Taliban has proven sympathetic to other radical groups, some

of which distort religious ideas and principles to justify terrorist acts. In addition, Pakistan's political and economic difficulties and the resultant damage to Pakistan's institutions have provided fertile ground for terrorism. One of the great failures has been in education. Pakistan's government-sponsored educational system has been unable to meet the needs of Pakistan's people. As a result, many poor Pakistanis are drawn to free education provided by madrassas, or religious schools. Many of these schools perform a needed service in imparting such education. Some schools, however, inculcate extremism and a violent anti-Americanism in their students In these schools, a rigid condemnation of Western culture, coupled with the local conditions of failing societies, produces young men inclined to support the same causes championed by Usama Bin Ladin and other terrorists. The Government of Pakistan is aware of this problem and has stated that it intends to ensure that madrassas provide a proper education for their students.

Financing terrorism:

When discussing the various causes of increased terrorist activity in South Asia, we must address the ability of terrorists to raise funds to support their activities. One of the most important ways to combat terrorism is to disrupt the financing of terrorist groups and activities. We have already made this a priority and are working hard
-- with unilateral and multilateral sanctions, bilateral diplomacy, and through the UN and G-8 -- to disrupt the financing of terrorism in South Asia. One notable success was the adoption by the UN General Assembly in December 1999 of the G-8 initiated International Convention for the Suppression of the Financing of Terrorism. Full implementation of this important new counter terrorism treaty by the largest number of governments is essential, and we hope to submit it to the Senate for advice and consent to ratification shortly. But we must keep up the pressure. The ability of terrorists operating in Afghanistan, for example, to obtain funds and other material support is a symptom of the other primary trend in terrorism that I described in Patterns: the shift from terrorist groups sponsored by states to international networks of terrorists not affiliated with particular governments.

This shift has profound implications for our policies in South Asia. The capabilities of Usama Bin Ladin's al-Qa'ida network, which has centered itself within Afghanistan, demonstrate why this is the case. Bin Ladin's organization operates on its own, without having to depend on a state sponsor for material support. He has financial resources and means of raising funds, often through narcotrafficking or the use of legitimate "front" companies. He enjoys international financial support. Bin Ladin and other non-state terrorists also benefit from the globalization of communication, using e-mail and Internet websites to spread their message, recruit new members, and raise funds.

These capabilities allow Bin Ladin and other terrorists to extend their tentacles around the world. Terrorist networks outside the context of the international state system provide everything that is needed for groups such as the Egyptian Islamic Jihad (EIJ) to survive and become stronger - even when they are based in friendly states with vigorous counter terrorism policies. The threat posed by this group, a faction of which is closely allied to Bin Ladin, illustrates the challenges we face as non-state terrorism becomes more prevalent.

The role of the Taliban:

The ability of groups such as al-Qa'ida to plan and carry out terrorist attacks with impunity brings us to the final causal factor in the shift of terrorism to South Asia: the Taliban's refusal to crack down on terrorists. Afghanistan has become the primary swamp of terrorism, harboring terrorists from the region and around the world. The Taliban, which controls most Afghan territory, provides safe haven for Usama Bin Ladin and his network. Because of the room which the Taliban gives him to operate, Bin Ladin has created a truly transnational terrorist enterprise, drawing on recruits from across Asia, Africa, and Europe, as well as the Middle East. The Taliban has also given logistic support to members of other terrorist organizations, such as the Egyptian Islamic Jihad, the Algerian Armed Islamic group, Kashmiri separatists, and a number of militant organizations from Central Asia, including terrorists from Uzbekistan and Tajikistan.

II. Foundations for progress

I reiterate that the shift of the locus of terrorism to South Asia has serious implications, not only for the work that I do as Coordinator for Counter terrorism, but for our foreign policy towards South Asia in general. Because of the growing momentum behind this trend, and the threat that it poses to Americans and others in the region, terrorism is a top priority on the agenda whenever the President, Secretary Albright, or other officials sit down with their South Asian counterparts. But when engaging other nations on these issues, we do not rely solely on periodic reminders of the threat of terrorism. We actively pursue -- using a number of tools -- our counter terrorism policy goals with all of the key countries in the region. And by no means do we believe it inevitable that the U.S. make enemies in the region, despite the spread of religious extremism. Most religious conservatives, despite a profound distrust of Western values and culture, are not involved in violent activities in general, much less specific anti-American violence.

The good news is that we believe we are laying solid foundations for progress on counter terrorism in South Asia. Unlike previous (and some ongoing) efforts to counter terrorism elsewhere, the primary countries we are concerned with in the region are not hostile to the United States, and they do not sponsor terrorism directly. Allow me to describe for you our current bilateral, regional, and multilateral efforts to counter terrorism in South Asia, beginning with Afghanistan and Pakistan.

Afghanistan:

We have taken a number of steps to address the Afghan Taliban's dangerous conduct. Last year the President issued Executive Order 13129, imposing sanctions on the Taliban. This action deepened the international isolation of the Taliban and limited its ability to support terrorist groups and activities. We also designated al-Qa'ida, based in territory controlled by the Taliban, as an FTO for the first time last year. In addition, in October 1999 the UN Security Council unanimously adopted Resolution 1267, deploring the Taliban's continued provision of safehaven to Usama Bin Ladin and imposing mandatory sanctions prohibiting Taliban-controlled airline flights and freezing Taliban-controlled assets. These international sanctions will remain in place until the Taliban turns Bin Ladin over to a country where he can be brought to justice.

Unfortunately, despite the increasing pressure, the Taliban has taken no positive steps towards this end. We will continue the pressure, and we are also exploring ways to exert further multilateral pressure on the Taliban.

When I spoke with the Taliban's Foreign Minister, I used this analogy to describe our approach: "If there's a criminal in your basement and you are aware that he has been conducting criminal activities from your house, even if you are not involved in the crimes you are responsible for them. In fact, your willingness to give him refuge makes you complicit in his actions, past and present." For this reason, we support sanctions on the Taliban, and we will hold them directly responsible for any terrorist acts undertaken by Bin Ladin while he is in Afghanistan.

We have tried to engage the Taliban in a serious dialogue, and some members of the Taliban have told us that they would like to improve relations with the U.S. They have even taken a few somewhat feeble measures to demonstrate their willingness to work with us, including cutting off Usama Bin Ladin's links with foreign media. However, we have seen no indication that they are ready to take the actions -- on Bin Ladin and other issues -- that would be necessary for normalization of U.S.-Afghan relations.

Pakistan:

Any discussion of counter terrorism in South Asia must take Pakistan's role into account. As we stated in Patterns, Pakistan has a mixed record on terrorism. The Government of Pakistan has cooperated in some areas, particularly in arrests and renditions of terrorists and supporters of terrorism. In recent weeks, Pakistan has arrested a number of foreigners suspected of connections with terrorism, and the Government is expelling them.

Nevertheless, Pakistan has tolerated terrorists living and moving freely within its territory. Numerous Kashmiri separatist groups and sectarian groups involved in terrorism use Pakistan as a base. Pakistan has also frequently acknowledged what it calls "moral and diplomatic support" for militants in Kashmir who employ violence and terrorism. Additionally, the U.S. has received continuing reports of Pakistani material support for some of these militants, including the Harakat ul-Mujahidin (HUM), a group that we have designated as an FTO. We have repeatedly asked Islamabad to pressure the Taliban to end terrorist training in Afghanistan, to interdict travel of militants to and from camps in Afghanistan, to prevent militant groups from acquiring weapons, and to block financial and logistical support to camps in Afghanistan. We have also urged Islamabad to address the issue of misuse of religious schools, and the Pakistanis have told us that they will attempt to reform and modernize these schools.

We are looking hard at current developments and continue to be intensively engaged with Pakistan on improving cooperation. President Clinton and, most recently, Under Secretary Pickering both traveled to Pakistan to reinforce tough messages on terrorism and other key concerns. Again, Afghanistan is not our enemy, and neither is Pakistan. In fact, Pakistan is a long-time friend and ally, albeit one that bears some responsibility for the current growth of terrorism in South Asia. That we are allies makes it all the more important that we cooperate to rid the area of terrorism.

Pakistan itself is also a victim of terrorism and understands that this threat undermines its own security. Aside from the people of Afghanistan, the citizens of Pakistan suffer the most because of the terrorism problem in South Asia. The Government of Pakistan also understands that the "Talibanization" -- or radicalization -- of their country and of the region is something to avoid. Pakistan seeks to build political and economic bridges with other Central Asian nations, and the Pakistanis realize that the presence of terrorists in Afghanistan and South Asia is a serious obstacle to regional cooperation and stability. While Pakistan's leaders understand these things, and our engagement is beginning to yield progress, there is a lot more to do. Our efforts must reflect our desire to help Pakistan confront this problem directly. To the extent that our policies help Pakistan keep the pressure on terrorists, and enable Pakistan to counter this threat in South Asia, then we will continue to move forward.

III. Building an international coalition

While we are focusing on Afghanistan and Pakistan, there are a number of other countries that have much at stake in our counter terrorism efforts in South Asia. These are the "front-line" states: the countries of Central Asia, as well as India, Russia, and China. Bilateral and unilateral cooperation with these states is crucial to the effort to rid South Asia of terrorism. We must make his a collective effort: after all, even if we are tough on terrorism, if other countries are not, we remain at risk. I envision the U.S. building an international coalition to confront terrorism in Afghanistan and elsewhere in the region. The foundations for such a coalition, including front-line states and others, are already in place.

Central Asia:

The U.S. and Central Asian countries took a positive, tangible step last month when we hosted a Central Asia counter terrorism conference here in Washington. This conference yielded significant progress, and I can say with confidence that all the attendees left convinced that terrorism represents a growing challenge and a potential threat to all of Central and South Asia.

Specifically, participants agreed that to combat terrorism, individual nations and the international community must block financial, logistical, and moral support for organizations and people engaged in international terrorism. Representatives from Kazakhstan, Kyrgyzstan, Uzbekistan, and Tajikistan agreed on the importance of increasing multilateral, regional, and bilateral cooperation and fostering political will in the international community to deny sanctuary and support to terrorists. The participants specifically denounced the Taliban for allowing terrorists to destabilize the region.

The conference also gave us the opportunity to stress to our partners in Central Asia that countering terrorism and protecting human rights and civil liberties are not inconsistent goals. In fact, the development of a healthy civil society and the strict preservation of the rule of law for all citizens are essential elements of a successful counter terrorism campaign. We look forward to following up on all of these issues in further consultations with Central Asian countries.

Other front-line states:

Our bilateral relationships with India, Russia, and China are also crucial elements of our South Asia counter terrorism strategy. In February, the U.S.-India Counter terrorism Working Group (CTWG) met for the first time. This initiative reflects the shared interest of the U.S. and India in enhancing our joint efforts to counter international terrorism.

The working group is already playing an important role in reducing the terrorist threat in South Asia. For example, the group facilitated renewed opportunities for antiterrorism training of Indian officials and the establishment of a Legal Attache Office at Embassy New Delhi.These efforts will make cooperation in a future crisis much easier, while at the same time helping to prevent and deter the further spread of terrorism in South Asia.

Just as we are moving forward with India on counter terrorism issues, we have taken positive steps with regard to Russia. President Clinton and Russian President Putin recently agreed to form a bilateral working group on Afghanistan. The new working group should serve to improve diplomatic cooperation with Russia through multilateral and regional channels. This initiative will also complement ongoing efforts with Russia on counter terrorism objectives in South Asia. The first meeting of the working group will take place in the very near future and will focus on joint means to counter the threat emanating from Afghanistan.

Russia continues to confront terrorism on its own. Russia has legitimate interests in fighting terrorism, especially with regard to Islamist mujahidin movements in Central Asia. The Russians understand the destabilizing threat of terrorism, and therefore have come together with other governments in the region in joint efforts to combat terrorism. These include the recent announcement of the establishment of a CIS Counter terrorist Center based in Moscow with members from most of the former Soviet Union states, joint military exercises with terrorist incident scenarios, and terrorism discussions among Central Asian countries and Shanghai Five members. To the extent that these initiatives reduce the terrorist threat in Central and South Asia, they will complement our policies in the region.

With regard to China, I look forward to developing a dialogue with Chinese officials on counter terrorism issues. The initial foundations for such a dialogue have already been established. We fully expect that the Chinese will be willing to work with us to eliminate the threat of terrorism from South Asia, especially in light of their continued interest in a secure and stable subcontinent. As long as Bin Ladin and other terrorists put such stability at risk, the Chinese will join with us in countering this threat.

IV. What next?

Now that I have described the causes of the shift of the locus of terrorism to South Asia, as well as what we are doing currently to counter this threat, let me address what I see as the next steps in U.S. counter terrorism policy in the region. Of course, in the short-term, the protection of American lives and interests remains our top priority. Also, we will continue to work to bring to justice those terrorists who have perpetrated terrorist acts, including Bin Ladin.

Political will:

With regard to long-term goals in South Asia, I would like to reiterate that it ultimately takes political will on the part of other governments to confront terrorism. Our overarching approach to countering terrorism is to drain the "swamps" where terrorists are hiding. These swamps, where governments either are unable or unwilling to crack down on terrorists operating or living within their borders, are places where terrorists have room to move, plan, and raise funds. We use a variety of tools to drain these swamps, including international agreements, domestic legislation, vigorous law enforcement, designation of terrorist groups, and diplomatic isolation. But in the long run -- and we must think in terms of the long run when considering efforts to combat terrorism -- it will be our political and diplomatic efforts that reduce the space in which terrorists can operate. When terrorists see that terrorism is not a legitimate means of expression, that it will not be tolerated by any country, and that perpetrators of terrorist acts will be punished, then they will think twice about using it as their voice. But to demonstrate this to terrorists requires sustained political will on the part of our allies.

This is why our efforts to build an international coalition will be important. Sustained engagement with Pakistan and pressure on the Taliban must be geared towards neutralizing the terrorist threat in the region. And for this effort to be effective, our policy has to include consideration of what needs to happen more generally in the region. I am aware that overall U.S. policy in South Asia is not my responsibility; however, the broader political context affects my work directly.

Specifically, neutralizing terrorism in South Asia will necessitate lasting peace in Afghanistan as well as radical reform in Pakistan. With regard to the former, the most important counter terrorism policy in the Middle East has been the peace process and the progress made in bringing parties to the table. The Administration is not suggesting we have the will or national interest to make a comparable effort in Afghanistan, but we need to find a way forward. With regard to Pakistan, a country in deep political and financial crisis, continued emphasis on democratization and economic and social development will give Pakistan the tools it needs to counter terrorism effectively.

Resources:

Along with political will on the part of South Asian countries, success is also contingent on the U.S. devoting sufficient resources towards our objectives. Support for the counter terrorism elements of the President's budget request is crucial to our efforts. Mr. Chairman, I would like to take this opportunity to thank you and the members of this committee for their continued support for these programs, especially the training and rewards programs.

One example is our Antiterrorism Assistance (ATA) program, which gives us access to other governments and improves their counter terrorism capabilities. Training foreign officials in bomb detection, hostage negotiation, and crisis management protects American lives overseas.

In addition, as part of our ATA program we are completing a training curriculum for foreign judicial and financial officials designed to help these

officials disrupt the financing of terrorist groups and activities. The Administration requested $38 million for ATA in FY 2001. I seek your support for full funding of the ATA program.

Another important counter terrorism initiative is the new Terrorist Interdiction Program (TIP), which would hinder terrorists from easily crossing international borders. TIP would provide databases, communications equipment and training to help vulnerable nations identify terrorists trying to enter their territory or transit through their airports. We hope the Congress will approve the full $4 million requested for TIP in FY 2001.

A final component of the President's counter terrorism budget request is funding for a Center for Antiterrorism and Security Training (CAST). Such a center would allow us to consolidate ATA and other security training at a location near Washington. At this facility, foreign officials could work more effectively with U.S. Government officials and security specialists, including Diplomatic Security agents and Capitol Hill police. Also, we would be able to eliminate long delays in providing such training, currently due to a shortage of time slots at facilities contracted to us by other agencies. We need this 21st century facility for meeting 21st century terrorist threats. We need your support to make sure funding is included for CAST -- as well as the President's full FY 2001 Foreign Operations request -- when the Congress considers the final versions of FY 2001 appropriations bills.

V. Conclusion

In conclusion, I remind you that our efforts to combat terrorism in South Asia and around the world start with support from Capitol Hill. Carefully calibrated counter terrorism legislation, sufficient resources, and public discourse in hearings such as these are key. Your support, coupled with the force of our sustained diplomatic and political efforts, will help us drain swamps in Afghanistan and wherever else states are not mustering the political will to confront terrorists.

We have had success over the last 20 years. This success can be attributed to our commitment to stay the course on a tough counter terrorism policy, and to rally international support. Applying diplomatic pressure, raising political will, levying sanctions - these actions have made many corners of this world intolerable for terrorists.

We must continue to stay the course, while adjusting to new geographic threats and the changing face of terrorism. We must maintain strong political will here on the Hill and in the Administration to be tough on terrorism and push our allies to do the same.

Mr. Chairman, thank you again for the opportunity to appear before your committee today. I look forward to answering any questions members of the committee may have.

(end text)

APPENDIX - 8

India-US Vision 2000 Statement

BBC Summary of World Broadcasts

Wednesday, March 22, 2000

Text of India-US Vision 2000 Statement
Institutional dialogue between India and the United States

India and the United States have pledged to be "partners in peace, with a common interest in and complementary responsibility for ensuring regional and international security" in the new century. In a press release issued by the Indian Ministry of External Affairs entitled: "India -US Relations: A vision for the 21st century", the two countries stated their pledge to bolster joint efforts to counter terrorism and strengthen international security, acknowledging that tensions in South Asia can be resolved only be South Asian nations. The statement said the two countries were prepared to work together to prevent the proliferation of nuclear weapons and their means of delivery, despite their differences over the means of achieving such a goal, and pledged to work together to prevent the spread of dangerous technologies. The two countries also pledged to work together to preserve stability and growth in the global economy, to meet global environmental challenges, to fight the spread of infectious diseases and to strengthen their bilateral partnership, "always seeking to reconcile [their] differences through dialogue and engagement".

At the dawn of a new century, Prime Minister Vajpayee and President Clinton resolve to create a closer and qualitatively new relationship between India and the United States.

We are two of the world's largest democracies. We are nations forged from many traditions and faiths, proving year after year that diversity is our strength. From vastly different origins and experiences, we have come to the same conclusions: that freedom and democracy are the strongest bases for both peace and prosperity, and that they are universal aspirations, constrained neither by culture nor levels of economic development.

There have been times in the past when our relationship drifted without a steady course. As we now look towards the future, we are convinced that it is time to chart a new and purposeful direction in our relationship.

Globalization is erasing boundaries and building networks between nations and peoples, economies and cultures. The world is increasingly coming together around the democratic ideals India and the United States have long championed and lived by.

Together, we represent a fifth of the world's people, more than a quarter of the world's economy. We have built creative, entrepreneurial societies. We are

leaders in the information age. The currents of commerce and culture that link our societies run strong and deep. In many ways, the character of the 21st century world will depend on the success of our cooperation for peace, prosperity, democracy and freedom.

That presents us with an opportunity, but also a profound responsibility to work together. Our partnership of shared ideals leads us to seek a natural partnership of shared endeavors.

In the new century, India and the United States will be partners in peace, with a common interest in and complementary responsibility for ensuring regional and international security. We will engage in regular consultations on, and work together and with others for, strategic stability in Asia and beyond. We will bolster joint efforts to counter terrorism and meet other challenges to regional peace. We will strengthen the international security system, including in the United Nations and support the United Nations in its peacekeeping efforts. We acknowledge that tensions in South Asia can only be resolved by the nations of South Asia. India is committed to enhancing cooperation, peace and stability in the region.

India and the United States share a commitment to reducing and ultimately eliminating nuclear weapons, but we have not always agreed on how to reach this common goal. The United States believes India should forgo nuclear weapons. India believes that it needs to maintain a credible minimum nuclear deterrent in keeping with its own assessment of its security needs. Nonetheless, India and the US are prepared to work together to prevent the proliferation of nuclear weapons and their means of delivery. To this end, we will persist with and build upon the productive bilateral dialogue already underway.

We reaffirm our respective voluntary commitment to forgo further nuclear explosive tests. We will work together and with others for an early commencement of negotiations on a treaty to end the production of fissile materials for nuclear weapons. We have both shown strong commitment to export controls, and will continue to strengthen them. We will work together to prevent the spread of dangerous technologies. We are committed to build confidence and reduce the chances of miscalculation. We will pursue our security needs in a restrained and responsible manner and will not engage in nuclear and missile arms races. We will seek to narrow our differences and increase mutual understanding on non-proliferation and security issues. This will help us to realize the full potential of Indo-US relations and contribute significantly to regional and global security.

The true measure of our strength lies in the ability of our people to shape their destiny and to realise their aspirations for a better life. That is why the United States and India are and will be allies in the cause of democracy. We will share our experience in nurturing and strengthening democratic institutions the world over and fighting the challenge to democratic order from forces such as terrorism. We will cooperate with others to launch an international Community of Democracies this year.

The United States applauds India's success in opening its economy, its achievements in science and technology, its commitment to a new wave of economic expansion and reform, and its determination to bring the benefits of

economic growth to all its people. Our nations pledge to reduce impediments to bilateral trade and investment and to expand commerce between us, especially in the emerging knowledge-based industries and high-technology areas.

We will work together to preserve stability and growth in the global economy as well. And we will join in an unrelenting battle against poverty in the world, so that the promise of a new economy is felt everywhere and no nation is left behind. That is among the fundamental challenges of our time. Opening trade and resisting protectionism are the best means for meeting it. We support an open, equitable and transparent rule-based multilateral trading system, and we will work together to strengthen it. We agree that developed countries should embrace policies that offer developing countries the opportunities to grow, because growth is the key to rising incomes and rising standards. At the same time, we share the conviction that human development also requires empowerment of people and availability of basic freedoms.

As leaders in the forefront of the new high-technology economy, we recognize that countries can achieve robust economic growth while protecting the environment and taking action to combat climate change. We will do our part to meet the global environmental challenges, including climate change and the impacts of air and water pollution on human health.

We also pledge a common effort to battle the infectious diseases that kill people and retard progress in so many countries. India is at the forefront of the global effort that has brought us to the threshold of the eradication of polio. With leadership, joint research and application of modern science, we can and will do the same for the leading killers of our time, including AIDS, malaria and tuberculosis.

We are proud of the cooperation between Indians and Americans in advancing frontiers of knowledge. But even as we unravel the mysteries of time and space, we must continue to apply our knowledge to older challenges: eradicating human suffering, disease and poverty. In the past, our cooperation helped ease mass hunger in the world. In the future, it will focus as well on the development of clean energy, health and education.

Our partnership is not an end in itself, but a means to all these ends. And it is reinforced by the ties of scholarship, commerce, and increasingly of kinship among our people. The industry, enterprise and cultural contributions of Americans of Indian heritage have enriched and enlivened both our societies.

Today, we pledge to deepen the Indian-American partnership in tangible ways, always seeking to reconcile our differences through dialogue and engagement, always seizing opportunities to advance the countless interests we have in common. As a first step, President Clinton has invited Prime Minister Vajpayee to visit Washington at a mutually convenient opportunity, and the Prime Minister has accepted that invitation. Henceforth, the president of the United States and the prime minister of India should meet regularly to institutionalize our dialogue. We have also agreed on and separately outlined an architecture of additional high-level consultations, and of joint working groups, across the broad spectrum of areas in which we are determined to institutionalise our enhanced cooperation. And we will encourage even stronger people-to-people ties.

For India and the United States, this is a day of new beginnings. We have before us for the first time in 50 years the possibility to realise the full potential of our relationship. We will work to seize that chance, for our benefit and for all those with whom we share this increasingly interdependent world.

Atal Behari Vajpayee	William Jefferson Clinton
Prime Minister of India	President of the United States of America

Done on 21st March 2000 at New Delhi

1. During the visit of President Clinton to Delhi in March 2000, Prime Minister Vajpayee and President Clinton agreed as part of their vision for the future relationship that a regular, wide-ranging dialogue is important for achieving the goal of establishing closer and multifaceted relations between India and the United States and for the two countries to work jointly for promotion of peace and prosperity in the 21st century. The two leaders agreed on a number of steps to intensify and institutionalize the dialogue between India and the United States.

2. The Prime Minister of India and the President of the United States will hold regular bilateral 'summits' in alternating capitals or elsewhere, including on the occasions of multilateral meetings, to review the bilateral relations and consult on international developments and issues. They will remain in frequent contact on telephone and through letters.

3. The two countries will also hold an Annual Foreign Policy Dialogue at the level of the external affairs minister of India and the secretary of state of the United States. This dialogue will be broad-based and touch upon all aspects of India-US relations, including considering the work of other groups as appropriate.

4. The two countries also consider the ongoing Dialogue on Security and Non-proliferation between the external affairs minister of India and the deputy secretary of state of the United States important for improving mutual understanding on bilateral, regional and international security matters. They agreed that this dialogue should continue and take place semi-annually or as often as considered desirable by both sides. The principals of this dialogue will establish expert groups on specific issues as considered desirable and appropriate.

5. Foreign Office consultations between the foreign secretary of India and the under secretary of state for political affairs of the United States will continue. The two leaders believe that close cooperation between the two countries is a factor of stability in the politically and culturally diverse and rapidly transforming Asia. A dialogue on Asian security will also be conducted as part of the Foreign Office Consultations. The two sides will also stay in close touch and consult on international democracy initiatives.

6. The two leaders consider combating international terrorism as one of the most important global challenges. They expressed satisfaction at the establishment of the Joint Working Group on Counter-Terrorism and its productive first meeting in February 2000. They agree that the Joint Working Group should continue to

meet regularly and become an effective mechanism for the two countries to share information and intensify their cooperation in combating terrorism.

7. The two leaders see an enormous potential for enhancement of economic and business relations between the two countries in the Knowledge Age. They decided to institutionalize bilateral economic dialogue. They will keep themselves informed and follow developments in the bilateral economic dialogue closely through a high-level coordinating group. The coordinating group will be led on the Indian side by Prime Minister's Office with the support of Ministry of External Affairs and, on the US side by the White House with the support of the State Department.

The coordinating group will develop a common economic agenda for and undertake preparations for the heads of government meetings. With broad inter-agency and inter-ministerial representations at senior official level, it would convene regularly to facilitate close coordination on the various issues raised in the ministerial dialogues and ensure that discussions therein complement and reinforce broad economic and foreign policy objectives, including the deepening of bilateral cooperation on high technology and information technology issues.

Indo-US Financial and Economic Forum: The Indian Minister of Finance and the US Secretary of the Treasury and will host a forum on finance and investment issues, macroeconomic policy and international economic developments at regular intervals. Their meetings at ministerial level would be supplemented by sub-cabinet meetings and involve, as appropriate, the participation of Securities and Exchange Commission, Federal Reserve, Council of Economic Advisers, and other officials of the US government and the Securities and Exchange Board of India, Reserve Bank of India and other officials of government of India.

Indo-US Commercial Dialogue: The minister of commerce and industry of India and the US secretary of commerce will lead a dialogue to deepen ties between the Indian and American business communities. The dialogue will encompass regular government-to-government meetings to be held in conjunction with private sector meetings. Its aim will be to (a) facilitate trade (b) maximize investment opportunities across a broad range of economic sectors, including information technology, infrastructure, biotechnology, and services. Participation will include, as appropriate, representatives of other cabinet agencies and ministries on both sides. Close contact will be maintained with business associations, and activities will be planned with the benefit of such private sector input, including the establishment of subcommittees to pursue specific projects or sectoral issues of mutual interest.

Indo-US Working Group on Trade: The Ministry of Commerce and other concerned ministries/departments of government of India and the United States trade representative will engage in regular discussion to enhance cooperation on trade policy. As appropriate, individual trade issues could be examined in greater depth with the participation of other agencies with corresponding responsibilities and through creation of sub-groups. The group will serve as a locus of consultation on a broad range of trade-related issues, including those pertaining to the World Trade Organization. The group will receive inputs from the private sector

(including trade policy issues identified in the Indo-US Commercial Dialogue) as appropriate.

8. The two leaders consider cooperation between the two countries in energy and environment an important part of their vision for the future. They have agreed to set up a Joint Consultative Group on Clean Energy and Environment. The group will hold periodic ministerial/high level meetings as desirable and appropriate and will lay emphases on collaborative projects, developing and deploying clean energy technologies, public and private sector investment and cooperation, and climate change and other environmental issues. The co-conveners of the group will be the Ministry of External Affairs of India and the Department of State of the United States.

9. The two leaders believe that the strong scientific resources of the two countries provide excellent opportunities for scientific collaboration between them. They agree to set up an India-US Science and Technology Forum. The forum shall promote research and development, the transfer of technology, the creation of a comprehensive electronic reference source for Indo-US science and technology cooperation, and the electronic exchange and dissemination of information on Indo-US science and technology cooperation, and other programmes consistent with the previous practice of the US-India Foundation.

10. Institutional dialogue in other areas will be considered as mutually agreed.

India and the US agree to establish an Indo-US Science and Technology Forum to facilitate scientific and technological cooperation

India and the United States signed an agreement today to establish the Indo-US Science and Technology Forum to facilitate and promote the interaction, of government, academia, and industry in science, technology and other related areas. The agreement was signed by the minister of human resource development, science and technology and ocean development, Dr Murli Manohar Joshi, and the US secretary of state, Madeleine Albright, on the first day of US President Clinton's state visit to India.

The forum will focus on issues of common concern and activities of mutual benefit while exploring trends in science and technology. The forum will promote research and development, the transfer of technology, the creation of a comprehensive electronic reference source for Indo-US science and technology cooperation, and the electronic exchange and dissemination of information on Indo-US science and technology cooperation.

The forum will establish an electronic reference source in order to promote an active electronic exchange of ideas and opportunities in Indo-US science and technology cooperation. The forum will also commission studies, reports and papers and would assist in facilitating and promoting joint collaboration of projects.

The forum will be registered as a non-profit society under the India Society Act and will have the ability to receive funds from public and private sources to carry out its activities. A governing body composed of seven members from the

United States and seven from India will be established to provide guidance and the leadership to the forum.

The forum, will use the USIF interest earnings originally derived from the Agreement Between the Government of the Republic of India and the Government of the United States of America on Educational, Cultural and Scientific Cooperation, signed at New Delhi, 7th January 1987, to create an endowment to support the operations of the forum. The forum in its capacity as an Indian society, may also seek to raise funds from industry and private sources, in India and the United States, to support its activities, in accordance with the laws, regulations, and policies of the country in which the funds are being raised.

New Delhi 21st March, 2000.

APPENDIX - 9

Hearing on Political and Military Developments in India

Senate Committee on Foreign Relations, Near East and South Asia Subcommittee, May 25, 1999

Stephen P. Cohen, *Senior Fellow*, Foreign Policy Studies

Mr. Chairman, members of the Subcommittee:

I am honored to be invited to testify before this Subcommittee on developments in India and their implications for American policy. India is a much-neglected country and has been invisible to many

American policy makers over the past several years. Our neglect has complicated our attempt to develop a balanced policy towards what will soon be the world's largest country, and has hurt several important American interests—including our interest in preventing or slowing the horizontal proliferation of nuclear weapons. The detonation of eleven nuclear devices in South Asia last May must be counted as one of the great failures of recent American policy—all the more so because it was foreseeable and preventable.

While I have specific comments on pending legislation, today I will cast a somewhat wider net. It is evident to me, as a student of South Asia and US policy towards India and Pakistan for over thirty years, that the problems we have had with our regional policy stem in some cases from a fundamental misunderstanding of India and Pakistan, and the way in which our own policies have shaped—or misshaped—developments in the region. I will confine myself to three miscalculations, each of which each have specific implications for American policy.

India as a Revolutionary State

First, we need to understand that India is a truly revolutionary state, in that there are radical changes underway in its domestic political and economic order. From about 1989, we have witnessed the inauguration, or the intensification of five separate revolutions.

I. There has been a caste and class revolution, in which hitherto suppressed or disenfranchised Indians have sought a bigger share of the pie, often through the ballot box, but sometimes through the gun.

II. We have witnessed the lift-off of an economic revolution, hesitant at first, and now perhaps stalled, but a revolution that has widespread support because only through a transformation of the Indian economy can the system deliver the goods to these newly assertive and powerful castes.

III. India has also seen the beginning of a federal revolution. As new regional ethnic and caste groups achieve power, their first goal is to capture their state government. As is the case in the United States, the party that controls

New Delhi may not control the states, and power at the center must be shared between parties who are rivals at the state level

IV. Led by the Bharatiya Janata Party and its associated social organizations. India is now experiencing an ideological revolution, in which long-established norms and values are being challenged. Again, this can produce shocking acts of violence, as in the case of the recent murder of an Australian missionary and his sons.

V. Finally, as in many places around the world, India is subjected to the information revolution as ideas and images circulate more freely than ever before. This is accelerated by satellite television and the internet, and cheap travel and growing literacy.

Three points must be made about these revolutions.

First, they are being waged largely by peaceful means, contained within India's durable and flexible democratic framework. Historically, India has seen the repeated transformation of revolutionary movements into evolutionary movements, there is no reason to expect that the present social tensions, violence, and disorder will not eventually subside. More than in any other large non-Western democracy, the ballot box is seen as the source of legitimacy.

Second, these revolutions occur unevenly across India. Some Indian states remain backward and poor, others have powerful separatist movements. Yet other states have experienced phenomenal growth in income, literacy, voter participation, and good government.

Third, India can give as good as it gets. While Indian intellectuals complain about Western cultural imperialism, especially the American variety, Indian films, music, novels, and stories are pervasive throughout South, Southwest, and even Central Asia, and are establishing a toehold in the West. These reflect India's powerful culture, adaptiveness, and ability to compete.

The Strategic Transformation of South Asia

These social, economic, and cultural revolutions have occurred simultaneously with two major foreign policy crises, one in 1987 (the so-called "Brasstacks" crisis during military exercises) and a second in 1990 (a compound crisis involving the Kashmir uprising, nuclear threats, and two weak governments). These, in turn, took place just before and during rapid changes in the larger international environment, especially the decline and fall of the former Soviet Union.

These two regional crises, while real, were misunderstood by many Americans. When coupled with the domestic unrest that has grown in India (and Pakistan), they conveyed the impression of a region on the brink of war—a war that after 1990, could have turned nuclear. There were crises, real threats may have been issued, and there were probably nuclear weapons available to both sides in 1990, but Indians and Pakistanis are not fools, and they learned the lessons of what was their own version of the Cuban missile crisis. I am afraid that we have not taken seriously, nor looked closely, at the way in which these two states have managed to

contain disputes, especially Kashmir, which not only affect their vital security interests but their very national identities.

America's Influence in South Asia

Finally, the United States has become a significant factor in Indian (and Pakistani) strategic calculations. Whether we like it or not our laws, our policies, and even our public statements affect their views of each other and even of China Too often, however, we have approached the region with a bludgeon, a stick instead of a carrot, treating both states as immature and irresponsible. They have made serious political and military mistakes in the past, but perhaps no more, and no more serious ones, than those committed by other major powers, including ourselves.

Our attempts to legislate their security policy have been doomed to fail from the start. No country, when its vital interests are at stake, will forego any weapon or any technology. While I strongly believe that by going nuclear they may have actually weakened their security, their decisions become perfectly sensible, and were predictable, when one understands the domestic and strategic context in which they were made. Both governments, first Pakistan, now India, have had to conduct foreign and security policy while trying to manage a tumultuous domestic political situation. In both, foreign policy becomes hostage to domestic politics, often driving governments to more extreme policies than they would otherwise choose, and neither government has yet fine-tuned the principle of bipartisanship in foreign affairs.

Implications for American Policy and Legislation

These three sets of American miscalculations (our misunderstanding of South Asian political dynamics, our inattention to the region during a period of major international change, and our failure to appreciate how we can best influence strategic and military decisions) have led to a number of specific errors of perception and policy.

First, our incomprehension of India's domestic revolution led to an under appreciation of the way in which domestic politics now influences strategic and military decisions. Paradoxically, such decisions as adherence to the Comprehensive Test Ban Treaty (CTBT) are both more and less important to Indian governments. They are more important because this is an issue that could be used to attack a very weak coalition government; they are less important because Indians are less interested in foreign policy issues than before. If we had developed a broader relationship with the Indian people, then such issues as the CTBT, the Fissile Material Cutoff Treaty (FMT), restraints on the development of nuclear weapons and on further flight-testing of missiles, and cooperation on containing the spread of weapons of mass destruction and their associated technologies would have been placed in a larger, more "normal" framework. Instead, our single-minded pursuit of the proliferation issue made it impossible to expand these other ties, with the consequence that we wound up with the worst of both worlds: a proliferated India (and Pakistan), and even deeper suspicion about economic and strategic ties with the United States.

Second, our failure to understand the significant changes in India-Pakistan relations after their two crises, and the simultaneous end of the Cold War led us to treat the region as crisis-prone: "the most likely place in the world for a nuclear war." Pursuing a one-issue agenda, non-proliferation, we turned to China as a partner in South Asia. Yet, China has been part of the problem as well as part of the solution and our failure to understand China's key role in arming the Pakistanis and as a factor in Indian calculations was a serious mistake. I agree with our policy of "engagement" with China, but that did not preclude a similar policy towards India. Instead, our China policy looks to Indians very much like an alliance. As for our focus on non-proliferation, while well-intentioned it conveyed the impression that this was our only regional interest, whereas we have diverse and complex interests there.

Third, we have been trying to conduct a complex diplomacy armed only with sticks and stones. Our diplomacy, constrained by restrictive and highly specific legislation, had nothing to offer but threats, and these failed to work. Inadvertently, we strengthened the hands of the anti-American groups in both countries as well as those who sought to build and deploy nuclear weapons: they could now argue that India had come in the American gunsight, and that they had better arm to protect their countries. Conversely, we weakened the standing of the many Indians who sought to cooperate with us on important economic, strategic, and security issues.

Toward a Fresh Start?

I would strongly urge that the Senate follow two broad paths. First, it should move speedily to allow the Executive branch as much freedom as necessary on existing economic sanctions and technology embargoes. The latter appear to Indians and Pakistanis to be discriminatory "blacklists" against regional institutions and even individuals. Sanctions failed to deter India and Pakistan from moving ahead with their nuclear programs, they can be lifted.

The argument that we have to "make an example" of India and Pakistan to deter other countries from acquiring nuclear weapons is well-intentioned but factually impossible to sustain. While sanctions can be a useful tool of diplomacy (and certainly give the impression of doing something), they must be evaluated in their application, not in their abstract.

The remaining candidates for nuclear status fall into two broad categories, allies and rogues. These allies (for example, Turkey, South Korea, and Japan) look to the United States for their security. Our commitment to their defense is far more important to them at the moment than risking our ire with a nuclear weapons program that may be ineffective in any case. The rogues are well known, most are already under punitive regimes, some are under the threat of military attack—and none regard India and Pakistan as a role model.

Further, neither India nor Pakistan have been "rogues," they are vast, complex democracies, struggling primarily with issues of domestic reform. This has led them to turn inward, not outward. We want to encourage this process, since the major security threats to both countries come from within—slow economic growth, illiteracy, separatist movements, terrorism, corruption, environmental:

degradation, extremist ideologies, and most serious of all, incompetent governance. I think we can assume that both states will work out for themselves the fact that nuclear weapons are of little use against these enemies, but we should not underestimate that dangers to democracy in both countries, especially Pakistan. In the past India had its brief spell of civilian dictatorship and Pakistan has had its long periods of military rule. It now seems to be slipping into an elected autocracy, intolerant of any autonomous center of power. The Nawaz Sharif government has systematically attacked most of the institutions needed to sustain a genuine democracy, most recently the press and non-governmental organizations. This has very serious implications for not only our nuclear policy but our larger relationship.

Second, we need to undertake a comprehensive review of our India and Pakistan policy. Right now, we have a nonproliferation policy (which has demonstrably failed), we have warm and positive feelings towards India (but feelings, no matter how warm, do not make a policy), we have the residue of a special relationship with a former ally, Pakistan, and we have various special interest groups advocating particular goals. These do not add up to a whole. I urge the committee to act upon current proposed legislation as a step towards a comprehensive review of US policy.

Having spent two years in the government as a policy planner, I know how difficult it is for governments to think more than a few weeks or even a few months ahead. Practically speaking, the only time fresh thinking takes place is when one administration (or one Congress) succeeds another. Without completely giving up hope in the negotiations now underway between Strobe Talbott and the lame-duck Indian foreign minister, Jaswant Singh, Congress should, as it did in past decades, undertake its own review of relations with this one-quarter of the world. A multi-year suspension of most sanctions will bring us well into the next administration. It is best that such a review be undertaken before that administration assumes office so as to assist it in conducting its own reexamination of American policy.

APPENDIX - 10

Draft Report of National Security Advisory Board on Indian Nuclear Doctrine, 17 August 1999

1. PREAMBLE

1.1 The use of nuclear weapons in particular as well as other weapons of mass destruction constitutes the gravest threat to humanity and to peace and stability in the international system. Unlike the other two categories of weapons of mass destruction, biological arid chemical weapons which have been outlawed by international treaties, nuclear weapons remain instruments for national and collective security, the possession of which on a selective basis has been sought to be legitimised through permanent extension of the Nuclear Non-proliferation Treaty (NPT) in May 1995. Nuclear weapon states have asserted that they will continue to rely on nuclear weapons with some of them adopting policies to use them even in a non-nuclear context. These developments amount to virtual abandonment of nuclear disarmament. This is a serious setback to the struggle of the international community to abolish weapons of mass destruction.

1.2. India's primary objective is to achieve economic, political, social, scientific and technological development within a peaceful and democratic framework. This requires an environment of durable peace and insurance against potential risks to peace and stability. It will be India's endeavour to proceed towards this overall objective in cooperation with the global democratic trends and to play a constructive role in advancing the international system toward a just, peaceful and equitable order.

1.3 Autonomy of decision making in the developmental process and in strategic matters is an inalienable democratic right of the Indian people. India will strenuously guard this right in a world where nuclear weapons for a select few are sought to be legitimised for an indefinite future, and where there is growing complexity and frequency in the use of force for political purposes.

1.4. India's security is an integral component of its development process. India continuously aims at promoting an ever-expanding area of peace and stability around it so that developmental priorities can he pursued without disruption.

1.5. However, the very existence of offensive doctrine pertaining to the first use of nuclear weapons and the insistence of some nuclear weapons states on the legitimacy of their use even against non-nuclear weapon countries constitute a threat to peace, stability and sovereignty of states.

1.6 This document outlines the broad principles for the development, deployment and employment of India's nuclear forces. Details of policy and strategy concerning force structures, deployment and employment of nuclear forces will flow from this framework and will be laid down separately and kept under constant review.

2. Objectives

2.1. In the absence of global nuclear disarmament India's strategic interests require effective, credible nuclear deterrence and adequate retaliatory capability should deterrence fail. This is consistent with the UN Charter, which sanctions the right of self-defence.

2.2. The requirements of deterrence should be carefully weighed in the design of Indian nuclear forces and in the strategy to provide for a level of capability consistent with maximum credibility, survivability, effectiveness, safety and security.

2.3. India shall pursue a doctrine of credible minimum nuclear deterrence. In this policy of "retaliation only", the survivability of our arsenal is critical. This is a dynamic concept related to the strategic environment, technological imperatives and the needs of national security. The actual size components, deployment and employment of nuclear forces will be decided in the light of these factors. India's peacetime posture aims at convincing any potential aggressor that:

(a) any threat of use of nuclear weapons against India shall invoke measures to counter the threat and (b) any nuclear attack on India and its forces shall result in
punitive retaliation with nuclear weapons to inflict damage unacceptable to the aggressor.

2.4 The fundamental purpose of Indian nuclear weapons is to deter the use and threat of use of nuclear weapons by any State or entity against India and its forces. India will not be the first to initiate a nuclear strike, but will respond with punitive retaliation should deterrence fail.

2.5. India will not resort to the use or threat of use of nuclear weapons against States which do not possess nuclear weapons, or are not aligned with nuclear weapon powers.

2.6. Deterrence requires that India maintain:

(a) Sufficient, survivable and operationally prepared nuclear forces,
(b) a robust command and control system,
(c) effective intelligence and early warning capabilities
(d) comprehensive planning and training tor operations in line with the strategy, and
(e) the will to employ nuclear forces and weapons.

2.7. Highly elective conventional military capabilities shall be maintained to raise the threshold of outbreak both of conventional military conflict as well as that of threat or use of nuclear weapons.

3. Nuclear Forces

3.1. India's nuclear forces will be effective, enduring, diverse, flexible, and responsive to the requirements in accordance with the concept of credible

minimum deterrence. These forces will be based on a triad of aircraft, mobile land-based missiles and sea-based assets in keeping with the objectives outlined above. Survivability of the forces will be enhanced by a combination of multiple redundant systems, mobility, dispersion and deception.

3.2. The doctrine envisages assured capability to shift from peacetime deployment to fully employable forces in the shortest possible time, and the ability to retaliate effectively even in a case of significant degradation by hostile strikes.

4. Credibility and Survivability

The following principles are central to India's nuclear deterrent:

4.1. Credibility: Any adversary must know that India can and will retaliate with sufficient nuclear weapons to inflict destruction and punishment that the aggressor will find unacceptable if nuclear weapons are used against India and its forces.

4.2. Effectiveness: The efficacy of India's nuclear deterrent be maximised through synergy among all elements involving reliability, timeliness, accuracy and weight of the attack.

4.3. Survivability:

(i) India's nuclear forces and their command and control shall be organised for very high Survivability against surprise attacks and for rapid punitive response. They shall be designed and deployed to ensure survival against a first strike and to endure repetitive attrition attempts with adequate retaliatory capabilities for a punishing strike which would be unacceptable to the aggressor.

(ii) Procedures for the continuity of nuclear command and control shall ensure a continuing capability to effectively employ nuclear weapons.

5. Command and Control

5.1. Nuclear weapons shall be tightly controlled and released for use at the highest political level: (the authority to release nuclear weapons for use resides in the person of the Prime Minister of India, or the designated successors).

5.2. An effective and survivable command and control system with requisite flexibility and responsiveness shall be in place. An integrated operational plan, or a series of sequential plans, predicted on strategic objectives and a targeting policy shall form part of the system

5.3. For effective employment, the unity of command and control of nuclear forces including dual capable delivery system, shall be ensured.

5.4. The survivability of the nuclear arsenal and effective command, control, communications, computing, intelligence and information (C4I2) systems shall be assured.

5.5. The Indian defence forces shall be in a position to, execute operations in an NBC environment with minimal degradation.

5.6. Space based and other assets shall be created to provide early warning, communications, damage / detonation assessment.

6. Security and Safety

6.1. Security: Extraordinary precautions shall be taken to ensure that nuclear weapons, their manufacture, transportation and storage are fully guarded against possible theft, loss, sabotage, damage or unauthorised access or use.

6.2. Safety is an absolute requirement and tamper proof procedures and systems shall be instituted to ensure that unauthorised or inadvertent activation / use of nuclear weapons does not take place and risks of accident are avoided.

6.3. Disaster control: India shall develop an appropriate disaster control system capable of handling the unique requirements of potential incidents involving nuclear weapons and materials.

7. Research and Development

7.1. India should step up efforts in research and development to keep up with technological advances in this field.

7.2. While India is committed to maintain the deployment of a deterrent which is both minimum and credible, it will not accept any restraints on building its R & D capability.

8. Disarmament and Arms Control

8.1. Global, verifiable and non-discriminatory nuclear disarmament is a national security objective. India shall continue its efforts to achieve the goal of a nuclear weapon-free world at an early date.

8.2. Since no-first use of nuclear weapons is India's basic commitment, every effort shall be made to persuade other States possessing nuclear weapons to join an international treaty banning first use.

8.3. Having provided unqualified negative security assurances, India shall work for internationally binding unconditional negative security assurances by nuclear weapon states to non-nuclear weapon states.

8.4. Nuclear arms control measures shall be sought as part of national security policy to reduce potential threats and to protect our own capability and its effectiveness.

8.5. In view of the very high destructive potential of nuclear weapons, appropriate nuclear risk reduction and confidence building measures shall be sought, negotiated and instituted.

APPENDIX - 11

THE CRISIS IN SOUTH ASIA
Assistant Secretary of State Karl Inderfurth
Senate Foreign Relations Committee
Near East and South Asia Subcommittee
03 June 1998

Mr. Chairman, since I last testified before this Committee only twenty-one days ago, events in South Asia have continued to proceed in a very dangerous direction. In addition to the series of nuclear tests conducted by India, Pakistan tested nuclear devices on May 28 and May 30. India and Pakistan have declared themselves nuclear powers, and made statements -- from which they have since backed away -- that they intend to fit their ballistic missiles with nuclear warheads. Indian leaders have expressed their intention to conduct a national security review, to include plans for the development and possible deployment of nuclear weapons, a threshold that if crossed could cock the nuclear trigger.

In Kashmir, there has been continuing worrisome activity along the line of control, including exchanges of fire and troop movements. Such events have been common in the past, and it is difficult to determine the level of threat these most recent incidents pose. Neither side appears intent on provoking a military confrontation, though we cannot rule out the possibility for further provocative steps by either side and remain concerned about the potential for miscalculation and escalation. We have informed both New Delhi and Islamabad about our concerns in this regard, in the strongest possible terms.

U.S. Response:

As you know, Mr. Chairman, Pakistan's decision to test was not entirely unexpected, and the Administration and in particular the President worked diligently to try to persuade the Pakistani government to capture the political and moral high ground. The President said it best. Pakistan missed a "priceless opportunity" to gain the world's support, appreciation, and assistance. I am very grateful to you, Mr. Chairman, for all that you did in the two week period after India tested, including your introduction of legislation to repeal the Pressler amendment. While we did not succeed in our ultimate objective, I believe we did the right thing, and in the process established a benchmark for how the Executive branch and the Congress can and should cooperate when important national interests are at stake.

The back-to-back tests by India and Pakistan unquestionably represent a set-back for the search for peace and stability in the South Asian subcontinent, and indeed, for the cause of global non-proliferation and moving towards a world where fewer states are relying on nuclear weapons for their greatness or for their defense.

But that cause, if anything, is even more important today than it was a few short weeks ago, before the Indian tests. The United States is going to stay at

it, and we are working very hard to come up with the most promising and appropriate next steps.

Just as we responded to the Indian tests, the United States has moved swiftly to invoke sanctions and to condemn Pakistan's reciprocal tests. This type of behavior, Mr. Chairman, we find especially troubling as it threatens to spiral out of control. Both India and Pakistan have taken pains to assure us that they do not wish to start a conflict, yet when each has found itself the object of international outrage, it has acted provocatively in an effort to get the other to respond, thereby shifting blame. We can only hope that the two countries realize where such behavior can lead, and that they cease and desist immediately lest the tit-for-tat cycle lead to military confrontation, with potentially devastating consequences.

In the short term, Mr. Chairman, we are focusing our efforts on ways to prevent further provocative acts, to get both sides to end further tests, and to prevent related escalation such as missile testing and deployment. We are encouraging the immediate resumption of direct dialogue between India and Pakistan and are working to shore up the international non-proliferation regime. In the end, Mr. Chairman, no effort to restore regional stability or resolve Indo-Pakistani tensions can be effective unless the brunt of the work is borne by India and Pakistan themselves. Now is the time for them to demonstrate to the world that they are responsible nations, capable of talking to one another, and willing to address seriously the issues between them. These are sovereign nations, democracies both, and they must find ways to communicate as they have in the past -- particularly in view of the gravity of the current state of affairs. We and the rest of the international community urge them to do so.

Looking Ahead:

Now and for the foreseeable future, we will enforce sanctions firmly, correctly, and promptly, in full compliance with the Glenn Amendment and other legislative authorities. We will continue working to ensure the widest possible multilateral support for the steps we have taken. A vigorous enforcement regime will be necessary for India and Pakistan to perceive that their actions have seriously eroded their status in the international arena, will have a substantial negative impact on their economies, and that they have compromised, rather than enhanced their security. We will firmly reject any proposal for India or Pakistan to join the NPT as a nuclear weapon state. We do not believe that nations should be rewarded for behavior that flies in the face of internationally accepted norms.

At the same time, we do not wish to make international pariahs out of either India or Pakistan. We believe the purpose of these sanctions should be to influence behavior, not to punish simply for the sake of punishment. They should not be used to cause the economic collapse of either state or prevent the meeting of basic humanitarian needs. Wherever possible, and as the law permits, we should work to reduce adverse effects on the competitiveness or operations of U.S. businesses.

In the longer term, Mr. Chairman, we will seek international support for our goals, including the need to secure active and responsible adherence to international non-proliferation norms and a qualitative improvement in Indo-Pakistani relations. We will be looking for both parties to take such steps as:

- Sign and ratio CTBT without delay or conditions.
- Halt production of fissile material and participate constructively in FMCT negotiations
- Accept IAEA safeguards on all nuclear facilities
- Agree not to deploy or test missile systems
- Maintain existing restraints against sharing nuclear and missile technology or equipment with others.
- Agree upon a framework to reduce bilateral tensions, including on Kashmir

In order to do this we will need to work cooperatively with the international community, and will seek to establish a common approach. As you know, Mr. Chairman, we are in the process of organizing a meeting of the Foreign Ministers of the five Permanent Members of the U.N. Security Council tomorrow, which will bring the full force of the P-5 behind the search for effective ways to ensure no more tests or escalation in the region. The meeting will also allow the P-5 to reaffirm its commitment to global non-proliferation through such mechanisms as the NPT, CTBT, and negotiations towards a fissile material cut-off treaty. We will urge signing and ratification of CTBT by India and Pakistan under the terms I just mentioned, and explore ways to de-escalate tensions between India and Pakistan and provide them the means to air their legitimate concerns. We will work to keep the international community engaged and will follow up with a meeting of the G-8 in London next week.

Conclusions:

Mr. Chairman, we believe that the approach we have laid out is sound, and that the P-5 conference will help us achieve over time the objectives we have established. We will work very hard to see that these significant steps will be taken, and that they will result in a more stable region and help to repair the damage done to the international non-proliferation regime. That said, Mr. Chairman, I regret that I must conclude on a somber note. Even if we succeed in meeting these difficult challenges, it will be some time before the world looks at India and Pakistan through the same eyes as it did before May 11th, when India tested. Then, we were making serious progress in establishing that the United States wanted to enhance its relationship with both countries, on a full range of issues, as together we approached the 21st century. We saw great promise in a region where democracy had a solid foundation, where U.S. trade and commercial interests were firmly established and beginning to flourish, where significant opportunities existed for expanding cooperation on such matters as health, education, and the environment, and finally, where we were working with the two main protagonists on establishing areas of restraint on our key concerns about non-proliferation.

Today that view of the region has been dealt an enormous setback. In the past three weeks, India and Pakistan have conjured up all of the old and regrettable images of two nations hostage to 50 years of bitter enmity, and of the region as a place where only one issue -- non-proliferation -- matters. I would not want to leave you with the impression that we have foregone our desire to resume productive, cooperative, indeed warm relations with either India or Pakistan, or that we have lost faith in either government to do the right thing. We have not. But one of the legacies of recent events will be the resurrection in world opinion of the

old, narrow view of the subcontinent: India vs. Pakistan, the zero sum game. That legacy will probably endure for a long time. Speaking as one who has worked to change attitudes, perceptions, and old prejudices about the region, I am both saddened and deeply concerned by the recent turn of events.

Recently, one alarmed Indian politician asked a very simple question: "where does all this lead?" The leaders of India and Pakistan have the immediate responsibility to answer that question -- for the people of their countries and for the international community.

Thank you, Mr. Chairman.

APPENDIX - 12

U.S. DEPARTMENT OF STATE 95/03/07 TESTIMONY: R. RAPHEL ON U.S. POLICY TOWARDS SOUTH ASIA BUREAU FOR SOUTH ASIAN AFFAIRS

STATEMENT BY ROBIN RAPHEL ASSISTANT SECRETARY OF STATE FOR SOUTH ASIAN AFFAIRS BEFORE THE SENATE FOREIGN RELATIONS COMMITTEE ON NEAR EASTERN AND SOUTH ASIAN AFFAIRS March 7, 1995

Mr. Chairman and members of the Subcommittee, thank you for inviting me to testify today on the Administration's policy towards South Asia. I want to start by echoing Secretary Christopher's statement before the full Committee on February 14 that the imperative of American leadership, sustained by a bipartisan consensus, is a central lesson of this century. This is as true for South Asia as any other part of the world. I look forward to working with you and members of the committee to advance our interests in this increasingly important region.

OVERVIEW

All major categories of the International Affairs Budget submission for next fiscal year have applicability in South Asia. While the region's proportion of the overall request may be small, funding for these programs is important. --South Asia has great potential as an emerging market, and the United States is aggressively promoting trade and investment there. EXIM, OPIC, and TDA play an important role in supporting our rapidly expanding business ties.

Over 200 million South Asians live in countries with revitalized or newly installed and still fragile democratic institutions. We are working to reinforce those institutions, particularly in Bangladesh and Nepal.

Sustainable development is a critical need for South Asia, where the promise of prosperity through economic reform and expansion is threatened by widespread poverty, rapid population growth and environmental degradation. Our budget submission would support this through USAID programs, which my colleague Margaret Carpenter will describe in more detail, and through funding for international financial institutions, which play a very important role in the region

Our funding request for promoting peace would support our goals in several important areas. Our official initiatives and support for the efforts of NGOs to deal with the threat of proliferation in South Asia are continuing. South Asia has become a major source of a broad range of illicit narcotics and we are cooperating closely with regional governments to stop production and trafficking. Combating crime in general as well as terrorism remain important United States activities in South Asia.

Our humanitarian assistance programs in South Asia have a major impact, for example, assisting large refugee populations from Afghanistan, Bhutan, Sri Lanka and Burma while repatriation proceeds. We cannot predict whether our

disaster assistance will be needed in the coming year, but recent history has shown that natural catastrophe is all too frequent a visitor to the region.

BACKGROUND

Mr. Chairman I'd now like to put our budget request in a policy context. As elsewhere in the world, South Asian countries are in a period of complex interaction between unresolved historical tensions and the rapid transformation facing us all at the threshold of the 21st century. Adding to and accelerating this transformation, a dramatic move towards market-based economies continues throughout the region. In India all major groups, including the principal opposition parties, now favor this fundamental shift in policy. In the face of continuing political crisis in Bangladesh, the government and the opposition tell foreign businessmen their capital and their presence are welcome. The new Government of Sri Lanka, elected last fall, affirms its commitment to market-oriented economic policies and interest in foreign investment. Political turmoil and three changes of government in 1993 have not reversed the reform process in Pakistan. Yet longstanding disagreements and entrenched domestic political concerns sustain tensions between India and Pakistan, both of which are nuclear capable states. The ongoing internal conflict in Afghanistan demands our immediate attention. We know rising illicit narcotics production and consumption, rapid population growth, and increasing environmental degradation are longer-term threats not just to the region, but to the rest of the world. Human rights principles are all too often ignored throughout South Asia. And the democratic institutions that are vital to ensuring stability and accountability remain fragile and struggling in some states in the region, including Bangladesh, Nepal, and Pakistan.

UNITED STATES GOALS

Our top foreign policy goals in South Asia reflect the Administration's global priorities. Reducing tensions and helping to resolve conflicts peacefully No one takes lightly the dangers inherent in relations between India and Pakistan. They fought three wars between 1948 and 1972, and are still bitter rivals. Inflexible policies and attitudes on both sides aggravate serious tensions. These tensions are enhanced by the possession of a nuclear weapons capability by both countries. The Kashmir dispute polarizes the relationship between the two nations. We are continuing efforts to persuade them to begin a serious attempt to resolve this dispute. This must involve sustained, direct discussion between senior Indian and Pakistani officials. It requires the credible engagement of all the people of Jammu and Kashmir and the cessation of human rights abuses by security forces and militants. It also requires the end of outside assistance to the militancy against the Indian Government. The United States has offered to assist with this process, if India and Pakistan so request. We have no preferred outcome. But we recognize that a resolution is long overdue and essential for the long term stability of the region as a whole.

In Afghanistan, the United States actively supports the United Nations Special Mission to Afghanistan. The Chief of the UN Mission has conducted intensive and imaginative negotiations over the past months seeking to end the bloody conflict and establish an interim council. Reluctance of factional leaders to relinquish their personal power for the overall good of Afghanistan remains the major obstacle. While the intentions of the Taliban movement are unclear, its

leadership has expressed support in principle for a peaceful political process, and the UN Mission is pressing ahead to establish an interim council to take power from faction leaders. Outside assistance to individual faction leaders has only strengthened their intransigence. We have worked hard with like-minded states to stop material support and funding for the belligerent factions, and to support the UN efforts to foster a return of peace and stability to Afghanistan In the meantime, the U.S. has assisted refugees and those internally displaced due to the devastation of Kabul in 1994.

In Sri Lanka, the government has shown courage and vision in its moves to reopen a dialogue with the Liberation Tigers of Tamil Eelam (LTTE) in the North. We strongly support the continuation of these talks. Obtaining a lasting peace will be a long and arduous struggle. However, we are convinced that the Sri Lankan government is committed to this process and is acting in a spirit of openness and good faith. We urge the LTTE likewise to act in a manner that will further the prospects for a lasting and comprehensive peace, and to engage now on the substantive political agenda.

While confronting these serious problems in the region, we are also working closely with South Asian states in dealing with conflicts around the globe. We would not have imagined even five years ago that shared approaches to conflict resolution would have put South Asian and U.S. peacekeepers side-by-side in Cambodia, in Somalia, and in Haiti. Our combined efforts range in scale from a few dozen military observers aiding the conduct of elections to brigade-sized units in the most dangerous circumstances.

Preventing further development or deployment of weapons of mass destruction and ballistic missiles Both India and Pakistan could assemble a limited number of nuclear weapons in a relatively short period of time. Both seek to acquire or develop ballistic missiles that are capable of delivering nuclear warheads. South Asia is the one area of the world where a regional conflict has the potential to escalate to a nuclear exchange, with devastating consequences in the region and beyond.

I appreciate, Mr. Chairman, your recognition of the complexity of the issues of security and proliferation in South Asia, and your decision to devote a separate hearing the day after tomorrow to a discussion of their details. Encouraging free market economies and U.S. trade and investment with them South Asia is increasingly a region of intense economic growth and development. India's economic reform program has cleared the way for new levels of trade and investment between our two countries. This trend has been reinforced by recent high-level visits on both sides. India has been designated by the Commerce Department as one of the top ten "big emerging markets," giving it a special priority in our trade promotion efforts.

You have already heard about the tremendous success of visits by Secretary Brown and a business delegation to India, and by Secretary O'Leary and other delegations to India and Pakistan. The United States is already India's biggest foreign investor and biggest trading partner. We intend to make that relationship increasingly strong and mutually beneficial. We have upgraded the official

structure of our growing economic ties with India to reflect their scope and scale. The U.S.-India Commercial Alliance established by Secretary Brown will promote interaction between the private sectors of our two countries. The alliance is expected to complement the work of the sub cabinet level Indo-U.S. Economic/Commercial Subcommission, which the President agreed to revive during the visit of Prime Minister Rao to the United States last May. We plan to hold a Subcommission meeting on April 10.

The growing economy of Pakistan has also increasingly attracted U.S. business interest. However, Pressler amendment restrictions have been interpreted to prevent support from OPIC and Trade and Development Assistance for U.S business involvement in Pakistan, which is constraining the growth of our sales and investment there.

Nepal, Sri Lanka, and Bangladesh increasingly rely on market forces in their economic policies. Our embassies have actively developed trade promotion events. In Kathmandu, the Embassy sponsored the first-ever "USA Pavilion" at the Himalayan Expo '94 last May, and the success has encouraged plans to repeat it this year. In Colombo, the Embassy worked with the American Chamber of Commerce to mount an American Trade Fair last May 31 to June 2. More than 50 companies participated.

In Bangladesh, the Embassy co-sponsored the fourth annual "U.S. Business in Bangladesh" trade show January 12-14, which attracted 42 exhibitors representing 120 U.S. firms. These events and initiatives serve to increase interest in U.S. products throughout the region.

Promoting democracy and fostering protection of universally recognized human rights

Supporting and strengthening democracy remains a fundamental aim of the Clinton Administration in South Asia as around the world. With the exception of Afghanistan and Bhutan, parliamentary governments were in place throughout South Asia in 1994. Generally free and fair elections brought new governments to power in both Sri Lanka and Nepal. We note with concern that bitter political cleavages, such as in Bangladesh and Pakistan, retard the development of democratic institutions and weaken the ability of the political system to move ahead on needed economic and social reforms. Bangladesh's new democracy has ventured into uncharted waters with the late December mass resignation of the opposition from Parliament and the continued agitation for new elections. A political impasse continues there. The United States contributes both directly and indirectly to the process of strengthening democracy in the region. U.S. assistance still includes programs to build civil institutions, such as legislatures and judiciaries, but now emphasizes non-governmental sector activities. Exchange programs provide South Asians first-hand exposure to U.S. institutions. The State Department also has encouraged a number of major U.S. NGOs to carry out privately funded projects to enhance democratic structures.

Advancing universally-recognized human rights in South Asia is a key U.S. interest. America's commitment to social justice and respect for human rights

will always be among our fundamental imperatives. We will continue to work both publicly and privately with foreign government leaders. non-governmental organizations, and private citizens to advance these goals. Our recently released Country Reports on Human Rights Practices contain our detailed assessments of the human rights situation in South Asian countries. In India. public awareness of human rights problems is growing. The issue is debated in parliament and the subject of frequent comment in a free press. The courts are now more active in human rights cases. Local human rights groups have continued their important efforts to catalogue and draw attention to human rights abuses throughout India.

Government efforts to improve human rights performance include creation of a National Human Rights Commission. At the one year mark the Commission has surprised the skeptics and begun to establish itself as an effective advocate for human rights. During its first year of operation. the NHRC heard nearly 3.000 complaints of human rights abuse and investigated cases in almost every state in India. Reportedly. the Chairman of the Commission has recommended that the Terrorism and Disruptive Activities Act (TADA). which has been subject to widespread abuse. be allowed to lapse. These are positive developments, but more needs to be done. Security forces and militants continue abuses in Kashmir. In the Punjab. incidents of terrorist violence virtually ended more than a year ago; however. police often do not respect normal criminal procedures. TADA detainees declined from approximately 13.000 to roughly 5.000 by the end of the year. We will continue to raise our concerns with the Government of India. In Sri Lanka. we have seen especially dramatic progress as the Government continued to take significant steps to protect human rights. Emergency regulations were allowed to lapse in all but war-affected areas. where they were modified in accordance with United Nations Human Rights Commission recommendations. Disappearances virtually ceased in government-controlled areas in 1994. The Government created three regional commissions to investigate disappearances. We have urged the Sri Lankan government to sustain. and to build upon, its commitment to human rights. They are eager to do so. The human rights picture in Pakistan and Bangladesh is mixed. In Pakistan. in two separate cases within the past few months. appeals courts overturned the death sentence of three Christians convicted of violating the blasphemy law. However. Christians and Ahmadis continued to be charged with blasphemy. often on flimsy evidence. Treatment of prisoners and women remains a serious problem. The government established several police stations staffed by women officers for women detainees and victims in an effort to end abuses. The government has also created a human rights unit to monitor abuses. In Bangladesh. the Government allowed the Anti-Terrorism Act, which established special tribunals for a wide range of crimes. to lapse. However. the Government has not repealed the 1974 Special Powers Act. which continued to be used to detain political opponents and other citizens without formal charges. In Nepal. the transition to a new government is helping to solidify democracy. The newly elected United Marxist-Leninist government has declared its continued support for democracy and human rights. Increasing respect for human rights remains a major priority in our relations with all of the countries in the region. Curbing narcotics production and flows South Asia is a major producer of licit and illicit opium. It is increasingly important as a production and transit area for heroin. methamphetamines. and other illegal substances. Narcotics production has been growing faster in South Asia than anywhere else in the world.

In South Asia, as elsewhere, drug smuggling forms a major source of income for some criminal groups and also for some of those attempting to influence democratic political institutions through corruption and intimidation. Repeating another pattern seen before, production and transit of illicit narcotics have caused local addict populations to grow swiftly. There are now over four million addicts in South Asia. There are a million and a half Pakistani heroin addicts alone. An important goal for us in the region has been to work with governments and NGOs to heighten awareness of the magnitude and social cost of this trafficking. For 1994 Pakistan received a certification for narcotics cooperation based on vital national interest. This reflected both our concern that Pakistan give even more priority to counter narcotics efforts, and out recognition that it is a key partner on all issues of concern to us in the region. In 1995 Pakistan has begun to make potentially significant progress in eradication of poppy fields, seizure of drugs, and freezing of traffickers' assets. The Government has also consolidated Pakistan's Anti-Narcotics Force under solid, military leadership. While much remains to be done, these steps represent a real basis for future progress.

India is the major supplier to the U.S. of legal opium for vital pharmaceuticals. We have been working intensively with Indian authorities to eliminate diversion of opium to the illicit market. Reforms have been implemented in the cultivation and processing system, but key questions remain unanswered on the magnitude of the diversion problem. Illicit cultivation is an increasingly serious problem which needs to be addressed. The Afghan civil war has allowed Pakistan-based heroin labs and narcotics traffickers to benefit from enormously increased poppy cultivation in Afghanistan. The lack of a functioning government in Afghanistan has limited our ability to address the problem, although we are looking for ways to assist responsible regional leaders. This year, Afghanistan was denied certification on narcotics. We are working with Indian and Pakistani narcotics authorities to improve their cooperation in interdicting the narcotics trade across their borders. We have seen encouraging signs of progress in this area, including several rounds of Indo-Pakistani bilateral discussions. Significant progress on the overall situation will require far greater emphasis on enforcement and crop eradication and substitution throughout the region.

BROAD ENGAGEMENT

As we work to advance fundamental U.S. interests in South Asia, we want our engagement to reflect the totality of our interests. It must be broad and complete. One core interest cannot be pursued to the exclusion of other key objectives. Some commentators have incorrectly argued that expanding U.S. economic objectives in South Asia should or will undercut our efforts to advance other key interests, such as nonproliferation or human rights. Others mistakenly believe our relationship with one country must come at the expense of another. The record I have described above amply demonstrates this is not the case. Our bilateral relationships need to be based on a realistic assessment of each other's interests, recognizing that it is normal and healthy for sovereign states to differ in some areas while agreeing in others. Expanding mutual interests will give us the incentives to overcome differences and build on areas of convergence. Expanding relationships and deeper engagement with the countries of South Asia are now a reality.

The end of the Cold War and economic opportunity have raised the profile of relations with this important region. New structures to ensure closer engagement with the region are being put in place. For example, in January Secretary Perry signed an Agreed Minute outlining plans for Indo-U.S. security cooperation. Likewise, the U.S.-Pakistan Consultative Group on security issues was revitalized during Secretary Perry's trip. The revived Indo-U.S. Economic/Commercial Subcommission and a new private sector Indo-U.S. Commercial Alliance will contribute to better understanding of economic and commercial issues. A reflection of this engagement is the wide range of senior visitors we've exchanged with South Asian states in the past year. Three cabinet secretaries visited the region. The new partnership launched by Prime Minister Rao and President Clinton just nine months ago is already paying major dividends for the United States and India. The Prime Minister of Pakistan will visit the United States in April. Her meeting with the President will help reinvigorate our relationship. Our hope and expectation is that the effort we put into closer relations will improve our prospects for finding ways to ease deep seated tensions and resolve complex disputes that threaten our broader interests.

CONCLUSION

Mr. Chairman, thank you for this opportunity to discuss in brief the principal issues of concern to the United States in South Asia and our efforts to deal with them and how these are supported by our FY 1996 budget request. I would be happy to take questions from you and members of the committee, to allow us to explore these and other issues at greater length.

(###)

APPENDIX - 13

U.S. CODDLING BEIJING Rep. Sherrod Brown (D-Ohio)*

Of paramount concern is the role China has played in the burgeoning nuclear arms race in South Asia. As a member of the House International Relations Committee, I have urged the Clinton administration to take a hard look into ongoing transfers of weapon technology from China to Pakistan. Last year, the Washington Post and Washington Times reported that US intelligence sources obtained evidence that the Chinese had sold M-11 missiles to Pakistan and that 5,000 ring magnets, used to make weapon-grade fuel, had also been sold. These weapon transfers violated several US laws and international treaties, yet the Chinese government was never sanctioned.

Even with the revelations, China's illegal weapon transfers to Pakistan continue to be largely ignored. The month before India's and Pakistan's nuclear tests took place, Pakistan tested its new Ghauri missile — a weapon named after an ancient Muslim conqueror of India. All the components and technology in the Ghauri came from China via North Korea, (but) our State Department turned a blind eye to the deal.

At the same time, Pakistan continues to fund and equip terrorists for attacks against Indians in the Kashmir valley. For the past five years, Pakistan has denied providing funds to terrorist groups there.

Now, the Pakistani government has announced that it will no longer aid the Harkat-Ul-Ansar. This admission came only after the US had placed that group on the list of known terrorist organizations for kidnapping four people, including an American.
India Abroad, July 31,1998.

In addition, China not only has provided Pakistan with technology and missiles, but also, according to reports, has further militarized Tibet, and may have even placed nuclear weapons there.

We must look at all the forces trying to influence and possibly destabilize the region and the biggest player in the region is China.

For years, two assumptions have driven the US foreign policy in South Asia — China had to be taken seriously, India did not have to. Though each nation has a population of roughly one billion, Beijing has made a convenient ally in our struggle to contain the Soviet Union, while New Delhi has not. Why? India did not possess a nuclear arsenal, our self-imposed prerequisite for being a great power, which unfortunately meant New Delhi should not command our respect.

Given that China has successfully completed a de facto encirclement of

India by helping to make Pakistan a nuclear state, is it any wonder the Indian government, has had to make clear that it has the means to deter a hostile attack? India has been attacked by Pakistan three times in the last 50 years, and Pakistan's deployment of the Ghauri missile has given it the capability of striking nearly all India's population centres. In a similar situation, the Soviet Union's deployment of missiles in Cuba in 1962 was considered such a serious threat to our national security that we nearly went to war to have them removed.
What is happening in South Asia now in an unintended result of our nation's foreign policy towards China.

If we are truly interested in reducing the threat of nuclear weapon proliferation, we must first take steps to change the mindset that has dominated our foreign policy in South Asia. Cold War real politik should no longer determine our long-term interests. We must work to bring true, long-term stability to the region.

News Papers, Magazines and Journals

1. The Hindu
2. The Hindustan Times, New Delhi edition
3. Indian Express, New Delhi edition
4. The Times of India, New Delhi edition
5. Nav Bharat Times, New Delhi edition
6. Dainik Jagran
7. India Today
8. Out-Look
9. Frontline
10. World Focus
11. The Indian Journal of Political Science
12. Annual Review of United Nations Affairs
13. The Indian Year Book of International Affairs
14. The American Political Science Review
15. World Affairs
16. Orbis – A Journal of World Affairs
17. Strategic Digest
18. Strategic Analysis
19. Span
20. Political Research Quarterly
21. Agni
22. Arms Control Reporter
23. The RUSI Journal
24. Mainstream

Bibliography

A. K. Damodaran – "Beyond Autonomy : India's foreign Policy", 2000.

Ajoy Sinha – "Indo – US Relations", Janaki Prakashan.

Akhtar Majeed – "Indian Ocean : Conflict & Regional Cooperation", New Delhi, ABC Publishing House.

American Foreign Policy, Current Documents 1990. Department of State.

Annual Report, Ministry of External Affairs, Government of India, 1994-1995.

Annual Report, Ministry of External Affairs, Government of India, 1993-1994.

Appadorai and Rajan – "India's Foreign Policy and Relations: South Asia" 1985.

Arthur G. Rubinoff – "Congressional Attitude towards India" (edited by Harold A. Gould and Sumit Ganguly, The Hope and the Reality, 1993.)

Berta Gomez – "Panel Ungesto give Priority to India", File Date / ID, January 13' 1993, United States Information Services, New Delhi.

C. P. Bhambhri – "Foreign Policy of India", New Delhi, Sterling Publishers. 1987.

Chandrashekhar S. – "American Aid and India's Economic Development", 1965, Praegar Publishers, New York.

Charles P. Schleicher – "International Relations" (PHI. 1963)

Chester Bowles – "New Horizon of Peace".

Chester Crocker – 14 Department of State Bulletin, November 1982.

Col. Ravi Nanda – "India's Security in New World Order", 1994.

Commodore Jasjit Singh – "Nuclear India", New Delhi, IDSA. 1998.

Commodore Jasjit Singh (editor) – "The Road Ahead : Indo – US Strategic Dialogue", New Delhi, Lancer.

D. N. Malik – "Post War International Politics", Meenakshi, 1973.

Datta & Sundaram – "Indian Economy", 2001

Dennis Kux – "India and the United States : Estranged Democracies : 1941 – 1991", Washington D. C. National Defense University Press, 1992.

Dilip H. Mohite & Amit Dholakia – "India and the Emerging World Order", New Delhi, Kalinga Publications, 2001.

Dipankar Banerjee (editor) – "Security Studies in South Asia", 2000.

Dr. R. C. Mishra – "Security in South Asia, Cross Border Analysis", Authors Press, 2000.

Erancine Frankel - "Play the India Card" Foreign Policy, No. 62 (Spring 1986)

Escott Reid – "Envoy to Nehru", New Delhi, Oxford University Press, 1981.

Fedrel L. Shuma – "International Politics".

Foreign Affair record, New Delhi, Vol II 1956.

Francine R. Frankel – "Bridging the Non – Proliferation Divide : The United States and India", Konark Publishers

Fred Holiday – "The Making of the Second Cold War", London, 1983.

George Rosen – "Western Economists and Eastern Societies", Delhi, Oxford University Press, 1985.

Grieves – "Conflict and Order", 1977.

H.W. Brands – "India and the United states : The Cold Peace", Boston : G. K. Hall, 1990.

Harold A. Gould & Sumit Ganguly (editors) - "The Hope and the Reality : U.S. – Indian Relations From Roosevelt to Regan", New Delhi, Oxford & IBH Publishing Company,1993

"Indian Nuclear Explosion", Senate Government operations Committee Release, June 1976.

Indo – U.S. Relations : A General Overview, Embassy of India Washington.

James M. Lindsay & Michael E. O'Hanlon – "Defending America", The Brookings Institution, Washington, 2001.

Jani B.M. – "South Asia – India and United States", 1987, R.B.S.A. Publishers, Jaipur.

Jawahar Lal Nehru – "Indian Foreign Policy, Selected speeches September 1946 – April 1961", Delhi, Government of India, 1961.

Jawahar Lal Nehru – "Speeches", Vol-2 August 1949 – February 1953 (Publication Division, Ministry of Information & Broadcasting, Government of India, Vth Edition May 1983.

Jawaharlal Nehru – "Discovery of India".

Jawaharlal Nehru – "The Unity of India : Collected Writings", London : Lindsay Drummond, 1941.

Jawaharlal Nehru's Speeches, September 1957 – April 1963, Volume IV, Publications Division 1964.

John Dumbrell – "American Foreign Policy Carter to Clinton", London, Macmillan Press, 1997.

Jones, Peter D.A. – "An Economic History of the United States Since 1783, 1956", Routledge Iteegam Paul, London.

K. M. Arif – "Working with Zia : Pakistan's Power Politics, 1977-1988", Karachi : Oxford University Press, 1995.

K. R. Singh – "India In International System", Rajan and Ganguli (Edited).

K. Subramaniyam – "The Second Cold War Delhi", 1983.

Lt. Gen. Ashok Joshi – "Restructuring National Security", New Delhi, NAS Publications, 2000.

Lyndon B. Johnson – "Vantage Point : Perspective of the Presidency 1963-1969", New York : Popular Library 1971.

M. S. Venkataramani and B. K. Shrivastava – "Roosevelt, Gandhi and Churchill", New Delhi, Radiant 1983.

Major General Vinod Saigal – "Restructuring South Asia Security", New Delhi, Anas Publications, 2000.

Manmohan Malhotra – "New Century : Whose Century ?", 2001.

Mansingh – "India's Search for Power".

Marvin G. Weinbaum & Chetan Kumar – "South Asia Approaches the Millenium", Wanguard, 1996.

Max. F. Milletean & Rogston. ww – "A Proposal to keep an effective Foreign Policy", 1957, New York.

N. D. Palmer – "The Indian Political System" Boston, 1961.

Nalini Kant Jha – Edited : 2000. "India's Foreign Policy in a Changing World".

Nalini Kant Jha (Editor) - "India's Foreign Policy in a Changing World". 2000.

Nancy Jetlly (editor) – "India's Foreign Policy Challenges and Prospects". New Delhi. Vikas Publishing House. 1999.

P. J. Eldridge – "The Politics of Foreign Aid in India". Delhi. Vikas. 1969.

P. M. Kamath - "American Foreign Policy Since Kennedy : A Historical Perspective". Vol 24. No. 2. 1982.

P. M. Kamath (Editor) : "Indo US Relations : The Dynamics of Change". New Delhi. South Asian Publishers. 1987.

Palmer and Perkine : "International Relations".

Pranab K. Banerjee (editor) – "Issues in Indo – US Trade & Economic Cooperation". Kanishka Publishers. 1996.

Pravin Sheth – "Post Pokhran Nuclear Politics". New Delhi. Rawat Publication. 1999.

Prem Chopra – "The crisis of Foreign Policy : Perspectives and Issues". Wheeler Publishing. 1993.

Prof. M. L. Sondhi (editor) – "Democratic Peace : The Foreign Policy Implications". Har-Anand Publications. 2000.

Prof. M. S. Rajan – "India and International Affairs". Lancers Books. 1999.

R.W. Tucker and D. C. Hendrlekson – "The imperial Temptation". New York : Council on Foreign Relations. 1992.

Rajan Kumar Mishra – "India and International Relations". New Delhi. Kanishka Publishers. 1996.

Raju G. C. Thomas. - "Security Relationships in South Asia : Difference in Indian and American Perspective". Asian Survey. Volume XXI No. 7. 1981.

Rama Kant & P. L. Bhola – "Post Cold War Developments in South Asia". R. B. S. A. Publishers. 1995.

Ramesh Thakur – "The Politics and Economics of India's Foreign Policy". New Delhi. Oxford University Press. 1994.

Rand Report – "Taking Charge : A Bipartisan Report to President Elect on Foreign Policy and National Security", 2001.

Report of Indian Embassy, Washington D.C.

S. N. Mishra - "India The Cold War Years", 1994.

S. N. Mishra – "India : The Cold War Years", New Delhi, South Asian Publishers, 1994.

S. P Gupta & K. S. Mehra (editor) – "Indo – US Trade & Economic Cooperation optimizing Relations", Allied Publishers, 1995.

Satu P. Limaye – "U.S. – Indian Relations : The Pursuit of Accommodation", Westview Press, 1993.

Selig S. Harrison and Geoffrey Kemp. – "India and America, After the Cold War", Washington D.C. : Carnegie Endowment for International Peace 1993.

"South Asia Bureau Chief gives overview of U. S. Policy" official text, USIS, September 21, 1993.

Srinivas Mudumai – "United States Foreign Policy Towards India, 1947-1954", New Delhi, Manohar, 1980.

Stanley Walpert – "Roots of Confrontation in South Asia : Afghanistan, Pakistan, India and Super-powers", New York, Oxford University Press, 1982.

Statistical Abstract of the United States, 1962.

Stebbines, P. Richard and Elane P. Adam – "Documents on American Foreign Relations, 1972", Macmillon Publishers, New York.

Steven J. Rosen and Walter S. Jonse – "The Logic of International Relations", 1975

T. N. Kaul – "A Diplomat's Diary (1947 – 1999)", Macmillan.

T.V. Kunhi Krishnan – "The Unfriendly Friends : India and America", New Delhi, India Book Company 1974.

The Memories of Richard Nixon, London 1978.

The White House, "A National Security Strategy for a New Century", October 1998.

Thomas J. McCormick – "America's Half – Century : United States Foreign Policy in the Cold War", New Delhi, Affiliated East West Press, 1992.

U.S.I.S. File April 30, 1993.

V. P. Dutt – "India's Foreign Policy in a Changing World", New Delhi, Vikas Publishing House, 1999.

Ved Vati Chaturshreni – "Indo – US Relations", New Delhi, National Publishing House, 1980.

Venkatramani – "The American Role in Pakistan".

Vinay Kumar Malhotra & K. S. Purshottaman, (Editors) – "India & The USA : Economic Relations and Literature", 1998, Annual Publications.

W. L. Bennet and D. L. Paletz (eds) – "Taken by Storm : The Media Public Opinion and U.S. Foreign Policy in the Gulf War", Chicago : University of Chicago Press, 1994.

W. Narman Brown – "The United States and India and Pakistan", USA : Oxford University Press, Second Edition, 1967.

Walter K. Anderson, U.S. – "Indian Relations 1961-1963 : Good intentions and Uncertain Results" (edited by Harold A. Gould and Sumit Ganguly, The Hope and the Reality, 1993.)

Wolpert – "Roots of Confrontation".

World Development Indicator Report – 2002.